कांग्रेस : अंग्रेज भक्ति से राजसत्ता तक

डा० सतीश चन्द्र मित्तल

प्राक्कथन

1857 ई० के महासमर से लेकर 15 अगस्त 1947 तक, राष्ट्र के विभाजन का, भारत का इतिहास एक रोमाञ्चकारी तथा लम्बे संघर्ष की कहानी है। इसमें भारत के सभी वर्गों, सम्प्रदायों, जातियों ने भिन्न-भिन्न मार्ग से योगदान दिया है। इसलिए किसी एक संस्था या एक मार्ग को श्रेय देना तथ्यपूर्ण तथा तार्किक न होगा, बल्कि एक मिथ्या तथा भ्रामक निष्कर्ष होगा। यह लम्बा संघर्ष कभी ब्रिटिश साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों से क्षमा, दया, याचना या प्रार्थना करते हुए उनकी कृपा दृष्टि का इच्छुक रहा, तो कभी लाखों की संख्या की बीच सिंह गर्जना करते हुए देश की स्वतन्त्रता का आहवान करते तथा कभी तंग और संकरी गलियों या बीहड पगडण्डियों पर, पुलिस द्वारा पीछा करते हुए, फांसी के फन्दों पर झूलते अनेक बलिदानी युवकों की वीरगाथा सुनाता रहा।

1857-1947 ई० तक के राष्ट्रीय संघर्ष को तथा इसके पश्चात कांग्रेस द्वारा गठित सरकार ने और ब्रिटिश विद्वानों ने इस सन्दर्भ में अनेक विसंगतियों तथा भ्रमों को प्रचारित किया। प्रथम कांग्रेस के नेताओं ने अहंकार वाणी से तथा तथ्यों की गंभीर अध्ययन किये बिना, भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास को 'कांग्रेस का इतिहास' मानने तथा पढ़ाये जाने का निर्देश दिया, जो सर्वथा अनुचित, अतार्किक तथा तथ्यहीन है। यद्यपि यह सत्य है कि राष्ट्रीय आन्दोलन में कांग्रेस का महत्त्वपूर्ण योगदान है, पर वे अकेले नहीं हैं। बल्कि इसमें अनेक क्रांतिकारियों की निर्णायक भूमिका रही। अनेक हिन्दू संगठनों ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया। प्रांतीय तथा आंचलिक स्तरों पर भी अनेक संघर्षों की घटनाओं के परिणाम देशव्यापी हुए। अंग्रेजी पढ़े-लिखे मध्यमवर्ग के अतिरिक्त भारत के कृषकों, दलितों, श्रमिकों तथा सामान्य जनों ने इसमें महत्त्वपूर्ण भाग लिया। इसमें नगरवासी, ग्रामवासी तथा वनवासी भी किसी से पीछे न थे। इसमें भारतीय सैनिकों -विशेषकर, सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्त्व में आजाद हिन्द फौज, भारत की नवसेना तथा वायुसेना का भी उल्लेखनीय योगदान रहा है।

दूसरे, कांग्रेस के अनेक नेताओं का यह कथन कि देश की आंशिक स्वतन्त्रता अहिंसा मार्ग का प्रतिफल है, अपने आप में भ्रामक तथा छद्मवेशी चिन्तन है। वस्तुत: यह कथन इतिहास की उपेक्षा तथा सत्य से मुंह छिपाना होगा। यदि 1922 ई० से मोपला, कोहाट से 1940 ई० के

दशक में कलकत्ता, नोआखली, बिहार, पंजाब, दिल्ली में हजारों की संख्या में हत्याएं तथा भारत विभाजन के समय विश्व के महानतम जनसंख्या की अदला-बदली अर्थात् एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों की अदला-बदली, लगभग दस लाख लोगों का नर-संहार, एक लाख महिलाओं का अपहरण तथा बलात्कार तथा अरबों रूपयों की सम्पत्ति का विनाश, विश्व की सबसे भयंकर त्रासदी कही जा सकती है। इतने पर भी राष्ट्री आन्दोलन को अहिंसक कहना केवल अहंकार तथा आत्मश्लाघा होगी।

इसी भांति कुछ ब्रिटिश विद्वानों या इतिहासकारों के कथन भी असंगत तथा तथ्यरहित हैं। एक विद्वान का कथन है कि कांग्रेस की नीति भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की निरंतरता में बड़ी सहायक रही। उनका कथन है कि कांग्रेस ने न केवल भारत में हिंसात्मक प्रवृत्तियों को रोकने में अंग्रेजों की मदद की बल्कि जब भी उनके आन्दोलन हिंसात्मक हुए, गांधी जी ने उन्हें वापिस लेकर हमारी राज्य की सुरक्षा में मदद की। वर्तमान कैम्ब्रज इतिहासकारों का यह कथन भी मिथ्या है कि भारत में कभी राष्ट्रीय आन्दोलन हुआ ही नहीं अथवा यह राष्ट्रीय आन्दोलन न था क्योंकि कोई राष्ट्रीय भावनायें न थीं। उपरोक्त कथन भी अप्रमाणित तथा अतार्किक है।

कांग्रेस के इतिहास के बारे में अनेक ग्रन्थ, शोध ग्रन्थ तथा एक-एक आन्दोलन या घटना पर अतुल सामग्री प्राप्त है। भारत के कुछ श्रेष्ठतम नेताओं के बारे में अनेक खण्डों में प्रकाशित सामग्री भी उपलब्ध है। सरकारी तथा गैर सरकारी अनेक दस्तावेज, पत्र व्यवहार, व्यक्तिगत पत्र प्राप्त हैं।

अत: इस सन्दर्भ में प्रस्तुत लघु ग्रन्थ एक बहुत छोटा सा प्रयास है। इसमें अनेक ग्रन्थों का अध्ययन कर कांग्रेस के इतिहास के बारे में कुछ संतुलित निष्कर्षों को रखने का प्रयत्न किया है। ग्रन्थ का उद्देश्य देश की नवयुवक पीढ़ी को कांग्रेस के जन्मदाता हयूम से लेकर कांग्रेस की राजसत्ता प्राप्ती की कहानी को अति सूक्ष्म रूप से रखने का प्रयास किया गया है।

पुस्तक को दो भागों में बांटा गया है। पहले भाग में कांग्रेस के जन्म से लेकर भारत के डोमिनियन स्टेट्स प्राप्ती का अति संक्षिप्त वर्णन है। यह अंग्रेजों की भक्ति से प्रारम्भ होता है। जिसमें क्रमश: उदारवादियों, राष्ट्रवादियों तथा समझौतावादियों का योगदान रहा, जिसकी समाप्ती कांग्रेस को ब्रिटिश सरकार से राजसत्ता का हस्तांतरण से हुई। पुस्तक के दूसरे भाग में कांग्रेस के कुछ विशिष्ट मुद्दों की चर्चा की है जो कांग्रेस के आन्दोलनों तथा गतिविधियों को समझने में सहायक होंगे। उन्हें केवल सार रूप में दिया है। इनमें कांग्रेस के बदलते संविधान, बदलते उद्देश्यों

तथा राष्ट्रवाद या भारत राष्ट्र के बारे में उनकी सोच का अति संक्षेप में विश्लेषण किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लिए लेखक देश के अनेक प्रसिद्ध संस्थानों - राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली, नेहरू मेमोरियल एवं लायब्रेरी, नई दिल्ली, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय पुस्तकालय, कुरूक्षेत्र का ऋणी है। लेखक श्री हरिभाऊ वझे का कृतज्ञ है जिन्होंने उपरोक्त ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा दी। लेखक उन सभी विद्वानों, लेखकों का ऋणी है जिनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस रचना में सहयोग मिला।

आशा है कि देश का युवा इसे पढ़कर भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की दृष्टि और सृष्टि और इसमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के योगदान को अधिक गहराई तथा संतुलित ढ़ंग से समझ सकेगा।

- सतीश चन्द्र मित्तल

विषय अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन **(i) - (iii)**

भाग - एक

अध्याय एक : कांग्रेस की स्थापना : अंग्रेज भक्ति का प्रारम्भ 1

अध्याय दो : उदारवादी कांग्रेस 21

अध्याय तीन : राष्ट्रवादी कांग्रेस 37

अध्याय चार : समझौतावादी कांग्रेस 54

अध्याय पांच : राजसत्ता की प्राप्ती 98

भाग - दो

अध्याय छः : कांग्रेस का बदलता संवैधानिक ढ़ांचा 123

अध्याय सात : पूर्ण स्वतन्त्रता कभी कांग्रेस का लक्ष्य नहीं रहा 131

अध्याय आठ : कांग्रेस का भ्रमित एवं छद्म राष्ट्रवाद 138

उपसंहार 148

परिशिष्ट (कांग्रेस के अधिवेशन, स्थान तथा अध्यक्षों की सूची) 155

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची 158

डा० सतीश चन्द्र मित्तल

जन्म : सन् 1938 ई. में

शिक्षा : एम०ए० (इतिहास तथा राजनीति विज्ञान), पीएच.डी.

प्रकाशन : फ्रीडम मूवमेन्ट इन पंजाब; सोर्सेज आन नेशनल मूवमेन्ट इन इंडिया; हरियाणा : ऐ हिस्टोरिकल परसपेक्टिव (1761-1966); सेलेक्टेड एनोटेडेड बिब्ल्योग्राफी आन फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया : पंजाब एण्ड हरियाणा; इंडिया डिस्टोरटेड : ए स्टडी आफ हिस्टोरियन्स आन इंडिया (तीन भागों में; माडर्न इंडिया; भारत का सामाजिक-आर्थिक इतिहास; विश्व में साम्राज्यवादी साम्यवाद का विकास तथा पतन; साम्यवाद का सच; भारत के राष्ट्र चिन्तकों का वैचारिक दर्शन तथा इतिहास दृष्टि; आधुनिक भारतीय इतिहास की प्रमुख भ्रांतियां; 1857 का स्वातंत्र्य समर : एक पुनरावलोकन (कन्नड तथा गुजराती में भी प्राप्य) : मुस्लिम शासक तथा भारतीय जन समाज; अविस्मरणीय विजयनगर साम्राज्य तथा महाराजा कृष्णदेवराय; 1857 : द वनवासी नेतृत्त्व (ट्राबल) लीडरशिप (हिन्दी में प्राप्य); क्या पंजाब अंग्रेजों के प्रति वफादार रहा?; ब्रिटिश इतिहासकार तथा भारत, दो दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

अनेक लेख प्रतिष्ठित शोध पत्रिकाओं, संगोष्ठियों तथा सम्मेलनों में प्रकाशित एवं पठित। विद्या भारती, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् (आई.सी.एच.आर.) तथा भारतीय इतिहास कांग्रेस के सदस्य रहे हैं। आप अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के कार्यकारी अध्यक्ष हैं। वर्तमान में आप कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग से अवकाश प्राप्त वरिष्ठ प्रोफेसर हैं।

अध्याय-एक

कांग्रेस की स्थापना : अंग्रेज भक्ति का प्रारम्भ

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना तथा प्रगति भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण, परिवर्तनकारी एवं रोमांचकारी कहानी है। यह न केवल ऐ.ओ.ह्यूम के मस्तिष्क की उपज है, बल्कि उन परिस्थितियों की देन है, जिसकी जड़ें भारतीय संस्कृति, धर्म तथा परम्पराओं में निहित हैं। इसकी जड़ें वेदों से लेकर वर्तमान तक, इसकी निर्दिष्ट दृष्टि तथा जीवन मूल्यों - कृणवन्तों विश्वार्याम में है।

इसमें किंचित भी संकोच या संकीर्णता की भावना नहीं है कि भारत मूलत: एक धर्मपरायण देश है। धर्म को व्यापक अर्थ में मानने वालों का देश है। इसकी अवधारणाओं तथा विस्तृत चिंतन को न कभी इसके विविध कालों में हुई महान आर्थिक प्रगति या अवनति से आंका जा सकता है, जैसा कि मार्क्स के अनुयायियों ने इसका विश्लेषण करने का भ्रामक प्रयास किया है, और न ही साम्राज्यवादी ब्रिटिश इतिहासकारों की स्वार्थमूलक अथवा इंग्लैण्ड-परित दृष्टि से। नि:सन्देह कुछ अंशों तक जर्मनी तथा फ्रांसीसी विद्वानों ने, इसके निष्पक्ष विश्लेषण अवश्य किये हैं। ब्रिटिश इतिहासकारों ने राजनैतिक दृष्टि से भारत को एक स्थायी उपनिवेश बनाये रखने के लिए अवश्य कुछ प्रयत्न किये थे, जो पूर्वाग्रहों से ग्रसित, एकाकी तथा आधारहीन थे।

भारत को ईसाई देश बनाने का स्वप्न

यह सर्वज्ञात है कि 1600 ई० में भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना हुई। प्रारम्भ में इसका एक मात्र उद्देश्य भारत की अपार धन सम्पत्ति प्राप्त करना तथा व्यापार के माध्यम से धन लूटना था। लगभग 150 वर्षों तक उसका यह क्रम अबाध गति से चलता रहा। प्रारम्भ में कम्पनी ने योजनापूर्वक भारत के धार्मिक तथा सामाजिक जीवन में ताक-झांक या हस्ताक्षेप न किया, बल्कि समय-समय पर हस्ताक्षेप न करने के अपने अधिकारियों को कड़े आदेश दिये। उनकी यह दूरगामी दृष्टि उनके लिए अत्यन्त लाभकारी तथा समृद्धि देने वाली रही। यदि वे ऐसा न करते तो सम्भवत: उनकी भी वह दुर्गति होती जो धर्मान्ध औरंगजेब के अन्त के काल में चारों ओर भयंकर विद्रोहों के रूप में हुई जिसने मुगल शासन की जड़ों को हिला दिया। वही हालत कम्पनी की होती।

परन्तु 1757 ई० में प्लासी की लड़ाई में धोखे तथा कूटनीति से विजय प्राप्त करने तथा कलकत्ता में 1760 ई० में कब्जा करने से ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन स्थापित हुआ। कम्पनी का शासन स्थापित हो जाने के साथ भारत में अंग्रेजों की सेना भी आई। इसके साथ में ईसाई पदरियों के काफिले भी भारत में आने प्रारम्भ हुए। शुरू में कुछ पादरी लुकछिप कर, नाम बदलकर भारत में आये। 1793 ई० में पहला ईसाई पादरी कैरी बैपटिस्ट मिशनरी सोसायटी के प्रतिनिधि के रूप में आया। 1799 ई० में पादरी वार्ड तथा मार्शमैन आये। कम्पनी राज की राजधानी कलकत्ता होने के कारण उन्होंने वहां के आसपास ही अपनी गतिविधियां प्रारम्भ कीं। उन्होंने भारत की सामाजिक व्यवस्था तथा धार्मिक कार्यों पर टीका-टिप्पणी की। जे.एफ. डयूबे, हेनरी मार्टिन, बाद में अलेक्जैण्डर डफ ने भारत के सामाजिक जीवन को एकाकी तथा रूढ़िवादी बतलाया। भारत की सामाजिक दशा, धार्मिक स्थिति तथा चरित्र का वर्णन विकृत, वीभत्स, भ्रामक तथा कपोल कल्पित किया। ब्रिटिश लेखकों तथा पादरियों ने 'हिन्दुओं को असभ्य' कहा। कम्पनी के एक प्रमुख कर्मचारी एवं प्रथम ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहासकार जेम्स मिल ने कहा, "हिन्दू स्वभाव को बदला नहीं जा सकता", "भारतीय मस्तिष्क उसी प्रकार का सपाट है जैसे सेन्ट पॉल से लेकर चैरिंग स्ट्रीट।" मद्रास के गवर्नर टामस मुनरो ने भी कहा, "हिन्दू चरित्र बदला नहीं जा सकता है। यह तब भी वैसा ही था जो वास्कोडिगामा के आगमन पर था और यह सम्भावना लगती है कि एक शताब्दी आगे भी ऐसा ही रहेगा।"

अत: भारत को शीघ्र ही एक ईसाई देश बनाने के प्रयत्न प्रारम्भ हुए। कम्पनी के एक डायरेक्टर चार्ल्स ग्रांट (1746-1823 ई०) ने भारतीयों के चरित्र सम्बन्धी विकास के लिए भारत में ईसाई धर्म की स्थापना को सर्वोपरि आवश्यकता बतलाया। वह भारत को एक स्थायी उपनिवेश बनाने के लिए भारत के हिन्दुओं का ईसाईकरण आवश्यक मानता है।[1] उसने अपने ग्रन्थ में भारत के सामाजिक जीवन का वीभत्स तथा क्रूर चित्रण किया है।[2] 1793 ई० से जीवन पर्यन्त (1823 ई०) तक वह भारत को ईसाई देश बनाने का निरंतर प्रयत्न करता रहा। उसने इस सन्दर्भ में अनेक याचनायें (पेटीशनें) ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में समय-समय पर भिजवाई।

इसी भांति ब्रिटेन के एक धनी ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के सदस्य विलियम विल्बरफोर्स (1759-1833 ई०) ने भारत को ईसाई देश बनाने के लिए तन-मन-धन से भरपूर सहयोग दिया। इसी बारे में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में पूरे पांच दिनों[3] तक लम्बी बहस होती रही। उसने ईसाई धर्म को एक विनम्र, पवित्र तथा उपयोगी बतलाया तथा भारतीय धर्म को एक क्षुद्र, अवैध तथा क्रूर बतलाया।[4] उसने ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में दो दिन भाषण दिये।[5] उसने भारतीय समाज को नैतिकता

के निम्न स्तर पर तथा भारतीय समाज को विखण्डित तथा अत्यन्त पिछड़ा बतलाया।[6] उसने भारतीय समाज को धूर्त, असभ्य, कामी, क्रूर, कायर बतलाया तथा उनमें सर्वथा गुणों का अभाव बतलाया।[7] इतना ही नहीं, उसने अपने भाषणों में कुछ भारत में रहे पूर्व ब्रिटिश प्रशासकों – राबर्ट ओर्म, हालवैल, राबर्ट क्लाईव, जान शोर, लार्ड कार्नवालिस, वेन्सीटार्ट एवं सर विलियम जोन्स आदि के भारतीयों के बारे में कहे गये वाक्यों को अपना पक्ष मजबूत करने के लिए बोला। इन प्रयासों से उसे इन्साइक्लोपीडिया आफ आथोरीटीज (Encyclopaedia of Authorities) कहा गया।[8] विलियम विल्बरफोर्स की हिन्दुओं के प्रति इस कुटिल नीति का शीघ्र ही प्रयोग जेम्स मिल[9], लार्ड मैकाले[10] तथा माउन्टस्टुअर्ट एलीफिन्स्टन[11] ने अनुकरण अपने ग्रन्थों में किया। 1813 ई० के चार्टर ऐक्ट द्वारा ईसाई प्रचार की अनुमति मिल गई। परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अब भी सतर्कता की नीति अपनाई।[12] वे कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना चाहते थे जिससे कम्पनी के व्यापार को धक्का लगे। लार्ड हेस्टिंग्स तथा लार्ड ऐम्हर्स्ट ने सतर्कता रखी। लार्ड विलियम बैंटिक ने कोई ऐसा कार्य न किया जिससे वैलूर सिपाही संघर्ष जैसी कोई घटना दोबारा हो। परन्तु 1833 ई० के चार्टर ऐक्ट में भारत में ईसाईयत के प्रचार की खुली छूट मिल गई।

1857 ई० के दौरान ईसाई पादरियों तथा सरकारी अधिकारियों ने ईसाईयत के प्रचार के घिनौने तथा क्रूर तरीके अपनाये। ईसाईकरण के प्रयत्न हुए। 1834 ई० में सरकारी स्कूलों में बाइबिल पढ़ाई जाने लगी। विभिन्न प्रचार के ढंगों से हिन्दू देवी-देवताओं को अपमानित किया जाने लगा। सरकारी नौकरियों तथा पदोन्नति में अंग्रेजी भाषा तथा ईसाईयत को प्रमुखता दी जाने लगी। सरकारी कानूनों में फैसले ईसाईयों के प्रति पक्षपातपूर्ण होने लगे। सेना में भी भारतीयों को बाइबिल पढ़ने तथा ईसाईयत अपनाने के लिये मजबूर किया जाने लगा।

वास्तव में 1857 ई० के महासमर का प्रमुख तत्व भारतीयों में दीन तथा धर्म की रक्षा था। सरकारी तथा गैर सरकारी स्तर पर इसका प्रचार 1857 के महासमर का सर्वोपरि कारण बना।[13]

वैसे तो ईसाईयत के प्रचार को ब्रिटिश सरकार द्वारा कानूनी मान्यता मिलते ही इसके विरूद्ध जन-आक्रोश प्रारम्भ हो गया था। ईसाई पादरियों के पाप के सिद्धान्त या ईसा मसीह के सलीब द्वारा बलिदान की घटना से भारतीय जनमानस प्रभावित न हुआ।[14] विद्वानों ने पादरियों के धर्म प्रचार को क्रूर तथा मनमाने तरीकों का प्रेमविहीन जोश (Zeal without love) कहा।

1857 ई० के इस महासमर के पश्चात भारत मन्त्री चार्ल्सवुड के कागजातों तथा तत्कालीन राजनीति तथा गुप्त विभाग के सचिव सर डब्ल्यू केयी के दस्तावेजों से ज्ञात होता है कि

उन्होंने ईसाई गति को कम करने तथा मध्यम मार्ग अपनाने पर बल दिया।[15]

भारतीयों में स्वधर्म का बोध

1857 ई० के महासमर की आंशिक असफलता से भारतीयों में धर्मरक्षा तथा स्वधर्म का बोध तीव्रता से हुआ। उन्होंने अपना भविष्य, अपने अतीत में ढूंढ़ा। विश्व के इतिहास में भारतीय जीवन का वैशिष्ट्य रहा है कि वह सत्ता का कभी दास न बना। पहले भी इस्लाम के लगभग साढ़े सात सौ वर्षों (1206-1857 ई०) के शासन काल में भी, इस्लाम राज धर्म होने पर भी दारूल हरब से दारूल इस्लाम न बनाया जा सका। अत: ईसाईयत की भी यहां जड़ें न जम सकीं। यद्यपि महारानी विक्टोरिया ने अपनी घोषणा में भारत के धार्मिक मामलों में हस्ताक्षेप न करने का आश्वासन दिया, परन्तु भारतीय चेतना लुप्त न हुई। अनेक धार्मिक तथा समाज सुधारकों ने जैसे राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, ज्योति फूले आदि ने स्वधर्म तथा आत्म-स्वाभिमान का भाव जागृत किया तथा गौरव बढ़ाया।

19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस देशभक्ति, आत्म-स्वाभिमान तथा स्वधर्म का बोध कराने वालों में सर्वप्रथम स्थान आता है राजा राममोहन राय (1772-1833 ई०) का। वे भारत में धार्मिक तथा सामाजिक जागरण के अग्रदूत थे। गोपाल कृष्ण गोखले ने उन्हें 'आधुनिक भारत का निर्माता' कहा है। डा० नन्दलाल चटर्जी ने उन्हें 'प्रतिक्रिया तथा प्रगति का मध्यबिन्दु' कहा है। उन्होंने पहले आत्मीय सभा (1815 ई०) तथा बाद में ब्रहम समाज (1828 ई०) की स्थापना की। उन्होंने हिन्दू समाज की कुरीतियों को दूर करने, ईसाईयत के प्रभाव को रोकने तथा सभी धर्मों में एकता का प्रयत्न किया। ब्रहम समाज का स्वरूप पूर्णत: भारतीय था। इसे अद्वैतवादी हिन्दुओं की संस्था कहा जाता था। एक रूसी विद्वान के अनुसार, "ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने ब्रह्म समाज की गतिविधियों में हर तरह से रूकावट ड़ालने और बुद्धिमानों को गुमराह करने की कोशिश की।[16] सत्येन्द्र मजूमदार के अनुसार राजा राममोहन राय पहले भारतीय थे जो विलायत गये थे।[17] उन्होंने ब्रह्म समाज के माध्यम से हिन्दू धर्म, परम्परा, विश्वास का त्याग न करके, यूरोप से बेहतर सामंजस्य बनाने का यत्न किया था। वे उस महान सेतु के समान थे जिस पर चढ़कर भारत अपने अथाह अतीत से अज्ञात भविष्य में प्रवेश कर सकता था। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर (1817-1905 ई०) ने ब्रह्म समाज को धार्मिक तथा आध्यात्मिकता का सुदृढ़ आधार प्रदान किया था। ब्रह्म समाज के प्रखर तथा तेजस्वी नेता केशव चन्द्र सेन (1838-1884 ई०) ने ब्रह्म समाज को ईसाईयत की ओर मोड़ने का भी प्रयत्न अवश्य किया था[18] तथा 1870 ई० में इंग्लैण्ड के 14 प्रमुख नगरों में 6 महीनों में 70 भाषण दिये थे।[19] परन्तु भारत में उनको विशेष

सफलता न मिली थी। ब्रह्म समाज के अन्य प्रमुख नेताओं में प्रताप चन्दर मजूमदार, शशिपाद बैनर्जी, आनन्द मोहन बोस तथा पंडित शिव नाथ शास्त्री ने इसे देशव्यापी बनाने के भी प्रयत्न किये। विशेषकर उत्तर पश्चिम प्रांत (वर्तमान यू.पी.) तथा पंजाब में इसका विशिष्ट प्रभाव रहा। ब्रह्म समाज के अन्य प्रमुख नेताओं की भांति प्रताप चन्दर मजूमदार को भी ईसाई बनाने के प्रयत्न किये गये। विद्वान ईसाई पादरी मैक्समूलर ने उसे ईसाई बनाने तथा ब्रह्म समाज का नाम क्रिस्तों-ब्रह्मोज या क्रिश्चियन-आर्यन्स रखने को कहा था पर उसे सफलता न मिली।[20] ब्रह्म समाज की प्रेरणा से नई-नई संस्थाओं ने जन्म लिया। ईश्वरचन्द विद्यासागर तथा महादेव गोविन्द रानाडे के इसी प्रकार के प्रयास थे।

इसी कड़ी में दूसरा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण धर्म जागरण का प्रयास स्वामी दयानन्द (1824-1883 ई०) तथा उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज द्वारा हुआ। जहां ब्रह्म समाज ने ईसाईयत के विरूद्ध पहला मोर्चा लगाया, आर्य समाज दूसरा प्रसिद्ध मोर्चा था। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा[21], "राममोहन और रानाडे ने हिन्दुत्त्व के पहले मोर्चे पर लडाई लड़ी थी जो रक्षा के बचाव का मोर्चा था। स्वामी दयानन्द के आक्रमण का थोड़ा बहुत श्रीगणेश कर दिया क्योंकि वास्तविक रक्षा का उपाय तो आक्रमण की नीति है।" जहां राजा राममोहन ने अपनी जड़ों को उपनिषदों में ढूंढ़ा, आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने इसे वेदों में पाया तथा बाद में स्वामी विवेकानन्द ने इसे वेदांत में खोजा। ब्रह्म समाजी नेताओं की भांति ईसाई नेताओं ने स्वामी दयानन्द को भी अपनी ओर आकर्षित करने का भरपूर प्रयत्न किये। स्वामी दयानन्द की तत्कालीन भारत के प्रमुख ईसाई पादरियों जैसे जे० राबसन, जे०टी० स्कोट, डा० रूडोल्फ होइरनले आदि सो लम्बी वार्ताएं हुईं, परन्तु ईसाई पादरियों को सफलता न मिली।[22] इसके विपरीत स्वामी दयानन्द ने उत्तरी भारत में ईसाईयत की जड़ों को उखाड़ने के सफल प्रयास किए। लोकमान्य तिलक ने स्वामी दयानन्द को 'स्वराज्य का प्रथम सन्देशवाहक' तथा 'मानवता का उपासक' माना है। लाला लाजपत राय ने स्वीकार किया कि, "स्वामी जी ने देशभक्ति और देशसेवा के बीज हमारे हृदयों में बोये।" स्वामी दयानन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 'भारत भारतीयों के लिये' कहा था। वे भारत में स्वदेशी के जनक थे। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने उद्घोष किया था कि विदेशी राज्य चाहे कितनी भी अच्छा हो, स्वराज्य का प्रतिनिधि नहीं हो सकता। वस्तुतः वे भारतीयों की आगामी राजनीति में राष्ट्रवादी कांग्रेस के प्रेरक थे। उनकी प्रेरणा से श्री श्याम जी कृष्णा वर्मा, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय तथा क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल जैसे व्यक्ति राष्ट्रीय संघर्ष में कूदे थे। उन्होंने बतलाया कि देश, राष्ट्र तथा समाज की उन्नति इस देश के आध्यात्मिक,

सांस्कृतिक तथा समाजोत्थान में ही है। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के दर्जनों दस्तावेज हैं, जिससे ज्ञात होता है कि ब्रिटिश सरकार आर्य समाज को अपना 'महानतम शत्रु' तथा 'अत्याधिक खतरनाक' तथा ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन मानने लगी थी।[23] विशेषकर पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर डेनज़ील इब्बटसन ने इस प्रकार की गुप्त दस्तावेजों को केन्द्र सरकार को भेजे तथा आर्य समाज को 'विद्रोही वार्ताओं का अड्डा' बतलाया।[24] ऐसी ही प्रतिक्रिया बाद में पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर माईकेल ओडवायर ने भी व्यक्त की थी।[25]

श्री रामकृष्ण परमहंस (1836-1886 ई०) मां काली की भक्ति तथा शक्ति के पुजारी थे। फ्रांसीसी विद्वान रोमा रोलां ने उनकी भावपूर्ण भक्ति की विवेचना करते लिखा[26], "यदि वे यूरोप में होते, तो उनकी बड़ी दुर्दशा होती, जरूर ही मानसिक चिकित्सा का रोगी मानकर उन्हें पागलखाने भेज दिया जाता।" अनेक गणमान्य विद्वानों की भांति वन्देमातरम के लेखक बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय उनसे मिलकर अत्याधिक प्रभावित हुए थे।[27] रामकृष्ण परमहंस ने सभी धर्मों की एकता, ईश्वर की भक्ति, मानव सेवा तथा आध्यात्मिक जीवन को महत्त्व दिया था।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के परम शिष्य स्वामी विवेकानन्द (1863-1902 ई०) थे। श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था, "यदि तुम भारत को जानना चाहते हो, तो विवेकानन्द को पढ़ो।" महात्मा गांधी का कथन था, "स्वामी विवेकानन्द को जानने के लिए किसी प्राक्कथन या भूमिका की आवश्यकता नहीं है।" सुभाषचन्द्र बोस ने उन्हें बुद्ध की करूणा तथा शंकराचार्य का मस्तिष्क माना था। वे 19वीं शताब्दी की भारतीय संस्कृति, धर्म तथा आध्यात्मिकता के सही प्रतिनिधि थे। अमेरिका में उन्हें 'तूफानी हिन्दू' कहते थे। रामधारी सिंह दिनकर के लिये, "रामकृष्ण, विवेकानन्द एक ही जीवन के दो अंश, एक ही सत्य के दो पथ हैं। रामकृष्ण अनुभूति थे, विवेकानन्द उसकी व्याख्या बनकर आये थे। रामकृष्ण हिन्दू धर्म की यदि गंगा थे तो विवेकानन्द उसके भगीरथ थे।"[28] उन्होंने अपने गुरू के नाम से रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था[29], "भारत में समाजवादी या राजनीतिक विचारों की बाढ आने से पहले देश में आध्यात्मिक विचारों की मूसलाधार वर्षा कर दो।" उन्होंने यह भी कहा कि "यदि कोई हिन्दू आध्यात्मिक नहीं है तो मैं उसे हिन्दू नहीं मानता"। उन्होंने भारत की 'राष्ट्रीय आत्मा' धर्म को बतलाया। उन्होंने समूचे भारत में राष्ट्रीय जागरण किया। उन्होंने देश के नवयुवकों को कहा कि वे आगामी पचास वर्षों के लिए सभी देवी-देवताओं को भूलकर भारत मां की पूजा करें। उन्होंने देश की तरूण शक्ति को यह भी आहवान किया, "उठो, जागो और तब तक न रूको, जब तक लक्ष्य की प्राप्ती न हो।" उन्होंने ईसाईयत की कटु आलोचना की तथा पश्चिम अन्धानुकरण का

विरोध किया। उन्होंने कहा, "वीरों, साहस का अवलम्बन करो। गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूं। प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। तुम चिल्लाकर कहो कि अज्ञानी भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, दलित भारतवासी मेरा भाई है। भारतीय समाज मेरे बचपन का झूला, जवानी की फुलवाड़ी तथा वृद्धावस्था की काशी है।" संक्षेप में स्वामी विवेकानन्द ने देश-विदेश में हिन्दू धर्म तथा संस्कृति का पुनर्जागरण किया तथा देश की भावी पीढ़ी में देशभक्ति, स्वाभिमान, आत्मविश्वास तथा आत्मगौरव जगाया।

उपरोक्त धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलनों के अलावा भी विभिन्न सम्प्रदायों, वर्गों, धर्मों में आन्दोलन हुए। इसमें ज्योतिराव गोविन्द राव फूले (1827-1890 ई०) का सत्य शोधक समाज, महादेव गोविन्द रानाडे का प्रार्थना समाज, मेडम हेलेना पेट्रावना ब्लेवात्सकी (1813-1891 ई०) व कर्नल एच०एस० आलकाट (1832-1887 ई०) की थियोसोफिकल सोसायटी, सर सैयद अहमद खां का अलीगढ़ आन्दोलन आदि प्रसिद्ध हैं। पंजाब के कई मतों तथा संगठनों[30] ने जैसे निरंकारी, कूका अथवा नामधारी तथा व्यास के राधास्वामी मत तथा श्री गुरू सिंह सभा ने धर्म जागरण किया। पारसियों में रहनुमाई भाजदयासन समाज (1851 ई०) ने जागृति लाई। श्री गोपाल हरि देशमुख, के०टी० तेलंग, गोपाल गणेश अगरकर, आर०जी० भण्डारकर, दादा भाई नौरोजी, नौरोजी फिरदौन जी, अन्नादुरै, स्वामी रामतीर्थ सभी ने समाज में सांस्कृतिक तथा धार्मिक नवजागरण किया।

निष्कर्ष रूप में सभी ने मानव की तर्कबुद्धि, विवेक तथा स्वतन्त्र चिंतन पर बल दिया। पश्चिम के अन्धानुकरण को रोका, शिक्षा पर विशेष बल दिया। जाति प्रथा तथा छुआछूत पर कटु प्रहार किया। सामाजिक कुरीतियों को रोकने का प्रयत्न किया। धार्मिक दृष्टि से रूढ़िवादिता, अन्धविश्वासों, कुप्रथाओं पर प्रहार किया।

इन आन्दोलनों के शीघ्र ही परिणाम दिखलाई दिये। भारत में ईसाईयत की आंधी रुक गई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत को आस्ट्रेलिया या उत्तरी अफ्रीका की भांति स्थाई रूप से ईसाई देश बनाने में असफल रही। इतनी ही नहीं अंग्रेजों ने भारत में स्थायी निवास के विचार को भी तिलांजलि दे दी। 1857 के महासमर तथा धार्मिक जागरण ने राष्ट्रीय चेतना को बनाये रखा, जिससे ब्रिटिश शासन सदैव भयभीत रहा। वस्तुत: इन धार्मिक उपदेशों-सन्देशों ने मि० ऐ०ओ० हयूम को इतना भयभीत किया कि उसे विश्वासपूर्वक भारत में एक जबरदस्त हिंसात्मक विद्रोह की आशंका हुई, जिसका भय का परिणाम था - भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना।

कांग्रेस का संस्थापक मि० हयूम

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म तथा स्थापना की कहानी एक विचित्र संयोग का परिणाम है। यह अपने नाम तथा कार्यों में विपरीत गुणों का मिश्रण रही। यह कोई आकस्मिक घटना न थी। वस्तुत: 1857 के महासमर की मूल प्रेरणा दीन तथा धर्म की रक्षा, भारत में धार्मिक-सुधार आन्दोलनों से उपजी राष्ट्रीय भावना तथा गुप्त दस्तावेजों द्वारा धार्मिक नेताओं के हजारों पत्र-व्यवहारों से सम्भावित पुन: भयंकर हिंसात्मक 'विद्रोह' का भय था। सीधे ब्रिटिश शासन स्थापित होने पर प्रसिद्ध इतिहासकार तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहे डब्ल्यू० डब्ल्यू० हण्टर ने यह स्वीकार किया था कि अंगेजों ने भारत में राजनीतिक विजय प्राप्त कर ली है, परन्तु उसे इस बात का अवसाद रहा कि भारत में अभी सांस्कृतिक विजय प्राप्त करना शेष है।[31] यह भी उल्लेखनीय है कि समस्त महासमर में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जिसने भौतिकवादी तत्त्वों को आधार मानकर देश में जागृति की हो।[32]

ए०ओ० हयूम की, उसके प्रथम जीवन लेखक तथा परममित्र विलियम वेडरबर्न, तत्कालीन भारत के वायसरायों - विशेषकर लार्ड लिटन, लार्ड रिपन तथा लार्ड डफरिन के व्यक्तिगत कागजातों तथा पत्र-व्यवहारों, वक्तव्यों, गुप्त दस्तावेजों, पत्र-पत्रिकाओं तथा कांग्रेस के प्रारम्भिक अधिवेशनों की कार्यवाहियों से इसकी जानकारी मिलती है।

कांग्रेस के संस्थापक तथा पिता ऐलन आक्ट्रोनियन हयूम का जन्म 2 जून 1829 में हुआ था। वह एक ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के सदस्य जोसेफ हयूम (1777-1855) का पुत्र था। बीस वर्ष की आयु में उसे बंगाल सिविल सर्विस में नौकरी मिल गई थी। वह 1849 से 1894 ई० तक भारत में रहा। 26 वर्ष की आयु में उसे उत्तर-पश्चिम प्रांत (वर्तमान यू.पी.) के इटावा जिले में डिप्टी कमिश्नर का पद दिया गया था।[33] 1857 के महा संघर्ष के समय वह इटावा में ही था। 10 मई 1857 को मेरठ में हुई क्रान्ति का समाचार 12 मई को उसे मिल गया था। वह वहां की क्रांतिकारी गतिविधियों से शीघ्र ही विचलित तथा भयभीत हो गया तथा उद्वेलित हो गया था। कठिन संघर्ष के पश्चात उसने कुछ क्रांतिकारियों को बंदी बना लिया था या वे मार दिये गये थे। पर 18-19 मई को हुए इस संघर्ष में कुछ क्रांतिकारियों ने आत्म समर्पण करने से मना कर दिया तथा एक मंदिर में भागकर मोर्चाबन्दी की थी। परन्तु जब वह अपने सहायक डेनियल के साथ उनसे लड़ने गया तो उसे डेनियल की जान बचानी कठिन हो गई। अत: वह भयभीत हो 17 जून को आगरा भाग गया था। 6 महीनों के पश्चात वह पुन: इटावा पहुंचा। 7 फरवरी 1858 को उसने क्रूरतापूर्वक क्रांतिकारियों का दमन किया। भारत के तत्कालीन सेनापति ने भारत के वायसराय

लार्ड कैनिंग को लिखा, "मिस्टर हयूम और कप्तान अलेक्जैण्डर ने वीरतापूर्वक कार्य किया। इस लड़ाई का नतीजा यह हुआ कि 131 विद्रोही मारे गये और उनके घोडे, तोपें, गोला बारूद, हथियार कब्जे में ले लिये गये। शत्रुओं को भागना पड़ा। उनके सात आदमी गड्ढों में गिरकर मर गये। दूसरे दिन हमने दोपहर को फिर छापा मारा और तीन औरों को पकड़कर फांसी पर चढ़ा दिया।" हयूम ने भी अन्य ब्रिटिश प्रशासकों की भांति इस संघर्ष को 'सिपाही विद्रोह' कहा। क्रूर दमन के पश्चात भी 1860 ई० तक हयूम को इस 'विद्रोह' के दमन के लिए कोई पुरूस्कार नहीं मिला।[34] बाद में उसे 'कम्पेनियन आफ द बाथ' से पुरस्कृत किया गया। उसने 1857 के पश्चात एक पत्र 'द पिपुल्स फ्रेंड' नामक भी निकाला था जिसकी प्रतियां उसने भारत मंत्री तथा महारानी विक्टोरिया को भी भेजी थीं।[35] वह 1849–1867 ई० तक इटावा के डिप्टी कमिश्नर के पद पर ही रहा।

1870 के दौरान उसे उत्तर–पश्चिम प्रांत का कस्टम कमिश्नर बना दिया गया। उसने भारत के वायसराय लार्ड मेयो की 'पूरी सहानुभूति'[36] प्राप्त कर ली थी। इसका प्रमुख कारण स्वयं पहले कृषक के रूप में जीवन व्यतीत करना था। हयूम को कृषि की अच्छी जानकारी थी। 1870–1879 के काल में उसे पदोन्नति देकर कृषि, राजस्व तथा वाणिज्य विभाग का सचिव बना दिया गया। हयूम को इस महत्वपूर्ण पद से क्यों हटाया गया, इस बारे में हयूम के व्यक्तिगत कागजात भी इस पर विशेष प्रकाश नहीं ड़ालते। वेडरबर्न, जिसने उसकी मृत्यु (1912 ई०) के पश्चात उसके सभी कागजों की छानबीन की थी। उसे केवल एक पत्र लार्ड लिटन के व्यक्तिगत सचिव 17 जून 1879 का मिला जिसमें हयूम के हटाने के निर्णय को 'जनहित में' उचित बतलाया।[37] द टाइम्स (लन्दन) ने भी उसकी मृत्यु के समय, केवल इतना लिखा कि उसे एक सरकारी अधिकारी से टकराव से हटाया गया था जिसमें उसकी (हयूम) की ही गलती थी।[38] 1882 में उसे पूर्णत: सेवामुक्त कर दिया गया। यद्यपि लार्ड लिटन ने अपने काल में (1876–1880 ई०) उसके प्रति उदारता दिखलाते हुए उसे के०सी०आई० की उपाधि देने की सिफारिश की थी परन्तु भारतमन्त्री लार्ड सैलिसबरी ने इसे अस्वीकृत कर दिया था[39], क्योंकि उसके पूर्व वायसराय लार्ड नार्थब्रुक से रूई से आयात कर हटाने के प्रसंग पर उसका वायसराय से टकराव हो गया था।

1894 में वह वापिस इंग्लैण्ड चला गया। 31 जुलाई 1912 को उसकी मृत्यु हुई थी। 1912 के बांकीपुर कांग्रेस अधिवेशन में उदारवादी कांग्रेस नेताओं ने उसे भावभीनी श्रद्धांजलि दी। विलियम वेडरबर्न ने इसका विस्तृत वर्णन किया है।[40] डी०ई० वाचा, सहसचिव भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने उसे एक सर्वोच्च प्रभावी व्यक्तित्त्व माना। एस०एन० बैनर्जी ने उसका जीवन, "भारतीय इतिहास का स्वर्णिम रिकार्ड, भारत के राष्ट्रीय जीवन का एक महान निर्माता तथा भारत की

राष्ट्रीय एकता को सच्ची उन्नति देने वाला" बताया। डा० रास बिहारी बोस ने उसकी स्मृतियां संगमरमर या कांसे (की मूर्ति) में न देखकर, बल्कि भारतीयों के हृदयों में बतलाई। मदन मोहन मालवीय ने उसे एक 'महान आत्मा' कहा। आनन्द बाजार पत्रिका ने लिखा कि उसने किसी पुरस्कार के लालच के विचार से कार्य नहीं किये। 1912 के बांकीपुर अधिवेशन में शोक प्रस्ताव में हयूम को कांग्रेस का संस्थापक तथा पिता कहा गया।[41] कुछ ने कहा कि हयूम ने अपने जीवन का महान लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। कुछ ने उसे अंग्रेजी राज्य के लिये 'सुरक्षा वाल्व' न बताकर 'भारतीय प्रेरणा का सुरक्षा वाल्व' कहा। इतना ही नहीं, वर्तमान कांग्रेस के एक केन्द्रीय मन्त्री ने उसकी तुलना स्वामी विवेकानन्द से कर दी।[42]

कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य

विचारणीय मुख्य प्रश्न यह है कि हयूम को किस प्रेरणा या भय ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के लिए प्रेरित या मजबूर किया। सामान्यत: राजभक्त उदारवादियों ने उसे ब्रिटेन के उदारवादियों की भांति चित्रित करने का प्रयत्न किया है। उसे ब्रिटेन के एडमण्ड बर्क, जान ब्राइट अथवा चार्ल्स ब्रैडले की कोटि में रखा है।[43] वस्तुत: उपरोक्त महानुभावों का भी भारतीय हितों को ध्यान में रखते हुए उनके विश्लेषण की पुन: आवश्यकता है। इसके विपरीत कांग्रेस के राष्ट्रवादी नेता हयूम के कार्यों तथा व्यक्तित्व से प्रभावित न थे। लोकमान्य तिलक व लाजपतराय ने उसकी कटु आलोचनाएं की हैं।

यदि कोई भी व्यक्ति, हयूम के भारत में आने के बाद से, उसके द्वारा कांग्रेस की स्थापना से पूर्व की स्थिति का गंभीरता पूर्वक विश्लेषण करे तो उसके मानसिक चिंतन तथा विचार प्रवाह का सहज में विवेचन किया जा सकता है। हयूम को इटावा में रहते हुए 1857 की क्रांति का कटु अनुभव आया था। भारत सरकार के कस्टम अधिकारी के रूप में उसे कृषि, भूराजस्व, जंगलात तथा वाणिज्य की जानकारी हो गई थी। वह मुख्यत: भारत की कृषि सम्बन्धी समस्याओं से अवगत था। उसने लार्ड लिटन के काल में पड़े भयंकर अकाल तथा 1877 में दिल्ली दरबार पर हुये अपार धन व्यय तथा फिजूलखर्ची को भी देखा था। साथ ही उसने भारत में किसानों के विभिन्न 'विद्रोहों' – वासुदेव बलवन्त फड़के का किसानों का संघर्ष, महाराष्ट्र के किसानों का संघर्ष, दक्षिण में किसानों के विद्रोह आदि को स्वयं देखा था। परन्तु यह आश्चर्यजनक है कि उनमें व्याप्त असंतोष को देखकर भी उसने न अपना रोष प्रकट किया और न ही उनके प्रति व्यवहारिक रूप से कोई सहानुभूति दिखलाई।

हयूम की तो बस एक ही महती आकांक्षा थी कि भारत में, "ब्रिटिश राज्य सतत बना रहे।"[44] हयूम के परम मित्र वेडरबर्न ने कांग्रेस की स्थापना के पीछे हयूम के तीन उद्देश्यों को बतलाया है।[45] अर्थात् भारत की जनसंख्या के विभिन्न भागों को जोड़ते हुए एक राष्ट्र के रूप में स्थापित करना, धीरे-धीरे उनमें आध्यात्मिक, नैतिक, समाजिक तथा राजनीतिक चेतना बढ़ाना तथा इंग्लैण्ड तथा भारत के बीच सम्बन्धों को मजबूत बनाना। लाजपतराय जैसे राष्ट्रवादी ने हयूम की कांग्रेस की स्थापना के पीछे ब्रिटिश राज्य की सुरक्षा माना है तथा इसे 'सुरक्षा वाल्व' कहा है। साथ में यह भी बतलाया है कि हयूम का उद्देश्य भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना नहीं था।

मि० हयूम भारत सरकार की सेवामुक्ति के पश्चात शिमला रहा था। यह भी ज्ञात है कि हयूम का जीवन तथा व्यक्तित्व इतना प्रभावी न था जितना प्राय: चित्रित किया गया है। वह न तो कोई महान कूटनीतिज्ञ था, न सफल प्रशासक। हां, कृषि तथा पक्षियों के बारे में उसकी विशेष जानकारी अवश्य थी तथा इस सन्दर्भ में उसने तीन महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की थी।[46] परन्तु प्रशासन की दृष्टि से लार्ड डफरिन ने बम्बई के गवर्नर री को एक पत्र में[47] उसे 'अव्यवहारिक' तथा 'सनकी' लिखा था। उत्तर-पश्चिम प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर आकलैण्ड काल्विन ने उस पर 'द्रोहितापूर्ण कार्यों' का आरोप लगाया था तथा बम्बई के गवर्नर को उससे सावधान रहने को कहा था। ब्रिटिश अधिकारी भी उसे 'नैतिकताहीन' तथा 'अहंकारी व्यक्ति' मानते थे।

कांग्रेस की स्थापना से पूर्व हयूम के धार्मिक चिन्तन तथा उसकी मान्यताओं को भी जानना जरूरी है। वह ईसाईयत के प्रति श्रद्धा रखता था, परन्तु संगठित चर्च को न मानता था। उसकी पूर्वीय धार्मिक विश्वासों को अध्ययन में बहुत रूचि थी। उसने एक बार एक तिब्बती गुरू का शिष्य बनने का विचार किया था।[49] वह थियोसोफिकल सोसायटी की मैडम ब्लेवत्सकी तथा ओलकाट से 1879 में इलाहाबाद में मिला था। वह एक बार मैडम का शिष्य बन गया था। मैडम शिमला में हयूम के घर 'रोथनी कैसल' में आती रहती थी। उसने सोसायटी के प्रमुख पत्र 'द थियोसोफिस्ट' में 'एच एक्स' अपने गुमनाम से तीन लेख 'फ्रेग्मेन्ट्स आफ ओकोलट ट्रूथ' भी लिखे थे।[50] परन्तु 1883 में वह थियोसोफिकल सोसायटी से उदासीन हो गया था।[51] वह एक अल्मोडा के स्वामी परमहंस से बड़ा प्रभावित था जो अद्वैतवादी थे। उसका आर्य समाज से भी सम्पर्क आया था परन्तु उससे प्रभावित न था। उसने आर्य समाज में 'हवन की क्रिया को धन को बेकार व्यय' बताया तथा उसका विरोध किया था। वह वेदों को शाश्वत न मानता था तथा उसने स्वामी दयानन्द को ग्रन्थ ऋग्वेदभाष्यभूमिका की आलोचना की, जिसे उसने पढ़ा ही नहीं था।

नि:संदेह मि० हयूम भारतीयों की धर्म की बलवती भावना से अच्छी तरह परिचित था। वस्तुत: इस गहरी अनुभूति तथा मनोवैज्ञानिक तत्वों को सामान्यत: ब्रिटिश इतिहासकारों, ब्रिटिश अधिकारियों तथा अंग्रेजी पढ़े-लिखे राजभक्त उदारवादियों ने उपेक्षित किया। परन्तु इस दिशा में हयूम 1857 के महासमर की दीन और धर्म की मूल प्रेरणा, भारत में उभरते धार्मिक सुधार आन्दोलनों तथा उनसे विकसित धार्मिक सांस्कृतिक चेतना तथा किसानों के संघर्षों में फैले धार्मिक तथा राष्ट्रीय स्वरों से भली-भांति परिचित था। उसे धर्म की प्रेरणा से, सशस्त्र हिसांत्मक गतिविधियों की भयंकर रूप में तथा तीव्रता से बढ़ने की आशंका थी। 1875 में महाराष्ट्र में शिवाजी नामक एक दल ने वहां के गवर्नर रिचर्ड टैम्पल का सिर काट कर लाने का 500 रूपये का पुरस्कार भी रखा था।

वेडरबर्न ने हयूम की मृत्यु के कुछ महीने के पश्चात उसने हयूम का उद्धरण देते हुए लिखा[53], "प्रमाणों से इस समय मेरे ख्याल से लार्ड लिटन के जाने के लगभग पन्द्रह महीने पहले, मुझे पक्का विश्वास हो गया था कि हमारे सिर पर भयंकर विद्रोह का अवश्यंभावी खतरा है। मुझे कागजातों के सात बड़े-बड़े बन्ड़लों को दिखाया गया था, जिनमें बहुत सी बातें लिखी थीं। उस वक्त उनके बारे में बताया गया था कि वे 30,000 से ज्यादा विभिन्न रिपोर्ट्स, निम्न वर्गों के बीच हुई बातें थीं.... और इसका मतलब था हिंसा।"

हयूम ने होने वाले सम्भावित विद्रोह के स्वरूप का भी वर्णन किया है। उसके अनुसार[54], "एक हिंसात्मक विद्रोह (जिसमें विभिन्न स्थानों पर अपराधों, अप्रिय (ब्रिटिश की दृष्टि से) व्यक्तियों की हत्याएं, बैंकों में डाकाजनी, बाजारों की लूट, कानून विरोधी कार्यवाहियां होंगी जो नियोजित शक्तियों से किसी भी दिन एक राष्ट्रीय विद्रोह हो सकता था।" वस्तुत: हयूम इससे अत्याधिक भयभीत था।

यह उल्लेखनीय है कि उसने 30,000 रिपोर्ट्स में सभी को नहीं पढ़ा था और न ही उनकी संख्या के बारे में पूरी तरह निश्चित था। यह केवल उसका अंदाजा था। उसने अधिकतर अवध, बरार, बुन्देहखण्ड तथा पंजाब के कुछ भागों की रिपोर्ट्स को ध्यान से पढ़ा था। इतना ही नहीं, उनकी सच्चाई को जानने के लिए कुछ स्थानों का स्वयं दौरा भी किया था। विशेषकर इटावा के दिये गए कुछ नामों के बारे में व्यक्तिगत रूप से परिचित था।[55] मि० हयूम को उन रिपोर्ट्स के आधार पर पूर्णत: विश्वास हो गया था कि भारत में शीघ्र ही 'कुछ' अवश्य होने वाला है।[56]

मि० हयूम भारत में प्रचलित सैंकडों अर्द्धगुप्त धार्मिक सम्प्रदायों की गतिविधियों तथा

क्रिया-कलापों से अत्याधिक सशंकित था जिसके लाखों सदस्य अथवा अनुयायी भारत में एक महत्वपूर्ण निर्णायक तत्व होते हैं। उसे भारत में पूर्ण विश्वास के साथ भयंकर हिंसात्मक विद्रोह का भय, किसी राजनैतिक चेतना या आर्थिक कारणों से नहीं था बल्कि इन धार्मिक गुरूओं तथा उनके असंख्य शिष्यों से था। इसी धार्मिक जागरण की अभिव्यक्ति वेडरबर्न ने अपनी पुस्तक में अपने एक अध्याय 'इण्डियन रीलीजस डिवोटीज'[57] तथा गिरिजा मुकर्जी ने धार्मिक सुधार आन्दोलन के वर्णन अपने ग्रन्थ के 'द रीलीजस रेनेसां'[58] में की है। संक्षेप में हयूम द्वारा कांग्रेस की स्थापना का मूल उद्देश्य ब्रिटिश राज्य को सतत बनाये रखना था परन्तु इसकी स्थापना का मूल कारण[59] धार्मिक तथा सांस्कृतिक जागरण तथा धार्मिक 'गुरूओं-चेलों' की अन्तहीन वार्ताओं से उत्पन्न भयंकर हिसात्मक विद्रोह की आशंका थी। इसे किसी ब्रिटिश अधिकारी की उदार तथा उच्च भावनायें कहना अतार्किक तथा अप्रमाणिक होगा।

कांग्रेस की स्थापना की प्रारम्भिक तैयारियां

मि० हयूम ने कांग्रेस की स्थापना के लिए 1 मार्च 1883 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों के नाम एक खुला पत्र लिखा[60], जिसमें हयूम ने भारत की जनता के मानसिक, सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक पुनरूत्थान के लिए एक संगठन बनाने की अपील की। यह भी कहा कि ये पचास संस्थापक भावी उन्नति के लिए बीज रूप होंगे। वेडरबर्न ने इस पत्र को 'सन्त पॉल का रोमवासियों के लिए एक महान संदेश' बतलाया।[61] हयूम ने 1883 के अंत में और 1884 के प्रारम्भ में ही 'अंतरंग मण्डल' और 'हमारी पार्टी' की बात शुरू कर दी थी।[62] व्योमेश चन्द्र बैनर्जी भी इस अन्तरंग मण्डल के विश्वासपात्र सदस्य थे। हयूम ने होने वाली संस्था का नाम इंडियन नेशनल यूनियन रखा। अप्रैल 1885 में इसका मैनीफेस्टों तैयार कर उसने भारत के विभिन्न भागों में भेजा। संस्था की सदस्यता के लिए दो शर्तें अनिवार्य रूप से रखी गईं।[63] ये थी अंग्रेजी भाषा की निपुणता तथा ब्रिटिश क्राउन के प्रति सन्देह से ऊपर वफादारी। साथ ही कहा गया था कि संस्था के अधिवेशन में सदस्यों को आने जाने का खर्च स्वयं वहन करना होगा। यह भी घोषणा कर दी गई कि उक्त 'यूनियन' का अधिवेशन पूना में 25-31 दिसम्बर 1885 में होगा।[64]

स्वाभाविक है कि 'यूनियन' की स्थापना से पूर्व हयूम ने भारत तथा इंग्लैण्ड में कुछ मित्रों तथा ब्रिटिश अधिकारियों से सलाह ली। इनमें भारत के वायसराय लार्ड रिपन तथा लार्ड डफरिन प्रमुख थे। बम्बई के गवर्नर री के एक पत्र 24 मई 1885 से ज्ञात होता है, जो उसने लार्ड रिपन की (1884 में) विदाई के लिए स्थान-स्थान पर विदाई समारोह आयोजित कराये थे।[65]

लार्ड रिपन को अनेक जगहों पर अभिनन्दन पत्र भेंट कराये गये थे। इसके साथ लार्ड रिपन ने हयूम को बुलाकर विश्वास दिया था[66] कि वह इंग्लैण्ड वापिस जाने से पूर्व लार्ड डफरिन से बात कर जायेगा। बाद में जून 1885 में हयूम लार्ड डफरिन से मिला था। नि:सन्देह प्रारम्भ में, कांग्रेस की स्थापना में लार्ड डफरिन का आशीर्वाद प्राप्त था। यद्यपि लार्ड डफरिन ने हयूम के इस प्रस्ताव को स्वीकार न किया कि बम्बई के गवर्नर री प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता करें। यह उल्लेखनीय है कि हयूम ने 'यूनियन' का नाम बदलकर 'कांग्रेस' दिसम्बर 1885 में घोषित किया। सम्भवत: इससे पूर्व वह इसका नाम गुप्त रखना चाहता था। यहां यह भी ध्यान रखने योग्य है कि यह सोचना गलत होगा कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व भारत में कोई प्रयास नहीं हो रहे थे। कांगेस से पूर्व भारत में अनेक संगठनों की स्थापना हुई थी। इसमें कुछ आंशिक रूप से राजसत्ता तथा कुछ राष्ट्रीय विचारों से ओतप्रोत थे। इसमें सर्वाधिक उल्लेखनीय तथा नवीनतम इण्डियन एसोसिएशन थी जिसकी स्थापना 26 जुलाई 1876 को सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी तथा आनन्द मोहन बोस ने की थी। दोनों ही जाने-माने लोकप्रिय नेता थे। इसकी प्रगति तीव्र गति से हो रही थी। इसका उद्देश्य प्रबल जनमत का शक्तिशाली संगठन, राजनीतिक हितों की रक्षार्थ खडा करना था। शीघ्र ही इसकी शाखायें 1882 तक 115 स्थानों पर स्थापित हो गईं थीं। 1879 तक इस संगठन का मुख्य ध्यान भारत सिविल सर्विस में सुधार करना था। इसके साथ यह स्वायत्त शासन की मांग कर रही थी। पढ़े-लिखे व्यक्तियों के साथ किसानों के अधिकारों को भी दिलवाने में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। किसानों को आकर्षित करने के लिए इण्डियन एसोसिएशन का वार्षिक शुल्क पांच रूपये वार्षिक से घटाकर केवल एक रूपया कर दिया गया था। 1883 में ब्रिटिश कानूनी सदस्य इल्बर्ट के द्वारा इल्बर्ट बिल रखे जाने पर भारत में एंग्लो-इण्डियन्स ने ही इसका कड़ा विरोध किया था जबकि इण्डियन एसोसिएशन के प्रमुख नेता सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी की इसके समर्थन में गिरफ्तारी पर समूचे देश के वातावरण को उत्तेजित कर दिया था। इसी भांति 4 जुलाई 1884 में जब उन्हें जेल से मुक्त किया गया, तब ब्रिटिश सरकार को यह आशंका हो गई थी कि उक्त दिवस अमेरिका की स्वाधीनता की घोषणा का दिवस होने पर भारत में भी कहीं हिंसात्मक रूप न ले ले। अत: सेना को इस सम्भावित परिस्थिति से निबटने के लिये तैयार रहने को कहा गया था।[67]

संक्षेप में हयूम को भारत में उभरते राष्ट्रवाद, धार्मिक नेताओं एवं गुरूओं की वार्तालापों, धार्मिक आन्दोलनों से उत्पन्न नव जागरण तथा उत्साह, विभिन्न वर्गों में उपजती बेचैनी, ब्रिटिश की लिबरल पार्टी से अपेक्षित सहयोग न मिलने पर व्याप्त निराशा से, एक केन्द्रीय संगठन की आश्यकता को महसूस कराने के लिये बाध्य किया।

अत: 25 दिसम्बर – 31 दिसम्बर 1885 को हयूम ने पूना में राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन करने की घोषणा पहले ही कर दी। परन्तु इसमें दो अड़चनें सामने आईं। प्रथम, उन्हीं दिनों इण्डियन एसोसिएशन ने अपना अधिवेशन उन्हीं तारीखों में कलकत्ता में करने की घोषणा की हुई थी। हयूम नहीं चाहता था कि ब्रिटिश भारत की राजधानी कलकत्ता में आयोजित इस सम्मेलन में आये अनेक विद्वान पूना न जा सकें। अत: हयूम ने अपने द्वारा आयोजित कांग्रेस अधिवेशन की तिथि बदलना उचित समझा। हयूम ने अब अधिवेशन की तिथि 25 दिसम्बर की बजाय 28 दिसम्बर कर दी। दूसरे, पूना में अधिवेशन के आयोजन की पूरी व्यवस्था कर ली गई थी। पूना सार्वजनिक सभा ने इसकी व्यवस्था की थी। स्वागत समिति द्वारा आने वाले प्रतिनिधियों के ठहरने का इंतजाम हीरा बाग के पेशवा महल में किया गया था। प्रतिनिधियों के पूना स्टेशन पहुंचने के बाद से लेकर अधिवेशन की समाप्ती पर, पुन: स्टेशन तक पहुंचाने तक की सभी खर्चों की व्यवस्था कर ली गई थी।[68] परन्तु ऐन मौके पर पूना में हैजा की बीमारी फैलने से यहां अधिवेशन न कर बम्बई में करने का निश्चय किया गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

कांग्रेस का पहला अधिवेशन 28 दिसम्बर 1885 सोमवार को दिन के बारह बजे बम्बई के गोकुल दास तेजपाल संस्कृत कालेज के भवन में प्रारम्भ हुआ।[69] अधिवेशन की पूर्व संध्या को प्रतिनिधियों के साथ सर वेडरबर्न, न्यायाधीश जार्डाइन, कर्नल फिलिप्स, प्रोफेसर वर्डसवर्त्थ तथा बम्बई के अनेक गणमान्य नागरिक प्रतिनिधियों के स्वागत के लिये पहुंचे।[70] इस अधिवेशन में 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसके अलावा 28 सरकारी अधिकारी भी थे। अधिवेशन में प्राय: वकील, अध्यापक तथा पत्रकार थे जो अंग्रेजी भाषा बोलने में निपुण तथा सरकार के प्रति पूरी राजभक्ति रखते थे। अधिवेशन की अध्यक्षता कलकत्ता के प्रसिद्ध सरकारी वकील तथा हयूम के अंतरंग मण्डल के सदस्य व्योमेश चन्द्र बैनर्जी ने की थी।[71] कुछ वर्षों के पश्चात (1902 ई०) अपनी ईसाई पत्नी सहित वह इंग्लैण्ड चला गया तथा इसके बाद कभी भारत न लौटा था। अध्यक्षीय भाषण में व्योमेश चन्द्र बैनर्जी ने परस्पर घनिष्ठता तथा मित्रता बढ़ाने, द्वेषों को नष्ट करने, राष्ट्रीय एकता की भावनाओं को विकसित करने, जो मुख्यत: लार्ड रिपन के काल में विकसित हुईं तथा महत्त्वपूर्ण राजनीतिक तथा सामाजिक प्रश्नों पर विचार करने का आग्रह किया।[72]

अधिवेशन में पहले दिन ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के द्वारा भारत की स्थिति को जानने तथा इसके लिए एक रायल कमीशन स्थापित करने की मांग की गई। दूसरे दिन सुप्रीम तथा प्रेसीडेन्सियों

कौंसिलों में चुने हुए प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ाने तथा उनके अधिकारों को विस्तृत करने का आग्रह किया। तीसरे दिन अर्थात् अन्तिम दिन इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षाओं को ब्रिटेन के साथ भारत में भी करने का आग्रह किया।

प्रथम अधिवेशन का समारोप मि० हयूम द्वारा किया गया। उसने प्रारम्भ में महारानी विक्टोरिया की जय बोलने को कहा। उसने यह भी स्वीकार किया कि उससे एक बड़ी गलती हो गई। उसने कहा कि वह स्वयं महारानी के जूतों के फीतों के बराबर भी नहीं है। प्रायश्चित स्वरूप उसने सभी प्रतिनिधियों को पहले तीन बार महारानी विक्टोरिया की जय बोलने को कहा। परन्तु बीच में ही अपनी बात को काटकर तीन से तीन को गुणा करके यानि नौ बार जय बोलने को कहा। परन्तु फिर भी सन्तुष्टि न होने पर उसे पुन: तीन प्रकार अर्थात् सत्ताईस बार महारानी की जय बोलने को कहा। अत: मि० हयूम महारानी की जय बोलते गये तथा प्रतिनिधि, भवन के हाल से धीरे-धीरे खिसकते गये। संक्षेप में अंग्रेज भक्ति की यह परेड समाप्त हुई।

श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने 1913 में लंदन में एक भाषण देते हुए एक महत्वपूर्ण बात कही कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कोई भारतीय न कर सका, यह तो मि० हयूम की ही प्रेरणा थी।[73] परन्तु यह भी सत्य है कि पहले अधिवेशन में न ही भारतीय स्वतन्त्रता के बारे में एक भी शब्द कहा गया। साथ ही यह भी सत्य है कि कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में भारत के ग्रामीण हितों को न लाना इसकी सबसे बड़ी कमजोरी थी।

अध्याय-एक

सन्दर्भ सूची

1. चार्ल्स ग्रांट, ओब्जर्वेशन्स आन द स्टेट आफ सोसायटी अमंग द एशियाटिक सब्जैक्ट्स आफ ग्रेट ब्रिटेन (लन्दन, 1792); थामस फिशर, मैमायर्स आफ द लेट चार्ल्स ग्रांट (लन्दन, 1833), पृ. 28
2. चार्ल्स ग्रांट, पूर्वोक्त, पृ. 27-29; ऐनशील ऐम्ब्रे, चार्ल्स ग्रांट एण्ड द ब्रिटिश रूल इन इण्डिया (न्यूयार्क, 1967)
3. ये पांच दिन थे - 22 जून, 28 जून, 1 जुलाई, 2 जुलाई व 12 जुलाई 1813, देखें, हंसडर्ड सीरीज (पार्लियामेन्टरी डिबेट्स), 1813
4. सी.एच. फिलिप्स, द ईस्ट इण्डिया कम्पनी (1784-1834), पृ. 191
5. हन्सडर्ड सीरीज, 1813, कालम 807-873, 923-956, 1017-1082, 1099-1100 व 1180-1196
6. वही, 22 जून 1813 की कार्यवाही, कालम 834
7. धर्मपाल, डिसपोलेशन एण्ड डिफेमिंग इण्डिया, द अर्ली नाइनटींथ सेन्चुरी ब्रिटिश क्रूसेड (वर्धा, 1990), पृ. 50
8. जे.डब्ल्यू. केयी, द एडमिन्सट्रेशन आफ ईस्ट इण्डिया कम्पनी (लन्दन, 1853), पृ. 664
9. जेम्स मिल, हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इण्डिया, भाग एक, पृ. 324; भाग दो, पृ. 467, 617 (एच.एच. विल्सन विद नोट्स, पांचवा संस्करण (लन्दन, 1840)
10. टी.बी. मैकाले, क्रिटिकल एण्ड हिस्टोरिकल एसेज, भाग एक, पृ. 561-563, 589
11. माउन्टस्टुअर्ट एलीफिन्सटन, द हिस्ट्री आफ इण्डिया, द हिन्दू एण्ड मेहमतन पीर्यड्स (लन्दन, 1905 संस्करण), पृ. 146
12. एस.सी. मित्तल, भारत का सामाजिक-आर्थिक इतिहास (1757-1947) (पंचकुला, 2005), पृ. 103
13. एस.सी. मित्तल, 1857 का स्वातंत्र्य समर : एक पुनर्वालोकन (कुरूक्षेत्र, 2007), पृ. 1-11
14. के.पी. सेनगुप्त, द क्रिश्चियन मिशनरीज इन बंगाल (1793-1813) (कलकत्ता, 1971)
15. जे. डब्ल्यू. केयी, क्रिश्चियनिटी इन इण्डिया : ए हिस्टोरिकल नेरेटिव (लन्दन, 1859), पृ. 500-501
16. वी. ब्रोडेव, इण्डियाज फिलासफी इन माडर्न टाइम्स (मास्को, 1984), पृ. 152
17. सत्येन्द्र मजूमदार, स्वामी विवेकानन्द चरित्र (कलकत्ता)
18. नोटेशन, लीडर्स आफ द ब्रह्म समाज (मद्रास), पृ. 129
19. वही, पृ. 134-135

20. नीरद सी चौधरी, स्कालर एक्सट्रा आर्डिनरी द लाईफ आफ प्रोफेसर राइट द हानरेबिल फ्रेडरिक मैक्समूलर पी.सी. (दिल्ली, 1974), पृ. 330, 332, 334, 335
21. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय
22. सीताराम गोयल, हिस्ट्री आफ हिन्दू-क्रिश्चियन इनकाउन्टर्स (नई दिल्ली, 1989), पृ. 64-76
23. भारत सरकार, होम (पालिटिकल डिपोजिट-ए) कार्यवाही अप्रैल 1912, नं. 4
24. भारत सरकार, होम (पालिटिक्स ऐ) कार्यवाही, अगस्त 1907, पृ. 148-235; द पंजाबी, 26.6.1907, 21.6.1907 व 16.10.1907
25. सर माइकेल ओडवायर, इण्डिया ऐज आई न्यू इट (1885-1925) (लन्दन, 1925), पृ. 184
26. रोमां रोलां, रामकृष्ण नी जीवनी, (कलकत्ता, 1999), पृ. 35
27. अद्वैत आश्रम, लाइफ आफ रामकृष्ण परमहंस (कलकत्ता, 1964 संस्करण), पृ. 502-512
28. रामधारी सिंह दिनकर, पूर्वोक्त
29. स्वामी विवेकानन्द के विभिन्न विषयों पर उद्धृत विचारों के लिये देखें, द कम्पलीट वर्क्स आफ विवेकानन्द, आठ भाग (कलकत्ता, 1959-1964)
30. एस.सी. मित्तल, भारत का सामाजिक-आर्थिक इतिहास (1758-1947) (पंचकुला, 2005) पृ. 38-68
31. एस.सी. मित्तल, इण्डिया डिस्टोरटेड : ए स्टेडी आफ ब्रिटिश हिस्टोरियन्स आन इण्डिया, भाग दो (नई दिल्ली, 1996), पृ. 183; साथ ही लेख, '1857 के महासमर के पीछे ईसाईयत और साम्राज्यवाद', इतिहास दर्पण, अंक 13(1) वर्ष प्रतिपदा, 2010, पृ. 140
32. अजीत सिंह सरहिन्दी, नेशनलिज्म इन इण्डिया (चण्डीगढ़, 1975), पृ. 7
33. हयूम के इटावा में डिप्टी कमिश्नर के क्रिया कलापों की विस्तृत जानकारी के लिए देखें एस.आर. मेहरोत्रा एण्ड एडवर्ड ई. माउलटन (सम्पादित) द अननोन साइड आफ हयूम, सलैक्टेड वर्क्स आफ ऐलन आक्टोरियन हयूम, भाग एक (1829-1867), डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन नार्थ इण्डिया रेबिलियन्स एण्ड रिफोर्मस (आक्सफोर्ड, 2010)
34. विलियम वेडरबर्न, ऐ.ओ. हयूम, फादर आफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस (प्रथम प्रकाशित 1913, नई दिल्ली, 1974 पुनर्मुद्रण) पृ. 7
35. वही, पृ. 22
36. वही, पृ. 27
37. वही, पृ. 35
38. वही, पृ. 33

39. वही, पृ. 47

40. वही, पृ. 168–171

41. देखें, रिपोर्ट आफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस, बांकीपुर, 1912 (आगे से रिपोर्ट आई.एन.सी.)

42. जनसत्ता, 2.2.1986

43. ए.सी. मजूमदार, इण्डियन नेशनल इव्लूसियन (प्रथम संस्करण 1916, नई दिल्ली, 1975 संस्करण) पृ. 15–24

44. वेडरबर्न, पूर्वोक्त, पृ. 1

45. वही, पृ. 47

46. ए.ओ. हयूम की रचनायें हैं : एग्रीकल्चरल रिफार्म्स इन इण्डिया (लन्दन, 1879); द गेम बर्ड्स आफ इण्डिया, ब्रह्मा एण्ड सिलोन, तीन भागों में (लन्दन, 1871–1888); नेस्ट्स एण्ड एर्गीग आफ इण्डियन बर्ड्स (लन्दन, 1883)

47. एस.आर. मेहरोत्रा, द इमरजेन्स आफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस, पृ. 397

49. वेडरबर्न, पूर्वोक्त

50. विस्तार के लिए देखें, एडवर्ड जान बक, लेख, शिमला पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट, कलकत्ता, पृ. 116–118

    बेवीर मार्क, थियोसोफी एण्ड द ओरजीन्स आफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस 7(1–3) इन्टरनेशनल जनरल आफ हिन्दू स्टेडीज 2003), पृ. 99–115

51. एडवर्ड ई. माउल्टन, 'ऐलेन ओ हयूम एण्ड द इण्डियन नेशनल कांग्रेस, ए रीएसेसमेन्ट जनरल आफ साउथ ऐशियन स्टेडीज, 8(1)5–23

52. वेडरबर्न, पूर्वोक्त, पृ. 82

53. वही, पृ. 80

54. वही, पृ. 80

55. वही, पृ. 80

56. वही, पृ. 81

57. वही, पृ. 77

58. गिरिजा के. मुकर्जी, हिस्ट्री आफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस (1832–1947) (दिल्ली, 1977) पृ. 30

59. यह कहना उचित होगा कि भारत में सर्वदा ही संघर्ष का मूल कारण धार्मिक ही रहा है जिसे विद्वानों ने यहां की 'संस्कृति की आत्मा' कहा है। उदाहरणत: वर्तमान (दिसम्बर 2010) में दुर्भाग्य से अनेक घोटाले – 2 जी

स्पेक्ट्रम, कामनवेल्थ गेम्स, फूड स्केम तथा आदर्श बिल्डिंग बम्बई के गबन से जो करोडों खरबों की धनराशि से जुडे हैं। परन्तु इससे भारतीय संसद तथा मीडिया के अलावा कोई संघर्षात्मक हलचल नहीं हुई। इसके विपरीत 30 सितम्बर 2010 को अयोध्या में रामजन्मभूमि पर बाबरी मस्जिद के ध्वंस (6 दिसम्बर 1992) के सन्दर्भ में इलाहाबाद हाई कोर्ट के निर्णय आने पर सभी धार्मिक तथा राजनैतिक, सरकारी तथा गैर सरकारी नेताओं, विद्वानों ने सम्पूर्ण भारत में पूर्ण शान्ति बनाने की अपील की। देश की सामान्य जनता, किसानों, मजदूरों, दलितों, छोटे दुकानदारों सभी ने आगामी कई दिनों के लिये खाद्य सामग्री इकट्ठी करके रख ली। उक्त दिवस बाजार सूने हो गए। स्कूलों की छुट्टी रही, यहां तक कि रेलगाडियों में इक्का दुक्का व्यक्ति ही मिलता था। इससे भारतीय जनमानस का चिंतन तथा दृष्टि स्पष्ट होती है।

60. वेडरबर्न, पूर्वोक्त, पृ. 50–51; ए.सी. मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 46

61. ए.सी. मजूमदार, पूवोक्त, पृ. 46

62. अनिल सील, द इमरजेन्स आफ इण्डियन नेशनलिज्म (1968), पृ. 75

63. वेडरबर्न, पूर्वोक्त, पृ. 53; ए.सी. मजूमदार, पूवोक्त पृ. 48–49; गिरिजा के मुकर्जी, पूर्वोक्त, पृ. 73; एनी बेसेन्ट, हाउ इण्डिया रोट फार फ्रीडम (1915), पृ. 3

64. वेडरबर्न, वही, पृ. 57; ए.सी. मजूमदार, वही, 48

65. अनिल सील, पूवोक्त, पृ. 276

66. एस.आर. मेहरोत्रा, पूर्वोक्त पृ. 38

67. सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, ए नेशन इन मैकिंग, पृ. 84; एस.आर. मेहरोत्रा, पूर्वोक्त, पृ. 361

68. वेडरबर्न, पूर्वोक्त, पृ. 57

69. रिपोर्ट आई.एन.सी., 1885, पृ. 1; ए.सी. मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 57

70. ए.सी. मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 56

71. अनिल सील, पूर्वोक्त, पृ. 275

72. रिपोर्ट, आई.एन.सी. 1885, पृ. 3–4

73. गिरिजा के. मुकर्जी, पूर्वोक्त, पृ. 65

74. वही, पृ. 76

अध्याय-दो
उदारवादी कांग्रेस

भारत का राष्ट्रीय संघर्ष, एक लम्बे संघर्ष की गाथा है। यहां तक कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के काल से ही सन्यासी आन्दोलन के रूप में इसका प्रत्यक्ष रूप से विकराल प्रतिरोध प्रारम्भ हो गया था। यह सतत संघर्ष 1857 के महा समर तक चलता रहा था।

सीधे ब्रिटिश शासन के अधीन होने पर भी यह संघर्ष समाप्त न हुआ था। जैसा कि इसके पूर्व अध्याय में हमने देखा कि ब्रिटिश सरकार के एक उच्च अधिकारी ऐ.ओ. हयूम ने ब्रिटिश शासन को सतत बनाये रखने तथा इसकी सुरक्षा के लिए कांग्रेस की स्थापना की थी। उसने देश के विभिन्न भागों में अन्दर ही अन्दर व्याप्त किसानों, श्रमिकों तथा निम्न वर्गों के भयंकर विरोधों तथा व्याप्त घृणास्पद कटुता को, विशेषकर धार्मिक तथा सांस्कृतिक गुरूओं तथा उनके शिष्यों की वार्ताओं का अध्ययन किया था। हयूम ने अन्दर-अन्दर दबी, सुलगती इस जन विस्फोट के दमन को समाप्त करने के लिए भारत में अंग्रेजी पढ़े-लिखे मध्यम वर्ग के सहयोग से इसे प्रभावशून्य करने के लिए भरसक प्रयास किया था। सामान्यत: इस वर्ग को 'मोडरेट' या उदारवादी कहा जाता है। दिसम्बर 1885 से 1905 तक मुख्य रूप से कांग्रेस के समस्त क्रियाकलापों में इनका वर्चस्व स्थान रहा है।

सुविधा की दृष्टि से संघर्ष के इस 62-63 वर्षों (1885-1947) के काल को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। इन्हें क्रमश: उदारवादी, राष्ट्रवादी तथा समझौतावादी कह सकते हैं। वास्तव में यह वर्गीकरण इनकी नीतियों, कार्यक्रमों तथा सफलताओं के आधार पर किया जा सकता है।

तत्कालीन राष्ट्रीय भावनायें मि० हयूम द्वारा स्थापित कांग्रेस के रूप में दुर्बलता का नहीं, बल्कि उसकी सबलता का परिचायक है।[1] कांग्रेस की स्थापना 1857 ई० से पल्लवित राष्ट्रवादी चिंतन को दुर्बल करने का ब्रिटिश षडयन्त्र था, जिसमें आंशिक रूप से हयूम सफल हुआ।

सामान्यत: 1885 से 1918 ई० तक उदारवादियों का ही काल रहा, परन्तु प्रथम बीस

वर्षों (1885-1905 ई०) तक उनका वर्चस्व रहा। इसका कर्ताधर्ता मि० हयूम स्वयं था जो 1906 ई० तक स्वयं-भू इसका महासचिव रहा। यद्यपि 1894 में उसके वापस इंग्लैण्ड लौटने पर एक या दो भारत के उदारवादी कांग्रेसी सदस्य को भी महासचिव बनाया गया। श्री गोपाल कृष्ण गोखले जैसे प्रमुख नेता 1903 ई० में कांग्रेस के हयूम के साथ-साथ सचिव बने।[2]

उदारवादी कांग्रेस के गहन विश्लेषण करने के लिए इसके सदस्यों का सामाजिक आधार, इस कालखण्ड में पारित प्रस्तावों, समय-समय पर दिये इनके अध्यक्षों के भाषणों, ब्रिटिश सरकार का इनके प्रति रूख तथा ब्रिटिश शासकों के प्रति इनके विचारों तथा चिंतन को जानना महत्त्वपूर्ण होगा। कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में कुल 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया था।[3] इसमें भारत के विभिन्न स्थानों से प्रतिनिधि आये थे।[4] इसमें 38 प्रतिनिधि बम्बई प्रेसीडेन्सी, 21 मद्रास प्रेसीडेन्सी, 3 बंगाल प्रेसीडेन्सी, 6 उत्तर-पश्चिम प्रांत व अवध और 3 पंजाब से थे। वस्तुत: मि० हयूम बंगाल प्रेसीडेन्सी से अधिक प्रतिनिधि जुटाने में असफल रहा था। इसका कारण यह बताया जाता है कि कलकत्ता में इण्डियन ऐसोसिएशन का भी सम्मेलन हो रहा था।

अधिवेशन में विभिन्न वर्गों, धर्मों तथा सम्प्रदायों के प्रतिनिधि आये। ये सभी अंग्रेजी पढ़े-लिखे, मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे। इसके अलावा 28 सरकारी अधिकारी थे जो प्रथम अधिवेशन को सफल बनाने में संलग्न थे।

प्रथम अधिवेशन में सात प्रस्ताव पारित किये गये।[5] इसमें भारतीय प्रशासन की जांच के लिए एक शाही कमीशन की नियुक्ति की मांग, भारत मंत्री की कौंसिल की समाप्ती, इम्पीरियल तथा स्थानीय लेजिस्लेटिव में सुधार तथा अधिकारों की बढ़ोत्तरी, भारत तथा इंग्लैण्ड में एक साथ भारतीय सिविल सर्विस के लिए प्रतियोगिता की व्यवस्था, सैनिक खर्चों में कमी, रूई पर पुन: आयात कर लगाने तथा लाईसेन्स कर का विस्तार तथा ब्रह्मा को भारत के वायसराय की अधीनता से अलग करने की मांग की गई।

प्रारम्भ में कांग्रेस की लोकप्रियता बढ़ती गई। इसका अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि प्रतिनिधियों की संख्या निरंतर बढ़ती गई तथा इसके पांचवें अधिवेशन तक यह बढ़कर 1889 तक पहुंच गई। इसकी अध्यक्षता दादा भाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, बदरूद्दीन तैयब जी, सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी जैसे व्यक्तियों ने की, जो व्यक्तिगत रूप से देशभक्त, समाजसेवी तथा गुणवान थे। कांग्रेस की तेजी से लोकप्रियता का एक अन्य प्रमुख कारण ब्रिटिश सरकार का संरक्षण तथा सहयोग था। कांग्रेस के प्रारम्भिक तीन अधिवेशनों में सरकार ने कांग्रेस को पूरा सहयोग तथा सुविधायें प्रदान की थीं। प्रथम बम्बई के अधिवेशन में प्रतिनिधियों के स्वागत के

लिए सरकारी अधिकारी पहुंचे थे। प्रतिनिधियों को अरब सागर में स्टीमरों में बिठलाकर एलीफेन्टा की गुफायें दिखलाई गईं।[6] कलकत्ता में कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में भारत के वायसराय लार्ड डफरिन की ओर से एक शानदार भोज दिया गया।[7] तीसरे मद्रास अधिवेशन में सरकारी भवन में एक गार्डन पार्टी दी गई। इसमें स्वयं मद्रास के गवर्नर कोनमेयर उपस्थित रहा।[8] अधिवेशन में यद्यपि गवर्नर स्वयं नहीं आया पर सरकारी अधिकारी दर्शकों के रूप में उपस्थित थे।[9] साथ ही कांग्रेस अधिवेशनों के निजी खर्चों के लिए समृद्ध व्यक्तियों से धन इकट्ठा किया गया था। हयूम के अनुसार पिछले दोनों अधिवेशनों के लिए समृद्ध व्यक्तियों से व्यय के लिए धन आवश्यक था, सिर्फ समृद्ध व्यक्तियों से या जिस प्रांत में कांफ्रेंस हो रही थी, उसमें तुलनात्मक दृष्टि से समृद्ध सदस्यों से 50 रूपये से लेकर 2500 रूपये तक लेकर धन इकट्ठा किया गया, इसमें 5500 रूपये ऐसे थे जो 8000 लोगों से इकट्ठा किये गये जिन्होंने एक आना से 24 आने तक दिये थे। अर्थात् 8000 मध्यमवर्ग से तथा 16500 समृद्धों से तीन दिनों के अधिवेशन के खर्च के लिए इकट्ठा किये। कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन में महाराजा व जमींदारों ने भी सहायता की थी। मैसूर और विजयनगरम के महाराजाओं ने एक-एक हजार रूपया, वेंकटगिरि के राजा ने पांच सौ रूपया, बोतोली के राजा ने दो सौ रूपया व जी.राव गजपति राव ने सवा तीन सौ रूपये दिये थे। महाराजा दरभंगा व विजयनगरम के महाराजा आगे भी कांग्रेस को धनराशि देते रहे थे।[11] कांग्रेस अधिवेशनों में फिजूलखर्ची होने लगी थी। बाद में गांधी जी ने इसकी कटु आलोचना की थी।[12]

यह भी सोचना नितान्त गलत होगा कि प्रारम्भिक अधिवेशनों की सफलताओं के लिए मि० हयूम को कोई प्रयास न करने पड़े। प्रथम अधिवेशन की सफलता के लिए उसे तथा उसके साथियों को दौड़-धूप करनी पड़ी थी। साथ ही इस समय सरकार का पूर्ण समर्थन प्राप्त था। दूसरे अधिवेशन को सफल बनाने के लिए हयूम स्वयं तत्कालीन प्रमुख नेता सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी से मिलने कलकत्ता गया था तथा उसने इण्डियन एसोसिएशन की पूरी मदद मांगी थी।[13]

परन्तु यह सत्य है कि कांग्रेस के चौथे इलाहाबाद अधिवेशन में सरकार के व्यवहार में पूरी तरह अलगाव आ गया था। उत्तर-पश्चिम प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर आकलैण्ड काल्विन ने कांग्रेस की कोई मदद न की, बल्कि अधिवेशन के दिन वह अपने दौरे पर चला गया।[14] किसी प्रकार से महाराजा दरभंगा ने लीथर महल खरीद कर, कांग्रेस को अधिवेशन के लिए स्थान दिया था।[15] सरकारी रूप से प्रयत्न किया गया कि कांग्रेस को अधिवेशन के लिए न कोई स्थान मिले और न ही धन इकट्ठा हो।

इलाहाबाद अधिवेशन में सरकारी उदासीनता तथा अलगाव से तथा अधिवेशन में रूकावट डालने से उदारवादी भयभीत हो गये। कांग्रेस ने जन-सम्पर्क तथा जन-सभायें करनी बन्द कर दीं। कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं को सरकारी नौकरी न मिलने या पदोन्नति न होने का ड़र भी सताने लगा। किसी भी प्रकार के अधिकारिक या कांग्रेस अधिकारियों के वक्तव्यों तथा उसके परिणामों से डर लगने लगा। इलाहाबाद अधिवेशन में एक प्रस्ताव भी पारित किया गया कि, कांग्रेस "अपनी बैठकों में नियमित प्रस्तावों के लिए जिम्मेवार है और किसी भी दूसरी चीज के लिए नहीं।"[16] कांग्रेस ने सम्पर्क, प्रचार, सभायें बन्द करने के लिए, यह भी सोचा गया कि भविष्य में प्रचार का केन्द्र भारत की बजाए ब्रिटेन में आरम्भ हो। अत: जुलाई 1889 में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की शाखा लन्दन में स्थापित की जिसका सचिव विलियम डिग्बी को बनाया गया। 1890 ई० में कांग्रेस अधिवेशन में यह भी सोचा गया कि भावी 1892 का अधिवेशन लन्दन में हो।[17] परन्तु 1891 ई० में यह प्रस्ताव रद्द कर दिया गया। इसका कारण 1892 में इंग्लैण्ड में होने वाले राजनैतिक चुनाव को बताया गया।[18] इतना भी तय किया कि इंग्लैण्ड से एक कांग्रेस पत्र 'इण्डिया' निकाला जाये। इण्डियन नेशनल कांग्रेस की ब्रिटिश कमेटी के लिए 40,000 रूपये की धनराशि स्वीकृत की गई।[19] परन्तु यह आश्चर्य है कि इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने सम्पूर्ण भारत में इसकी गतिविधियों के लिये कुल धनराशि मात्र 5,000 रूपये रखी, और न ही भारत से किसी पत्र-पत्रिका के निकालने की योजना बनाई गई।

सरकार द्वारा कांग्रेस के प्रति विरोध

जहां कांग्रेस के प्रारम्भिक तीन अधिवेशनों में लार्ड डफरिन का बर्ताव कांग्रेस के प्रति सहज था, वहां उत्तर-पश्चिम प्रांत व अवध के सरकारी अधिकारियों के द्वारा प्रारम्भ से ही इसके प्रति आशंका व्यक्त की जाने लगी थी। इस प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर अल्फ्रेड सी. लायल (1882-1887 ई०) ने इसकी आलोचना करनी प्रारम्भ कर दी थी। उसने कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन के बारे में कहा था "(कांग्रेस) की कार्यवाहियों का स्वर ब्रिटिश शासन के प्रति वफादार तथा मित्रवत था, यद्यपि कुछ अनिवार्यत: अक्खडपन तथा अनुभवहीनता थी। कुछ फालतू के प्रस्तावों को मीटिंग में पास किया गया जिसमें अनिच्छापूर्ण रूढ़िवादिता थी जो एक निश्चित व्यवस्थित परम्परा को बिगाड़ने की थी, जो भारत की सामान्य जनसंख्या के सभी वर्गों में प्रमुखता से है।"[20]

दूसरे, पूर्व उत्तर-पश्चिम प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर आकलैण्ड काल्विन का रवैया तो पहले ही बताया गया है। लार्ड डफरिन जो पहले से ही हयूम के प्रति आश्वस्त न था, जो उनके

पत्रों से ज्ञात होता है। 30 नवम्बर 1888 को अर्थात् अधिवेशन से एक महीने पहले, कलकत्ता में सेंट एंड्रूज को भोज के अवसर पर बोलते हुए उसने कांग्रेस के स्वायत्त शासन की मांग की खिल्ली उड़ाई थी तथा इसे 'सूर्य के रथ पर चढ़ना' तथा 'अज्ञात में लम्बी छलांग लगाना' बताया।[21] इसी भांति ऐशाटन क्रास को 3 दिसम्बर 1888 के पत्र में लार्ड डफरिन ने हयूम की बगावत को 'मूर्खतापूर्ण धमकियां' कहा।[22] उसने भारत से जाने से पूर्व, कांग्रेस को भारतीय समाज के एक 'बहुत छोटे से अंश का प्रतिनिधित्व' करने वाला बताया।[23] इसी भांति ब्रिटिश सरकारी अधिकारियों ने भी हयूम को एक बहुत ही चालाक, सिरफिरा, नैतिकताहीन व्यक्ति कहा। इतना ही नहीं 16 फरवरी 1892 को जब हयूम ने महासचिव के नाते भावी कांग्रेस अधिवेशन में सदस्यों को आने के लिए निमन्त्रण पत्र लिखा। इस पत्र में उसने भारत स्थित यूरपीयन अधिकारियों की निंदा की और इसमें लिखा है कि वे भारत में विद्रोह की अग्नि भड़का रहे हैं।[24] इस पत्र को हयूम के विरूद्ध प्रयोग किया गया। उस पर राजद्रोह का आरोप लगाया गया तथा हाउस आफ कामन्स में एक सदस्य मैकलीन ने तो यहां तक कहा कि सरकारी पेंशन प्राप्त हयूम को ब्रिटिश राज में जरा कम उदार युग में देशद्रोही बताकर या तो फांसी दे दी जाती या गोली मार दी जाती।[25]

सरकारी अधिकारियों ने कांग्रेस को 'पागलों की सभा', 'बाबुओं की संसद', 'खुर्दबीन से देखे जाने वाले अल्पसंख्यक' तथा 'बचकाना' कहना प्रारम्भ कर दिया। लार्ड डफरिन के पश्चात आने वाले सभी वायसरायों – लार्ड लेंसडाउन, लार्ड इल्गिन, लार्ड कर्ज़न ने भी कांग्रेस की कटु आलोचना की। लार्ड ऐल्गिन ने कहा, "मुझे बड़ी खुशी है कि कांग्रेस बराबर नीचे की ओर जा रही है।" वह इसे 'राजद्रोही संस्था' मानता था। लार्ड कर्जन ने 1900 ई० में भारत मन्त्री को लिखा "मेरा यह अपना विश्वास है कि कांग्रेस लड़खड़ाती हुई पतन की ओर जा रही है और मेरी एक महान आकांक्षा है कि मेरे भारत में रहते समय इसकी शान्तिमय मृत्यु में, मैं इसकी सहायता कर सकूं।"[26]

प्रसिद्ध ब्रिटिश विद्वान सर जार्ज चेशने ने 1894 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में केवल दो पृष्ठ लिखे[27] और वह भी "बेहूदी तथा निकृष्ट भाषा में।"[28]

उदारवादियों की ब्रिटिश शासन के प्रति धारणायें

कांग्रेस के उदारवादी नेता अंग्रेजी पढ़े-लिखे, मध्यम वर्ग से सम्बन्धित थे। उनकी अंग्रेजों के प्रति धारणायें थीं कि ब्रिटिश सरकार अथवा अंग्रेज मूलत: सच्चे और न्यायप्रिय हैं। वे ब्रिटिश शासन को भारत में एक वरदान मानते थे। उनका विश्वास था कि भारत में शताब्दियों की

अस्त-व्यस्तता तथा अराजकता के पश्चात भारत में शांति तथा व्यवस्था का निर्माण हुआ है। वे देश की उन्नति, अंग्रेजी शासन में देखते थे। उनका विश्वास था कि अंग्रेज दयालु हैं और यदि कोई उचित मांग उनके सामने रखी गई तो वे अवश्य पूरी करेंगे। उन्हें लगता था कि भारतीयों को प्रभु का धन्यवाद करना चाहिए कि भारत में उनका राज है।

समय-समय पर विभिन्न कांग्रेस अधिवेशनों में अध्यक्ष के द्वारा उदारवादी कांग्रेस के उद्‌गार प्रकट किये गये। कुछ उद्धरण देना अनुचित न होगा। कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में दादा भाई नौरोजी ने अध्यक्षीय पद से कहा था, "हमने ब्रिटिश शासन से सभी लाभों को पाया है।"[29] उन्होंने यह भी कहा, "केवल ब्रिटिश राज के कारण ही वे सब एक स्थान पर एकत्रित हो सके।"

कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन में बदरूद्दीन तैयब जी ने मुसलमानों को कांग्रेस में आने के लिये प्रेरित करने का प्रयत्न किया तथा उन्हें वफादार साबित होने का आहवान किया।[30]

1888 के इलाहाबाद अधिवेशन के पश्चात कांग्रेस का रूख अंग्रेजों के प्रति भक्ति का भाव बढ़ता गया था तथा अगले सौलह वर्षों तक बढ़ता गया था। सम्भवत: सरकार के बदलते तेवर को देखते हुए उन्हें ऐसा करना पड़ा हो।

1889 में स्वागत समिति के अध्यक्ष के रूप में फिरोजशाह मेहता ने अपने भाषण में बतलाया, "कांग्रेस के लोग ऐंग्लो-इण्डियन्स से अर्थात भारत पर शासन करने वाले अंग्रेज अधिकारियों से ज्यादा ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादार हैं।[31]

1890 में फिरोजशाह मेहता ने कांग्रेस अधिवेशन में ब्रिटिश शासकों के प्रति सम्मान दिखलाने तथा प्रशंसा करने को कहा। उन्होंने कहा कि मुझे जरा भी सन्देह नहीं है कि ब्रिटिश राजनेता आखिर में दादा भाई नौरोजी के इन आहवान को मान लेंगे कि शिक्षित भारतीयों को अपनी तरफ खींच लाने के स्थान पर, विरोधी मत बनाओ।[32]

इसी प्रकार से 1892 में कांग्रेस अध्यक्ष श्री सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी ने मंच से कहा, "हम एक महान और स्वतन्त्र साम्राज्य के नागरिक हैं और दुनिया के अब तक के एक सर्वोत्तम संविधान की छाया, हमारे सिर पर है। अंग्रेजों के अधिकार हमारे अधिकार हैं। उनकी सुविधायें, हमारी सुविधायें हैं। उनका संविधान हमारा संविधान है, लेकिन हमें उनसे अलग रखा गया है।[33]

1896 में कांग्रेस अधिवेशन रहीमतुल्ला एम. सयानी की अध्यक्षता में हुआ। इस समय भारत में भयंकर अकाल पड़ा था। साथ ही प्लेग का प्रकोप भी हो रहा था, हजारों लोग मरे थे, पर इसके पश्चात भी महारानी विक्टोरिया के शासन की हीरक जयन्ती पर उसे भावभीनी बधाई दी

गई।[34] सी. शंकरण नैयर ने भारतीयों को जिम्मेदारी के साथ वफादारी की बात की।[35] इसी भांति 1899 में रोमेश चन्द्र दत्त ने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि शिक्षित भारत ने अपने को ब्रिटिश भारत के साथ व्यवहारिक रूप से एकाकार कर लिया है, वह ब्रिटिश शासन सदैव बनाये रखना चाहते हैं और ब्रिटिश राज्य के प्रति वफादार हैं।[36] इतना ही नहीं, उन्होंने अपने बच्चों के बच्चों को संवैधानिक वफादारी की विरासत अपनाते हुए संघर्ष के लिए कहा।[37] 1902 ई० में सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने अध्यक्ष के रूप में अपने पूर्व के (1892 ई०) भाषण को दोहराया और कहा, "हम ब्रिटिश राज के स्थायीत्व के लिए ब्रिटिश साम्राज्य के महान संघ में स्थायी रूप से शामिल किये जाने के लिए चिंतित और उत्सुक हैं।"[38]

1903 ई० में लाल मोहन घोष ने भी अध्यक्षीय भाषण में इसी प्रकार के उद्‌गार प्रकट किये।[39] उन्होंने कहा, "जहां तक हमारी बात है, हम इस विश्वास से चिपके रहना चाहते हैं कि अंग्रेज लोग बर्बर विजेता नहीं हैं, बल्कि वे स्वतन्त्रता के लिये लड़ने वाले वीर हैं, जिनका पवित्र उद्देश्य है सभ्यता के इस प्राचीन देश में प्रतिभा की मशाल जलाना और फिर एक बार उसको ऊपर उठाकर कुछ हद तक उस स्थान पर पहुंचा देना जो उसके भूतकाल के इतिहास की महानता के अनुकूल हो।"

अत: अध्यक्षीय भाषणों के संक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उदारवादी ब्रिटिश सरकार के प्रति अटूट श्रद्धा तथा हयूम की भावनानुसार उनकी राजभक्ति सन्देह से ऊपर थी।

उदारवादियों के प्रमुख प्रस्ताव तथा कार्यक्रम

1888-1905 ई० तक कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशनों में अनेक प्रस्ताव पारित किये गये। इन प्रस्तावों में उदारवादी कांग्रेस के कार्यक्रमों की दिशा का ज्ञान होता है। अधिकतर प्रस्ताव ऐसे ही हैं जिनको बार-बार दोहराया गया। कांग्रेस के संगठन या संविधान से सम्बन्धित प्रस्तावों के अलावा कुछ महत्त्वपूर्ण प्रस्तावों[40] को जानना उपयोगी होगा।

उदारवादियों ने कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में ही इण्डियन कौंसिल में सुधार पर बल दिया था। वास्तव में उन्होंने भारत मन्त्री व उनकी कौंसिल को समाप्त करने की मांग की थी। 1858 ई० के भारतीय अधिनियम द्वारा इस कौंसिल को समाप्त करने की मांग प्रमुखत: इसलिए की गई थी, क्योंकि इसमें कोई भी भारतीय प्रतिनिधि न था। इसके विपरीत कांग्रेस के दसवें अधिवेशन (1894 ई०) में हाऊस आफ कामन्स की एक स्थायी समिति बनाने का प्रस्ताव किया

जो भारत मन्त्री को सलाह दिया करे।

उदारवादियों ने प्रारम्भ से ही वैधानिक परिवर्तनों की मांग की। उन्होंने इम्पीरियल तथा लेजिस्लेटिव कौंसिलों में भारतीयों को बढ़ाने तथा उनके अधिकारों को विस्तृत करने को कहा। उन्होंने यह भी मांग की कि लेजिस्लेटिव के आधे सदस्य निर्वाचित हों और साथ ही अप्रत्यक्ष चुनाव का सिद्धान्त मान लिया जाये। आंशिक रूप से यह कहा जा सकता है कि यही ऐसा विषय था जिसके प्रयत्नों के स्वरूप 1892 का इण्डियन कौंसिल ऐक्ट पास किया गया।

उदारवादियों ने प्रारम्भ से ही प्रशासनिक सुधारों की मांग की तथा इसके लिए एक रायल कमीशन की नियुक्ति की मांग की। न्यायपालिका तथा फौजदारी मामलों में कार्यकारिणी के प्रस्तावों को बार-बार दोहराया। जूरी प्रथा को लागू करने तथा समूचे भारत में इसे सुचारू रूप से व्यवस्थित करने की मांग की। पुलिस प्रशासन में सुधार तथा उसकी जांच की भी मांग की गई।

उदारवादियों ने उच्च सरकारी पदों पर भारतीयों की नियुक्ति के प्रश्न पर विशेष बल दिया। भारतीय सिविल सेवा (I.C.S.) में प्रतियोगिता की आयु में बढ़ोत्तरी और भारत तथा इंग्लैण्ड में एक साथ परीक्षा देने की सुविधा की मांग की गई। प्रस्ताव सीधे मध्यम वर्गीय अंग्रेजी पढ़े-लिखे से जुड़ा था, अत: इसे बार-बार विभिन्न अधिवेशनों में लाया गया। इसमें कुछ सफलता भी मिली। परीक्षा में बैठने की आयु 19 वर्ष की बजाये 23 वर्ष कर दी गई।

उदारवादियों ने कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में ही सैनिक खर्चों को कम करने की मांग की। यह भी कहा गया कि भारत पर देश के बाहर होने वाले युद्धों का सैनिक खर्चों का बोझ न लादा जाये। भारतीय सेना का, देश के बाहर साम्राज्य विस्तार के लिए उपयोग न किया जाये। सेना में भारतीयों को उच्च स्थान दिया जाये तथा भारत में सैनिक विद्यालयों की स्थापना की जाये। भारत से सम्बन्धित हथियार नियमों पर बड़ा विवाद हुआ। उल्लेखनीय है कि हयूम के विरोध के बावजूद भी इण्डियन आर्म्स ऐक्ट के विरूद्ध प्रस्ताव पारित हुआ। तिब्बत में लार्ड कर्जन द्वारा भारत सेना भेजने पर कटु आलोचना हुई।

उदारवादियों ने प्रारम्भ में कृषि के प्रति कोई रूचि नहीं दिखलाई, लेकिन कांग्रेस के चौथे अधिवेशन में भूमिकर की स्थायी, निश्चित और कम करने को कहा। किसानों को सस्ती ब्याज दर पर ऋण देने के लिए कृषि बैंकों की स्थापना की मांग की। जमींदारों के शोषण से भी किसानों की रक्षा की बात की गई। इसी भांति 1892, 1893 ई० में जंगलात कानूनों की कठिनाईयां भारत सरकार के सामने रखी गई, जंगलों की सीमायें निर्धारित करने और वहां रहने वालों की

सुविधाओं की आवश्यकता पर बल दिया गया।

व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग की प्रगति की ओर भी ध्यान देने को कहा गया। स्वदेशी वस्तुओं पर बल दिया गया। 1901 ई० में एक औद्योगिक प्रदर्शनी भी शुरू की गई। नए-नए उद्योगों को खोलने और औद्योगिक तथा तकनीकी स्कूलों को खोलने की मांग की गई।

सरकार की कर नीति की भी आलोचना की गई। विशेषकर रूई पर पुन: आयात कर लगाने का आग्रह किया गया। 1893 में एक्साईज कर लगाने पर तीव्र आलोचना की गई। आयकर कम से कम एक हजार रूपये की राशि पर लगाने की मांग की गई।

स्थानीय स्व-शासन में निर्वाचित सदस्यों की संख्या कम करने और उनकी शक्तियां कम करने पर विशेषकर लार्ड कर्जन के काल में, कटु विरोध हुआ और इसे वापिस लेने का अनुरोध हुआ।

शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर भी बल दिया गया। भारतीय शिक्षण संस्थाओं के अध्यापकों को राजनीतिक गतिविधियों पर रोक लगाने के आदेश की कटु आलोचना की गई। कलकत्ता विश्वविद्यालय अधिनियमों की भी कटु आलोचना की गई।

उदारवादियों ने नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की मांग की। राजद्रोह सम्बन्धी कानूनों को वापस लेने को कहा। नाटू भाईयों की गिरफ्तारी पर तीव्र प्रतिक्रिया की गई, लार्ड कर्जन के 'औफिशियल सीक्रेट एक्ट' की कटु आलोचना की गई, महिलाओं को मताधिकार देने का सुझाव दिया गया। नागरिकों की आर्थिक दशा सुधारने पर भी बल दिया गया।

यह उल्लेखनीय है कि कांग्रेस में 'गरीबी' का प्रस्ताव सर्वदा बना रहा। सर्वप्रथम दादा भाई नौरोजी ने 1886 के अधिवेशन में गरीबी दूर करने पर अपने विचार प्रकट किये और तभी से यह मुद्दा न केवल उदारवादियों का बल्कि बाद के कांग्रेसी प्रस्ताव का विषय बना रहा। गरीबी पर प्राय: प्रतिवर्ष प्रस्ताव पारित करने की प्रथा सी बन गई। देश में फैली बेकारी, भुखमरी और गरीबी को दूर करने को कहा गया।

उदारवादियों ने प्रारम्भ में ही ब्रह्म देश को भारत के वायसराय से मुक्त करने का प्रस्ताव पास किया, जो बहुत बाद में व्यवहारिक रूप से माना गया था।

उदारवादी कांग्रेस के द्वारा 1885-1905 के दौरान पारित प्रस्तावों से उनके दृष्टिकोण का पता चलता है। अधिकतर मांगें बार-बार दोहराई गईं तथा अधिकतर मांगों पर सरकार ने ध्यान न दिया।

यह उल्लेखनीय है कि यह सोचना गलत होगा कि सभी प्रस्ताव पूर्णत: मि० हयूम की इच्छानुकूल थे। कम से कम दो प्रस्तावों का भारत में उनके रहते तीव्र विरोध हुआ था। इसमें पहला प्रस्ताव 1886 ई० के अधिवेशन में हुआ था जबकि हयूम जूरी प्रथा व्यवस्था के विचार के विस्तार को चाहता था परन्तु इसके विरूद्ध हाईकोर्ट में अपील के प्रस्ताव को रद्द करना चाहता था। परन्तु प्रतिनिधि इसके दूसरे भाग को नहीं चाहते थे। अत: हयूम अपना प्रस्ताव पास कराने में सफल हुआ, लेकिन इससे हयूम सावधान हो गया। इस प्रस्ताव का विरोध बंगाल तथा महाराष्ट्र के प्रतिनिधियों ने किया था।[41]

दूसरे 1887 के तीसरे अधिवेशन में प्रतिनिधि, लार्ड लिटन के द्वारा बनाये गए 'इण्डियन आर्म्स ऐक्ट' के विरोध में संशोधन पारित करना चाहते थे।[42] हयूम ने इसका विरोध किया परन्तु हयूम की इच्छा पूरी न हुई। इसी भांति 16 जनवरी 1892 में हयूम द्वारा भेजे गये गुप्त पत्र को जिसमें प्रांतीय समितियों से इसे कांग्रेस के प्रतिनिधियों तथा सदस्यों को भेजने का आग्रह किया था। बम्बई तथा इलाहाबाद की कमेटियों ने ये पत्र सरकार के डर से नीचे तक नहीं भेजे। परन्तु इतना अवश्य है कि हयूम के 1894 में उसके इंग्लैण्ड वापिस लौटने पर उसको भावभीनी विदाई दी गई। इस अवसर पर हयूम ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था, "अगर दुर्भाग्य से एक महान यूरपीयन युद्ध हो जाये, जिसमें इंग्लैण्ड भी भाग ले रहा हो, तो वह (हयूम) चाहता है कि भारत के लोग मिलकर तथा बिना किसी हिचक के ब्रिटिश जनता की सहायता करें जो उनकी भावना के अनुकूल एक श्रेष्ठ राष्ट्र है।"

उदारवादियों की कार्यविधि

उदारवादियों की कार्यविधि पूर्णत: संवैधानिक मार्ग की थी। उनकी इसमें पूर्ण आस्था थी। वे समाचार पत्रों, भाषणों, वचनों और वार्षिक अधिवेशनों में प्रस्ताव पारित कर अपनी भावनाओं को व्यक्त करते थे तथा ब्रिटिश सरकार से अपनी मांगे रखते थे। समय-समय पर जन सभाओं द्वारा प्रभावपूर्ण शैली में अपना भाषण देते थे। इस शैली पर केन्द्र तथा प्रांतों तक संगठनात्मक ढ़ांचा भी बन गया था। भाषण देते समय वे अपने भावों को नपे-तुले शब्दों में अकाट्य प्रमाणों के आधार पर रखते थे। वे अपनी मांगों के लिए प्रेस का भी उपयोग करते थे। समय-समय पर सरकार को प्रार्थना पत्र, याचना पत्र भेजते तथा देश की जनता की कठिनाईयों को प्रकट करते थे, उदारवादियों को यह विश्वास था कि इंग्लैण्ड की सरकार को भारत की स्थिति की जानकारी है। समय-समय पर वे शिष्टमण्डल भेजते तथा इंग्लैण्ड के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से मिलते थे। विलियम डिग्वी के नेतृत्त्व में कांग्रेस ने ब्रिटेन में भी अपनी शाखा स्थापित की थी।

'इण्डिया' नाम की पत्रिका भी प्रारम्भ की थी। समय-समय पर ब्रिटिश देशवासियों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए वे अपने अधिवेशनों में इंग्लैण्ड के विशिष्ट व्यक्तियों, ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के प्रमुख सदस्यों को भी बुलाते थे, उनका विशेरू रूप से अभिनन्दन करते थे, उनके वक्तव्यों को प्रसारित तथा प्रचारित करते थे। उदाहरण के लिए 1889 ई० के पांचवे अधिवेशन में मि० चार्ल्स ब्रेडले पार्लियामेन्ट के सदस्य के आगमन पर उस अधिवेशन का नाम ही 'ब्रेडले' अधिवेशन के नाम से प्रचारित हो गया था तथा इसमें ब्रेडले ने उदारवादियों को प्रसन्न करते हुए कहा था, "अगर मैं लोगों के लिए नहीं तो किसके लिए काम करूंगा? जनता के बीच पैदा हुआ, लोगों द्वारा विश्वास मिला, मैं लोगों के लिए मरूंगा तथा मैं कोई भौगोलिक या नस्लीय सीमायें नहीं जानता।" उसने पार्लियामेन्ट में सुधार बिल रखने का वायदा किया था।[45] उदारवादियों ने इसी भांति 1890 के अधिवेशन में प्रस्ताव पारित कर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी व व्योमेश चन्द्र बैनर्जी तथा 1905 के अधिवेशन में गोपाल कृष्ण गोखले को इंग्लैण्ड अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिये भेजा था। ब्रिटिश द्वारा पारित भारत के लिए किसी कार्य पर वे धन्यवाद देने में कभी न चूकते। यहां तक कि भारत में अत्याचारी एवं अहंकारी लार्ड कर्जन के भारत आगमन पर स्वागत प्रस्ताव पारित करने से न चूके। अत: संक्षेप में उदारवादी कांग्रेस पूर्णत: संवैधानिक तरीकों में विश्वास रखती थी। इनका मार्ग अंग्रेज सरकार से बार-बार प्रार्थना, याचना, मनवाना तथा प्रचार (Prayer, Petitions, Persuasion and Propaganda) का था। वे सरकार से टकराव की नीति से सदैव बचना चाहते थे तथा सरकार से टकराव से भयभीत भी रहते थे। गोपाल कृष्ण गोखले ने एक बार कांग्रेसी सदस्यों को सावधान करते हुए कहा था, "तुम सरकार की शक्ति के बारे में नहीं समझ सकते, यदि कांग्रेस, सरकार को चैलेंज देंगे तो सरकार इसे पांच मिनट में समाप्त कर देगी।"

उदारवादियों के उपरोक्त क्रिया-कलापों, विभिन्न अधिवेशनों में पारित प्रस्तावों, स्वतन्त्रता के बारे में मांग का अभाव तथा कार्य विधियों को देखते हुए भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में इनके प्रयत्नों को विवादास्पद माना जाता रहा है। अत: इस पर तरह-तरह के आरोप-आक्षेप लगते रहे।[46] उदारवादी कांग्रेस में बंगाली प्रभाव को देखते हुए 'बंगाली कांग्रेस', कुछ ने इसमें नाममात्र का मुस्लिम अनुपात के कारण इसे 'हिन्दू कांग्रेस' मुख्यत: अंग्रेजी पढ़े मध्यम वर्ग होने के कारण इसे 'शिक्षित अल्पसंख्यकों की कांग्रेस' तथा कभी 'दूरबीन से देखी जाने वाले अल्पसंख्यक' कांग्रेस कहा गया। किसी ने इसे 'स्वप्नदर्शी आदर्शवादी', कुछ ने इसे 'सरकारी स्थान पाने के इच्छुक निराशों की कांग्रेस' तथा कुछ ने इसे 'गैर जिम्मेवार आन्दोलन कर्ता की कांग्रेस' भी कहा।

परन्तु उपरोक्त विश्लेषण तथा निष्कर्ष अनुचित होंगे तथा दुराग्रह पूर्ण होंगे। यद्यपि यह

सही है कि भारत की स्वतन्त्रता की दृष्टि से उदारवादियों के उद्देश्य बहुत सीमित थे तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन तक रह गये थे। उन्होंने कभी भी भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता की कल्पना न की थी, यद्यपि विदेशों में विशेषकर यूरोप में विभिन्न देशों के स्वतन्त्रता संघर्ष को उन्होंने पढ़ा था। इसी भांति उनके मार्ग भी अत्याधिक सीमित थे। कांग्रेस की गतिविधियां मुख्यत: वर्ष में एक बार तीन दिनों के सम्मेलन करने या कभी-कभी भारत के किसी उच्च अधिकारी से मिलने या इंग्लैण्ड में प्रतिनिधि मण्डल भेजने तक थी तथा वहां भी वे बेरंग लौटते थे। उनकी कार्यविधियों को देखकर कुछ लोग उन्हें 'आराम कुर्सी पर बैठकर चिंतन करने वाले राजनीतिज्ञ' भी कहते थे। अत: कुछ ने इसे किसी भी प्रकार से राष्ट्रीय नहीं माना है क्योंकि यह भारतीयों का छोटा सा प्रतिनिधित्व भी न करती थी।[47] एक इतिहासकार ने इन्हें पाश्चात्य ढ़ंग से उच्च शिक्षा की सीधी उपज बतलाया था।[48] वह भी इसे किसी भी रूप में राष्ट्रीय नहीं मानते क्योंकि वह भारतीयों के एक मामूली स्तर पर ही प्रतिनिधित्व करते थे और न ही उनके राष्ट्रीय आदर्श को।[49] कुछ विद्वानों ने उदारवादी सिद्धांतों को पाश्चात्य अन्धानुकरण कहकर आलोचना की। अनेक विद्वानों ने उदारवादियों की अंग्रेजो की न्यायप्रियता, उन पर अनावश्यक आस्था पर भी कटाक्ष किये हैं।

यह सही है कि प्रारम्भ के बीस वर्षों में राष्ट्रीय आन्दोलन को एक निश्चित दिशा में सफलता न मिली। वे यह भूलते रहे कि ब्रिटिश शासन का मूल आधार भारत का आर्थिक शोषण, राजनीतिक पराधीनता बनाये रखना तथा धार्मिक-सांस्कृतिक भय था। कांग्रेस आंशिक रूप से राजनीतिक सुविधाओं तथा आर्थिक असन्तोष को ही प्रकट करती रही। उनके भारत के सामाजिक तथा सांस्कृतिक एजेण्डे को जो भारत के जनमानस का आधार है प्रारम्भ से ही अपने कार्यक्रमों से निष्कासित कर दिया था।

सही बात तो यह है कि उदारवादियों के कार्यों के सन्दर्भ में विचार तत्कालीन सामाजिक व राजनीतिक परिवेश एवं परिस्थितियों के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए। 1857 ई० के महासमर के पश्चात, भारतीय सामाजिक व धार्मिक सुधार आन्दोलनों द्वारा देश में जागृति स्थापित की थी। उदारवादियों ने संयोगवश वह पथ नहीं अपनाया। व्यक्तिगत रूप से वे देशभक्त, पूर्ण निष्ठावान तथा देश सेवा की भावना से ओतप्रोत होने के पश्चात भी उन्होंने मि० हयूम का अनुकरण किया। उन्होंने स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द तथा महर्षि अरविन्द का मार्ग छोड़ दिया। बल्कि पाश्चात्य रंग में अपने को ढ़ालकर धर्म तथा संस्कृति को रूढ़िवादी तथा पिछड़ेपन का द्योतक समझते हुए पाश्चात्य दृष्टिकोण को अपनाया। यह वह समय था जब स्वामी विवेकानन्द को कहना पड़ा था कि "लम्बे से लम्बे राष्ट्रीय भाव समाप्त होते जान पड़ते हैं। हमारी मातृभूमि अपनी

गहन निद्रा से जाग उठी है, कोई भी शक्ति उसे पीछे नहीं धकेल सकती।"

उदारवादियों ने देश की गरीबी तथा देश में होने वाले आर्थिक निष्कासन के रहस्य का उद्‌घाटन किया था। देश सेवा और देशभक्ति की भावना जागृत की। ब्रिटिश सरकारों के दमनकारी नीति का विरोध किया था तथा कर्जन के विरूद्ध उनके प्रयास सराहनीय थे। संक्षेप में 1885–1905 ई० तक के काल को भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन की फसल बोने का काल कहा जा सकता है।

अध्याय-दो

सन्दर्भ सूची

1. अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृ. 136
2. त्र्य.र. देवगिरीकर, गोपाल कृष्ण गोखले (नई दिल्ली, 1967), पृ. 155
3. एम.ए. जैदी, द इन्साईक्लोपीडिया आफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस (नई दिल्ली, 1977), भाग एक, पृ. 41
4. विस्तार के लिये, रिपोर्ट आई.एन.सी., बम्बई, 1885
5. वही
6. ए.सी. मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 65
7. वही
8. वही
9. विपिन चन्द्र पाल, मैमायर्स आफ द लाईफ एण्ड टाइम्स, भाग दो (कलकत्ता, 1951 संस्करण), पृ. 43–44
10. विपिन बिहारी मजूमदार व भक्त प्रसाद मजूमदार, कांग्रेस एण्ड कांग्रेसमैन इन द प्री गांधी इरा (1885–1917), (कलकत्ता, 1967), पृ. 15–16
11. वही
12. कलक्टेड वर्क्स आफ गांधी (आगे से सी.डब्ल्यू.एम.जी.) भाग XVI, पृ. 462
13. विपिन चन्द्र पाल, पूर्वोक्त, पृ. 13–14
14. ऐ.सी. मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 67
15. वही, पृ. 67; मजूमदार व मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 16
16. रिपोर्ट आई.एन.सी., इलाहाबाद, 1888
17. रिपोर्ट, आई.एन.सी., कलकत्ता, 1890
18. रिपोर्ट, आई.एन.सी., नागपुर, पूर्वोक्त, पृ. 41
19. वही; मजूमदार व मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 41
20. सर अल्फ्रेड सी. तायल, द लाईफ आफ द मारक्वीस आफ डफरिन एण्ड आवा, भाग दो (लन्दन, 1905), पृ. 149–150
21. विपिन चन्द्र पाल, पूर्वोक्त, पृ. 87
22. मजूमदार व मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 14

23. वही, पृ. 10, 16
24. वही, पृ. 42
25. वही, पृ. 43
26. सी.एच. फिलिप्स (सम्पादक) द इव्यलूशन आफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान (1858-1947) सलैक्ट डाक्यूमेन्ट्स (लन्दन, 1962), पृ. 150-151; रोनाल्डोशे, लाईफ आफ कर्जन, भाग दो, पृ. 151 (देखें, लार्ड कर्जन का हैमिल्टन के नाम पत्र, 18 नवम्बर 1900)
27. सर जान चेसने, इण्डियन पालिटी, ऐ व्यू आफ द एडीमिन्सट्रेशन इन इण्डिया (लन्दन, तृतीय संस्करण 1894), पृ. 384-386
28. एस.सी. मित्तल, इण्डिया डिस्टोरेटेड : ए स्टेडी आफ ब्रिटिश हिस्टोरियन्स आन इण्डिया, भाग दो, पृ. 156
29. रिपोर्ट आई.एन.सी., कलकत्ता, 1866
30. वही, मद्रास, 1887
31. वही, बम्बई, 1889
32. वही, कलकत्ता, 1890
33. वही
34. वही, कलकत्ता, 1896
35. वही, अमरावती, 1897
36. वही, लखनऊ, 1899
37. वही
38. वही, अहमदाबाद, 1902
39. वही, मद्रास, 1903
40. देखें, 1885-1905 में पारित प्रस्तावों के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की विभिन्न वार्षिक रिपोर्ट्स
41. बिपिन चन्द्र पाल, पूर्वोक्त, पृ. 16-17
42. आर.पी. अय्यर व एल.एस. भण्डारी, द कांग्रेस कारवां, द हिस्ट्री आफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस आफ इण्डियाज फार स्वराज्य (1885-1945), बम्बई, 1945, पृ. 15
43. मजूमदार व मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 43
44. वेडरबर्न, पूर्वोक्त, पृ. 104
45. आर.सी. अय्यर व एल.एस. भण्डारी, पूवोक्त, पृ. 19

46. ए.सी. मजूमदार, पूवोक्त, पृ. 118-119
47. वी. सिरोल, द इण्डियन अनरेस्ट (लन्दन, 1910); एस.सी. मित्तल, इण्डिया डिस्टोरटेड : ए स्टेडी आफ ब्रिटिश हिस्टोरियन्स आन इण्डिया, भाग तीन (नई दिल्ली, 1998), पृ. 376
48. पी.ई. रोबर्ट, ए हिस्ट्री आफ द ब्रिटिश इण्डिया, पृ. 496
49. पी.ई. रोबर्ट, द ब्रिटिश एम्पायर इन इण्डिया (देखें, कैम्ब्रज माडर्न हिस्ट्री, भाग XII, द लास्ट ऐज (सम्पादक डब्ल्यू. वार्ड व अन्य), पृ. 494-495

अध्याय-तीन
राष्ट्रवादी कांग्रेस

गांधी जी ने 1909 ई० में अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' में कांग्रेस में पनपते दो प्रकार के नेताओं के बारे में लिखा है, "हमारे नेताओं में दो दल हो गये हैं, एक 'मोडरेट' और दूसरे 'एक्सट्रीमिस्ट'। उनको हम 'धीमे' और 'उतावले' भी कह सकते हैं। कुछ लोग मोडरेट को 'डरपोक पक्ष' और एक्सट्रीमिस्ट को 'हिम्मतवाला पक्ष' भी कह सकते हैं।"[1]

राष्ट्रवादियों का उदय

यथार्थ में कांग्रेस को दिशा देने तथा भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में राष्ट्रवादियों (एक्सट्रीमिस्ट) की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। 1857 ई० के महासमर एवं भारत के धार्मिक सुधार आन्दोलनों द्वारा राष्ट्रवाद की भावना को इन्होंने पुन: प्रज्ज्वलित किया। राष्ट्रवादी कांग्रेस के नेता, उदारवादियों के सीमित उद्देश्यों, कार्यक्रमों, तरीकों, वर्ष में केवल एक बार तीन दिन के अधिवेशनों में परस्पर मिलने तथा ब्रिटिश सरकार से केवल अपने प्रस्तावों, सुझावों, प्रार्थना पत्रों तथा स्मृतिपत्रों, याचिकाओं को भेजने से प्रसन्न न थे। साथ ही उदारवादी एक 'मध्यवर्गीय दरबार' था जिसमें सामान्य जनता, कृषक, मजदूर, दलित तथा सामान्य व्यापारी की पहुंच न थी। अत: यह कांग्रेस की दूसरी श्रेणी, भारतीय जनमानस में बढ़ते असन्तोष, सरकार की अकर्मण्यता और कांग्रेस की उदासीनता के विरूद्ध राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति थी। गत कुछ वर्षों में दो भयंकर अकालों क्रमश: 1896-97 व 1899-1900 में हुए थे जिसमें लाखों लोग मरे थे। करोडों की सम्पत्ति विनष्ट हुई थी। हजारों लोग बेघर तथा बेरोजगार हुए थे। परन्तु उदारवादी कांग्रेस केवल सहानुभूति के प्रस्ताव पारित करने के अलावा कुछ न कर सकी थी। अत: उदारवादी कांग्रेस की लोकप्रियता तीव्रता से घट रही थी।

देश-विदेश की अनेक घटनाओं ने 19वीं शताब्दी के अंतिम तथा 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में राष्ट्रवादी भावनाओं को प्रोत्साहन दिया। 1896 में अबीसीनिया (इथोपिया) की यूरपीयन देश इटली पर विजय, 1904-05 में ऐशिया के मामूली तथा छोटे से देश जापान की विशाल देश रूस पर विजय ने जनमानस की सोच को बदला था। इसे पूरब की पश्चिम पर विजय समझा गया था।[2] इसी भांति रूस, आयरलैण्ड, चीन, मिश्र तथा टर्की आदि में जन-संघर्ष

बढ़ रहे थे। अत: इन विदेशों में हुई घटनाओं ने भारतीय जनता में भी आक्रोश तथा साथ ही राष्ट्रीय भावनाओं को उत्तेजित किया। इससे भारतीयों में अपने शासन को स्थापित करने की आशा जगी।[3] इससे उनमें देशभक्ति, अनुशासन, आत्मत्याग तथा आत्मविश्वास की आवश्यकता की भावना जगी थी।[4] ब्रिटेन के उपनिवेशों, विशेषकर दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की स्थिति बड़ी असन्तोषजनक तथा दयनीय थी। उदारवादी कांग्रेस का कार्य केवल कभी-कभी उनके समर्थन में प्रस्ताव पारित करने तक सीमित था। इससे अधिक तो कार्य अकेले गांधी जी ने नेटाल इण्डियन कांग्रेस तथा उन्होंने वहां 'इण्डियन ओपीनियन' पत्र निकाल कर तथा सीधे संघर्ष से कर दिया था।

इंग्लैण्ड अथवा भारत में ब्रिटिश अधिकारियों की दृष्टि दमनकारी, दबाव तथा दहशत की थी। 1885-1905 ई० के काल में इंग्लैण्ड में अनुदार दल का सामान्यत: प्रभुत्व रहा था, जिन्हें भारत में उगते हुए राष्ट्रवाद से कोई सहानुभूति न थी। साथ ही भारत में ब्रिटिश वायसरायों का रूख कठोर तथा दमनकारी था। कांग्रेस के जन्म के काल से ही वे इसके दमन में लग गये थे। यद्यपि कांग्रेस का जन्म लार्ड डफरिन के आशीर्वाद से हुआ था परन्तु वह जाते-जाते कांग्रेस के प्रति क्षुब्ध हो गया था। लार्ड लैन्सडाऊन तथा लार्ड इलगिन भी कांग्रेस के विरूद्ध थे। लार्ड कर्जन (1898-1905 ई०) के काल में दमनकारी तथा प्रतिक्रियावादी सरकारी नीति की हद हो गई थी। उसके साम्राज्यवादी तथा 'बांटो और राज करो' की विभेदकारी नीति का सबसे बड़ा प्रमाण 1905 ई० में बंगाल विभाजन के रूप में सामने आया। विभाजन करते समय अनेक कुतर्क दिये गये थे, जैसे बंगाल का बड़ा क्षेत्रफल तथा जनसंख्या, यातायात की कमी, मार्गों की अपर्याप्त सुरक्षा व्यवस्था, किसानों की दुरावस्था तथा इसे 'शासकीय आवश्यकता' बताया गया था। परिणाम स्वरूप 20 जुलाई 1905 को लार्ड कर्जन द्वारा बंगाल विभाजन की घोषणा कर दी गई थी। इसे भारतीयों ने एक बम्ब विस्फोट के रूप में लिया।[5] यह ब्रिटिश नौकरशाही का निकृष्टतम प्रदर्शन था।[6] इसने उदारवादी कांग्रेसियों के ब्रिटिश राज्य के प्रति विश्वास को हिला दिया था।[7] यहां तक कि गोपाल कृष्ण गोखले ने भी कर्जन के शासन की तुलना औरंगजेब के शासन से की[8] तथा इसे 'रूस के जार'[9] के समान बतलाया गया। अत: कर्जन के इस कुकृत्य से राष्ट्रवादी कांग्रेस को प्रोत्साहन मिला। लार्ड कर्जन के शासन ने ब्रिटिश राज्य की समस्याएं न सुलझाकर, नई समस्याएं खड़ी कर दीं[10] जिसका विस्फोट स्वदेशी तथा बायकाट आन्दोलन के रूप में हुआ।

प्रमुख राष्ट्रवादी नेता

राष्ट्रवादी कांग्रेस के प्रमुख नायक लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चन्द्र पाल तथा महर्षि अरविन्द घोष थे। उन्होंने बहुत पहले 1881 ई० में अपने पत्रों

– 'मराठा' (अंग्रजी) तथा 'केसरी' (मराठी) के द्वारा राष्ट्र जीवन में नव चेतना पैदा की थी। वे कांग्रेस के अधिवेशन में पहली बार 1889 ई० में गये थे। परन्तु वह शीघ्र ही कांग्रेस की नीति तथा मार्ग से क्षुब्ध थे। 1895 ई० में उन्होंने कांग्रेस के पूना अधिवेशन में कांग्रेस के नेतृत्व पर आक्षेप किया था तथा यह भी कहा कि कांग्रेस सामान्य जनता तक जाना ही नहीं चाहती।[11] ब्रिटिश सरकार लोकमान्य तिलक की गतिविधियों के प्रति सतर्क थी। 1897 ई० में उन्हें एक बहाना भी मिल गया था। अपने पत्र 'केसरी' में शिवाजी के बारे में उनका एक भाषण छापा था। सरकार ने राजद्रोह का झूठा मुकदमा चलाकर उन्हें 14 सितम्बर 1897 में डेढ़ वर्ष की कड़ी सजा सुनाई थी। परन्तु उनकी गिरफ्तारी का विरोध देश-विदेश में हुआ। अत: उन्हें एक साल बाद ही 6 सितम्बर 1898 को कारागार से मुक्त कर दिया गया। 1897 ई० में अमरावती अधिवेशन में तिलक के अनुयायियों तथा गोखले के साथियों में तीव्र प्रतिरोध हुआ। गोखले के खिलाफ प्रदर्शन किये गये। तिलक के जेल में होने के कारण तिलक की रिहाई के लिए उक्त अधिवेशन में प्रस्ताव रखने की कोशिश की गई, परन्तु उदारवादियों ने उसे पास नहीं होने दिया। 1898 ई० में तिलक के प्रति समवेदना का एक प्रस्ताव रखने का असफल प्रयत्न हुआ। संक्षेप में सात साल तक (1897–1903 ई०) तक उन्हें कांग्रेस के मंच से दूर रहना पड़ा। परन्तु इस काल में कांग्रेस अधिवेशनों में उदारवादियों के प्रति रोष बढ़ता गया। वे हयूम की नीतियों से सन्तुष्ट न थे। उन्होंने 1903 ई० में हयूम को एक पत्र लिखकर कहा था, "अगर संवैधानिक राजनीतिक आन्दोलन हमारी प्रगति का वास्तविक पथ है तो उसका कोई नतीजा निकलना चाहिए और यदि ऐसा नहीं होता तो हमें वह रास्ता छोड़ देना चाहिए। हमें कोई और लाभप्रद मार्ग ग्रहण करना होगा।"[12] लोकमान्य तिलक ने 4 जुलाई 1904 के 'केसरी' में लिखा था, "हमारा श्रेय किसी भी तरह सफल न होगा, अगर हम साल में एक बार मेंढ़कों की तरह टर्र-टर्र करते हैं।"

उल्लेखनीय है कि तत्कालीन अनेक नेताओं ने कांग्रेस के उदारवादी नेताओं की रीति-नीति की कटु आलोचनायें की। उदाहरण के लिए उदारवादी नेताओं को 'विलासी भाषण वीर' कहा गया। यहां तक विश्व विश्यात स्वामी विवेकानन्द ने भी इनकी आलोचना की। उन्होंने देश के युवकों में देशभक्ति, आत्मविश्वास तथा स्वाभिमान की भावना जगाते हुए भारत माता की पूजा को सर्वोच्च बतलाया। उन्होंने कहा, हे भारत, क्या तुम इस शर्मनाक कायरता से वह स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकोगे जिसे पाने के योग्य केवल वीर और बहादुर लोग ही होते हैं?" स्वामी विवेकानन्द 1899–1900 ई० में भारत में हुए भयंकर अकाल, बाढ़, बीमारी तथा महामारी से त्रस्त होने पर उदारवादियों के शांत बैठने से कुपित थे। 2 फरवरी 1900 को एक पत्र में[14] उन्होंने स्वामी

अखण्डानन्द को लिखा था, "भयंकर अकाल, बाढ़, बीमारी और महामारी के इन दिनों में बताईये कि आप के कांग्रेसी लोग कहां हैं? क्या सिर्फ यही कहने से काम नहीं चलेगा – देश की सरकार हमारे हाथ में सौंप दीजिए? और उनकी बात सुनता भी कौन है? अगर कोई आदमी काम करता है तो क्या उसे किसी चीज के लिए मुंह खोलना पड़ता है?" इसी प्रकार से कांग्रेस के ढ़ीले-ढ़ाले तथा डरपोक रवैये की आलोचना भगिनी निवेदिता, रविन्द्रनाथ टैगोर जैसे व्यक्तियों ने भी की।

राष्ट्रवादियों के दूसरे प्रमुख नेता लाला लाजपत राय (1865–1928 ई०) थे। वे 1888 ई० में कांग्रेस में भाग लेने गये थे तथा जिन्होंने कांगेस के मंच से हिन्दी में भाषण दिया था। 1889 ई० में उनकी हयूम से व्यक्तिगत भेंट भी हुई थी, परन्तु वे उससे प्रभावित न थे। उन्होंने हयूम द्वारा कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य ब्रिटिश राज्य की सुरक्षा करना अथवा 'सेफ्टी वाल' कहा था। उन्होंने पहले 'पंजाबी' तथा बाद में 'द पीपुल' निकाला था। पंजाब में उन्होंने कृषकों के आन्दोलन का नेतृत्व किया था। उनके राष्ट्रभक्तिपूर्ण लेखों के कारण उन्हें कारावास की सजा देकर मांडले जेल भेज दिया गया था।[15] प्रारम्भ से ही जुझारू प्रवृत्ति का होने के कारण सरकार उनसे सदैव सतर्क रहती। पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर इब्बटसन का भ्रामक मत था कि लाजपतराय ने अफगानिस्तान के अमीर से पत्र व्यवहार तथा उसने सेना की वफादारी को कम किया है।[16] उसे समूचे पंजाब में 'विद्रोह फैलाने का केन्द्र' माना।[17] भारतमंत्री लार्ड मार्ले ने उन्हें एक ऐसा राजनीतिक तथा क्रांतिकारी उत्साही लिखा, जिसने ब्रिटिश सरकार के प्रति घृणा फैलाई[18], ब्रिटिश अधिकारियों के अनुसार, "कांग्रेस पार्टी वफादार है पर लाजपतराय खतरनाक है।" इसी भांति भारत के वायसराय लार्ड हार्डिंग ने उन्हें एक खतरनाक षडयन्त्रकारी माना जो अधिकतर कठिनाईयों तथा अपराधों के लिये उत्तरदायी है जिससे कुछ वर्षों से भारत परेशान है।[19] उन्होंने देश के अनेक युवकों में देशभक्ति तथा राष्ट्रीय स्वाभिमान की भावना अंकुरित की थी।

इसी श्रेणी में तीसरे बड़े राष्ट्रवादी विपिनचन्द्र पाल (1858–1932 ई०) थे। उनकी राष्ट्रीय भावना का उद्भव राजनारायण बसु, नवगोपाल मित्र और उनके हिन्दू मेलों से हुआ था। वे बंकिम चन्द्र चटर्जी और उनके प्रमुख पत्र 'बंग दर्शन' से बड़े प्रभावित हुए थे। उन्होंने एक पत्र 'न्यू इण्डिया' भी निकाला था। बंग-भंग आन्दोलन में बढ़चढ़ कर भाग लिया था। उन्होंने 'वन्देमातरम' नामक पत्र भी निकाला। 1907 ई० में उन पर भी राजद्रोह का मुकद्दमा चलाकर कारावास भेज दिया गया।

राष्ट्रवादी नेताओं में महर्षि अरविन्द घोष (1872–1950 ई०) का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे इंग्लैण्ड से लम्बी अवधि के पश्चात 1893 ई० में भारत लौटे थे। भारत में आध्यात्मिक व राजनैतिक चिन्तन को दिशा देने में उनका यथेष्ट स्थान है। उन्होंने तत्कालीन उदारवादी कांग्रेस का गम्भीर अध्ययन किया। कांग्रेस के संवैधानिक प्रयासों की कटु आलोचना की जिसमें अर्जी और प्रार्थना की बात कही गयी थी। 1893 ई० में ही 21 अगस्त 1893 में एक लेख 'न्यू लैम्प फार ओल्ड' प्रकाशित किया था, जिसमें उन्होंने कांग्रेस नेताओं की अंग्रेजों के प्रति भक्ति, डरपोक भाषा और अंग्रेजी राज्य को एक वरदान मानने की नीति की कटु आलोचना की थी। उन्होंने लिखा, "मैं अब कांग्रेस के बारे में यह कहता हूं कि उनके लक्ष्य गलत हैं और उनकी प्राप्ती के लिए वह जिस भावना से चलती है, वह ईमानदारी और मन की भावना के अनुकूल नहीं है। उसने जिन तरीकों को चुना है, वे सही तरीके नहीं, और जिन नेताओं में वह विश्वास करती है, वे नेता बनने योग्य नहीं हैं। संक्षेप में हम इस वक्त उन अंधों की तरह हैं जिनका नेतृत्व अगर अंधे नहीं तो काने जरूर करते हैं।"[20] अत: महर्षि अरविन्द ने पहले कांग्रेसियों को अपने में अपने में रक्त की पवित्रता करने को कहा। महर्षि अरविन्द 1902 ई० में अहमदाबाद अधिवेशन में राष्ट्रवादी नेताओं के गहरे सम्पर्क में आये और उन्होंने आगे बढ़कर भाग लिया।

सूरत की फूट : कांग्रेस का विघटन

वैसे तो उदारवादियों तथा राष्ट्रवादियों में मतभेद प्रारम्भ से ही था। परन्तु हयूम के भारत से जाने के बाद तेजी से उभरने लगा था पर इसका अचानक तीव्रता से प्रारम्भ बंग भंग के बाद हुआ। प्रसंग तो ऐसा था जब कि दोनों को एक दूसरे के निकट आना चाहिए था, परन्तु ऐसा नहीं हो सका। स्पष्ट रूप से इसका पहला प्रकटीकरण हुआ 1905 ई० के बनारस अधिवेशन में जिसकी अध्यक्षता उदारवादियों के प्रमुख नेता गोपाल कृष्ण गोखले कर रहे थे। 1905 ई० में अधिवेशन के दो मुख्य कारण टकराव के थे। पहले उदारवादी नेता गोपालकृष्ण गोखले व सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी भारत में आने वाले प्रिंस आफ वेल्स (भावी जार्ज पंचम) का भव्य स्वागत करना चाहते थे जबकि विषय समिति में लोकमान्य तिलक और लाजपतराय ने इसका कटु विरोध किया। उदारवादी इसके लिए तैयार नहीं हुए। इस पर राष्ट्रवादियों ने इसे खुले अधिवेशन में पास करवाने की घोषणा की। इससे परस्पर टकराव की स्थिति पैदा हो गई। खुले अधिवेशन में प्रस्ताव पास हो गया परन्तु कटुता न घटी। लाला लाजपतराय ने इसका विस्तृत वर्णन किया। उन्होंने लिखा[21],

"इससे पुराने नेता आगबबूला हो गए और संयुक्त प्रदेश के नेता डर गए। उसी रात को बनारस के कमिश्नर, सेनाध्यक्ष और पुलिस सुपरिंटेंडेंट को समाचार दिया गया। दूसरे दिन सवेरे बनारस के मुंशी माधोलाल (स्वागत समिति के अध्यक्ष) डिप्टी कमिश्नर को पंडाल में ले आए। उन्हें डर लग रहा था कि हंगामा हो जायेगा और इसलिए उनका सामना करने की तैयारी कर रहे थे। हम लोगों को राजद्रोह के प्रचारक और बदमाश कहा जा रहा था। उस दिन सारी रात और दूसरे दिन सुबह इसी विषय पर चर्चा होती रही। सुबह हम लोगों को धमकियां दी गईं। कुछ लोग कहते थे कि हम लोग (संयुक्त) प्रदेश के मुंह पर कालिख लगा रहे हैं और कुछ लोग आशंका प्रकट कर रहे थे कि कांग्रेस समाप्त हो जायेगी। इसी तरह की बातें होती रहीं लेकिन हम अपने निर्णय पर डटे रहे। अब 11 बज गये थे, कांग्रेस की बैठक का समय हो गया था लेकिन गोखले न पधारे। खबर आई कि वे विचार-विमर्श में हैं। अंत में गोखले आए, लेकिन कांग्रेस पंडाल में जाने के बदले उन्होंने मुझे मनाना शुरू किया।" अत: लाजपतराय के व्यक्तिगत प्रयत्नों से तिलक मान गये परन्तु प्रस्ताव सर्वसम्मति से नहीं, बहुमत से पारित हुआ।

इसी भांति दूसरा प्रस्ताव बायकाट के सन्दर्भ में था। उदारवादी चाहते थे कि विदेशी वस्तुओं का बायकाट न हो, परन्तु राष्ट्रवादी इससे सहमत न थे, परन्तु प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ। यद्यपि दोनों के विरोध दिखलाई दिये।[22]

उदारवादियों तथा राष्ट्रवादियों में परस्पर कटुत कम न हुई, 10 जुलाई 1906 में 'केसरी' में लोकमान्य तिलक ने 'कांग्रेस के नाम की दिशा' के नाम से लेख लिखा। इसमें उन्होंने कांग्रेस नीति तथा कार्यविधि में परिवर्तन की आवश्यकता बतलाई, उन्होंने लिखा, "कोई भी कांग्रेस को तोड़ना नहीं चाहता, लेकिन प्रश्न है कि क्या कांग्रेस को यह कहने के लिए कि हम ये चीजें चाहते हैं, वर्ष में एक बार सम्मेलन कर और ज्यादा मांगने के लिये, इंग्लैण्ड एक प्रतिनिधि मण्डल भेजकर ही संतुष्ट रहना चाहिए?"[23]

राष्ट्रवादी 1906 ई० के कलकत्ता अधिवेशन के लिए लोकमान्य तिलक या लाला लाजपत राय को अध्यक्ष बनाना चाहते थे परन्तु उदारवादियों ने दादाभाई नौरोजी को अध्यक्ष बनाने का निश्चय किया तथा स्वागत समिति को बिना बताये नौरोजी को निमन्त्रण भेज दिया। पर बाद में राष्ट्रवादियों ने उनका विरोध करना उचित न समझा। किसी प्रकार राष्ट्रवादियों ने अधिवेशन की अध्यक्षता के लिये नौरोजी पर स्वीकृति दे दी परन्तु बायकाट को लेकर विषय समिति में तीखी बहस हुई। दोनों के बीच झगड़े जैसी स्थिति आ गई। उदारवादी बायकाट केवल

बंगाल तक सीमित रखना चाहते थे, जबकि विपिन चन्द्र पाल ने इसे समूचे भारत में करने की बात कही। इसी भांति स्वदेशी के अर्थ को भी भिन्न-भिन्न अर्थों में रखा गया। मालवीय जी ने इसे भारतीय उद्योगों की सुरक्षा के रूप में लिया। लोकमान्य तिलक ने इसे आत्म निर्भरता, दृढ़ता और त्याग के रूप में बताया। दादाभाई नौरोजी ने इसे आर्थिक व शैक्षणिक सुधारों के रूप में प्रस्तुत किया। लाजपतराय ने दोनों में समझौता करने का प्रयत्न भी किया। संक्षेप में 1906 ई० का कांग्रेस अधिवेशन अगले अधिवेशन की रिहर्सल था। लाजपतराय का विचार[24] है कि "इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि दादाभाई नौरोजी ने अध्यक्ष बनना स्वीकार न किया होता और मैने (लाजपतराय) हस्ताक्षेप न किया होता, तो आगामी वर्ष को जो कुछ सूरत में हुआ, वह कलकत्ता में ही हो जाता।" विषय समिति में प्रस्ताव पारित किया गया तथा बायकाट को न्याय संगत बताया गया था और है। फिर भी इसका क्षेत्र अस्पष्ट ही रहा।

सही बात यह है कि इस काल में स्वदेशी का प्रचार तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार तेजी से हुआ। बंग भंग तथा बायकाट आन्दोलन न केवल बंगाल तक सीमित रहे बल्कि इससे सम्पूर्ण भारत का राजनैतिक जागरण हुआ तथा उससे राष्ट्रवादी विचारधारा को बल मिला। राष्ट्रवादी कांग्रेस नेताओं को उदारवादियों के न आदर्शों में आस्था रही, और न उनके तरीकों में।

वस्तुत: 1906 ई० के अधिवेशन के पश्चात उदारवादियों तथा राष्ट्रवादियों में कांग्रेस की बागडोर सम्भालने के लिए खुला संघर्ष प्रारम्भ हो गया। यदि उस समय के तिलक, विपिन चन्द्र पाल तथा अरविन्द घोष के लेखों तथा भाषणों को पढ़ें तो यह विचार स्पष्ट रूप से सामने आता है। अप्रैल 1907 में वन्देमातरम में श्री अरविन्द ने एक लेख में कहा था[25], "नौकरशाही के विरूद्ध किसी भी खुले संघर्ष के विचार से वे (उदारवादी) ड़रकर पीछे भागते हैं। उन्हें लकवा मार जाता है। ब्रिटेन की अति प्रबल शक्ति और भारत की नितांत दुर्बलता का विचार उन पर इस प्रकार हावी है, उनमें साहस और राष्ट्र के विश्वास का इतना अभाव है। राष्ट्रीय चरित्र में और भारतीय देशप्रेम में अविश्वास उनके अन्दर इस तरह जड़ जमाए है तथा जनता के गुण और सच्चे राजनीतिक बल की सम्भावना के प्रति इस प्रकार अंधे हैं कि वे मुक्ति का उबड-खाबड और संकीर्ण रास्ता नहीं देख पाते। नई विचारों के दल की श्रेष्ठता इसी में है कि उसमें अटूट साहस है और राष्ट्र तथा जनता में उनका विश्वास है।"

कलकत्ता अधिवेशन में अगला अधिवेशन नागपुर में करने का फैसला हुआ, परन्तु उदारवादियों ने उसे सूरत में करने का इरादा बदल दिया था। कांग्रेस के इतिहास में पहला मौका था जब उदारवादी तथा राष्ट्रवादी पूरी तरह शक्ति हथियाने के लिए तैयार होकर आये थे। डा.

रासबिहारी घोष उदारवादियों की ओर से इस अधिवेशन के अध्यक्ष थे, राष्ट्रवादी चाहते थे कि कांग्रेस स्वदेशी, बायकाट, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज्य के बारे में, जो 1906 ई० में पास हुए प्रस्ताव पर अमल किया जाये, दोनों में भारी टकराव हुआ, बल प्रयोग किया गया। इसमें लोकमान्य तिलक बोलना चाहते थे परन्तु न केवल बोलने से रोका बल्कि अनको पकड़कर खींचातानी की जाने लगी। विरोध स्वरूप एक मराठा जूता मंच पर गिरा। अफरा-तफरी में अधिवेशन खत्म हो गया। ऐनी बेसेन्ट ने इसको 'एक दु:खद घटना' माना है।[26] राष्ट्रवादियों के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के द्वार बन्द कर दिये जो अगले नौ वर्षों अर्थात् 1916 ई० तक बन्द रहे।

राष्ट्रवादियों का सरकार द्वारा दमन

1907 ई० में कांग्रेस की फूट से ब्रिटिश सरकार को राष्ट्रवादियों के दमन का अच्छा मौका दिया जो एक दशक पूर्व से मौके की तलाश कर रहे थे। 1897 ई० में लोकमान्य तिलक को वे पहले ही डेढ़ वर्ष की सजा दे चुके थे जो बाद में एक वर्ष कर दी गई थी। लार्ड कर्जन के काल में सरकार की दमनकारी तथा साम्राज्यवादी कठोर नियमों ने राष्ट्रवादियों को प्रोत्साहन दिया था। लार्ड कर्जन द्वारा बंग भंग की घोषणा को समूचे राष्ट्र को ही जागृत कर दिया था। साथ ही उदारवादियों की आस्थाओं पर यह गहरा आघात था। इसने न केवल राष्ट्रवादी बल्कि क्रांतिकारी गतिविधियों को बल दिया था। डा. एस० गोपाल ने लिखा, "कर्जन के बंगाल विभाजन ने अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं को अज्ञात प्रेरणा दी थी और स्वतन्त्रता का जहाज अनेक वर्षों बाद अपने बन्दरगाह पर लौटा था।"[27] बंगभंग ने बंगाल की सीमायें लांघकर समूचे भारत को खड़ा कर दिया। साथ ही स्वदेशी तथा बायकाट आन्दोलन ने वर्षों से दबी चेतना को लौटा दिया था। यह पहला परिवर्तन बिन्दु था जब भारतीय जनता ने इसमें भाग लिया।[28]

इसके साथ ही ब्रिटिश सरकार की दमननीति भी क्रूर होती गई। स्वाभाविक है कि इसके परिणाम में राष्ट्रवादी नेताओं पर गाज गिरी। इसमें सर्वप्रथम आया नम्बर पंजाब में लाला लाजपतराय का। वे पंजाब में भूमि सम्बन्धी पंजाब सरकार के कठोर नियमों से ग्रसित तथा स्वदेशी आन्दोलन से जागृति लाने में सफल हुए। उनके साथ सरदार भगतसिंह के चाचा सरदार अजीत सिंह थे, जो केवल पहली तथा अंतिम बार कांग्रेस अधिवेशन में 1906 ई० में गये थे। स्वदेशी तथा बायकाट आन्दोलन, लाला लाजपतराय एवं सरदार अजीतसिंह के नेतृत्व में एक व्यापक जन आन्दोलन बन गया। लाला लाजपतराय ने स्वयं कहा कि "जब सौ वर्षों के शाब्दिक या कागजी अधिवेशन असफल रहे, इन छ: महीनों या बारह महीनों के सही काम ने सफलता प्राप्त की।"[29] अत: शीघ्र ही लाजपतराय का अंग्रेजी पत्र 'पंजाबी' अंग्रेजों की कठोर नीति का

शिकार बना तथा इसके सम्पादक आठवले तथा संचालक लाला जसवन्त राय को गिरफ्तार कर मुकद्दमा चलाया गया। दोनों को 6-6 महीने की सजायें दी गईं तथा इसके अलावा जुर्माना भी किया गया। इस जन आन्दोलन में अनेकों को गिरफ्तार किया तथा सजायें दीं। 9 मई 1907 को लाला लाजपतराय को लाहौर में तथा सरदार अजीत को अमृतसर में गिरफ्तार कर मांडले जेल भेज दिया गया। स्वाभाविक रूप से इसका सर्वत्र विरोध हुआ। इससे अंग्रेजी पढ़े-लिखे वर्ग में भी संवैधानिक तरीके से आस्था हटी। पेटीशनें भेजी गईं। स्थान-स्थान पर जन सभायें हुईं। प्रदर्शन किये गये, इससे सर्वत्र उत्तेजना तथा गुस्सा बढ़ा। 'द ट्रिब्यून' ने इसे 'किसी सभ्य सरकार के विरूद्ध' बतलाया।[30] झंग स्याल ने इसे 'दमन, बर्बरता तथा कायरता' का कार्य बताया।[31] 'पंजाबी' ने लाजपतराय की तुलना फ्रांस के केप्टन ड्रेफस के समान बतलाई जो बदले की भावना का शिकार हुआ।[32] अम्बाला के 'ज्ञान रत्न' ने लिखा कि 'भारत माता रोती है और दु:खी होकर कहती है कि आज मैंने इज्जत तथा सम्मान खो दिया।'[33] बंगाल के पत्रों ने भी तीव्र प्रतिक्रिया की। 'संध्या' ने कहा "लाला जी, आज भारत माता के यज्ञ में पहली आहुति है।"[34] 'युगान्तर' ने कहा "जो देश पर मरना चाहते हैं उन्हें आहवान किया।"[35]

अत: ब्रिटिश सरकार इस 'नई हवा'[36] से दु:खी हो गई। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में मि० कीर हार्डी ने एक प्रस्ताव रखकर एक शाही कमीशन की नियुक्ति की मांग की[37] जो असन्तोष पर विचार करे। लाला लाजपतराय की कैद पर सर हेनरी काटन, मि० ओ' ग्रेडे, मि० मेकरर्नस, मि० रीडमोंड तथा मि० ओ'डोननेले ने प्रश्न किये।[38] विरोध इतना जबर्दस्त हुआ कि भारत के वायसराय लार्ड मिन्टो को लाजपत राय की गिरफ्तारी पर पुन: विचार करने को मजबूर किया। उसने माना कि "सरकार का कार्य जल्दबाजी में अतार्किक, अनुचित तथा मामूली तथ्यों पर आधारित था।"[39] अत: लार्ड मिन्टो तथा भारत मन्त्री की सलाह से दोनों को 18 नवम्बर 1907 को छोड़ दिया गया।

विपिन चन्द्र पाल दूसरे प्रसिद्ध राष्ट्रवादी नेता थे जो ब्रिटिश प्रकोप का शिकार बने। सितम्बर 1907 में सरकार ने उन पर मुकद्दमा चलाया। विषय था कि उन्होंने 'वन्देमातरम' पत्र पर चलने वाले मुकद्दमें में गवाही देने से मना कर दिया था। विपिनचन्द्र पाल ने इस प्रसंग पर कहा था, "मैं एक ऐसे अभियोग में भाग लेना अपराध समझता हूं जो अन्यायपूर्ण हो, तथा जो देशवासियों की स्वाधीनता और सार्वजनिक शांति का द्योतक है।"[40] अत: उन्हें भी कोई ठोस सबूत बिना अकारण जेल भेज दिया। उनके जेल भेजने से बंगाल में चारों ओर अशांति फैली।

राष्ट्रवादी कांग्रेस के प्रमुख नायक थे लोकमान्य तिलक। सरकार ने उन पर मुकद्दमे का आधार 'केसरी' में प्रकाशित दो लेखों को बनाया। उन्हें 24 जून 1908 को गिरफ्तार कर मांडले जेल भेज दिया गया। उन्हें 6 वर्ष की जेल और एक हजार रूपये के जुर्माने की सजा दी। उनकी गिरफ्तारी से जन आक्रोश हुआ। यह उल्लेखनीय है कि उनकी गिरफ्तारी के विरोध में बम्बई के मजदूरों ने हड़ताल की। इसीलिए लेनिन ने तिलक को पहला ट्रेड यूनियन नेता कहा। लम्बी अवधि के बाद 1914 ई० में उन्हें छोड़ा गया था। ब्रिटिश अंग्रेजों ने उसे 'भारतीय असन्तोष का जनक'[41] तथा 'सबसे बड़ा देशद्रोही' कहा।

राष्ट्रवादी कांग्रेस के महर्षि अरविन्द घोष महत्त्वपूर्ण नायक थे। उन्होंने भारत लौटते ही कांग्रेस में रूचि ली थी। विशेषकर 1902 ई० में उनकी लोकमान्य तिलक से लम्बी वार्ता हुई थी। उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा के विकास तथा 'वन्देमातरम' पत्र के सम्पादक के रूप में राष्ट्रवादी गतिविधियों में योगदान दिया था। 1906 ई० में वन्देमातरम एक दैनिक पत्र के रूप में शुरू हुआ था। उन्होंने इस पत्र के एक अंक में कहा था[42], "हिंसा का हिंसा से सामना करना, अन्याय की पोल खोलना और उसका विरोध करना, अत्याचार के आगे सिर झुकाने से इंतजार करना, छल-कपट और विश्वासघात के गड्ढों को दूर करना, बहिष्कार और स्वदेशी को प्रोत्साहन देना, वन्देमातरम की नीति के मुख्य फलक हैं। 'वन्देमातरम' में प्रकाशित लेखों में 11 अप्रैल से 23 अप्रैल 1907 के अंकों में 'निष्क्रिय प्रतिरोध के सिद्धांत' शीर्षक के अन्तर्गत उनके सात लेख बड़े प्रसिद्ध हुए थे।[43] इसमें देश के नवयुवकों को अर्जी, प्रार्थना तथा याचिका देने की प्रक्रिया को 'विषैला धोखा' कहा था। इसके विपरीत आत्मविश्वास और आत्मरक्षात्मक प्रतिरोध करने का आहवान किया था। अत: ब्रिटिश शासन को उनके ये लेख सहन न हुए। उन पर भी राजद्रोह का मुकद्दमा चलाया गया तथा गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन प्रमाण न मिलने पर कुछ समय बाद सरकार को छोड़ना पड़ा। राष्ट्रीय नेताओं को गिरफ्तार ही नहीं किया, बल्कि अनेक दमनकारी कानून पास किये। नवम्बर 1907 में सेडीशन मीटिंग्स ऐक्ट व 1910 ई० में प्रेस ऐक्ट पास किये गये।

इस सम्बन्ध में यह विचार करना महत्त्वपूर्ण है कि इन गिरफ्तारियों के सन्दर्भ में उदारवादियों की क्या भूमिका रही ? 1907 ई० में गिरफ्तार हुए लाला लाजपतराय, महर्षि अरविन्द तथा विपिनचन्द्र पाल को छुड़ाने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किये गए। परन्तु गोपाल कृष्ण गोखले ने एक व्यक्तिगत पत्र लिखकर सरदार अजीतसिंह को छोड़कर, लाजपतराय को एक अच्छा व्यक्ति अवश्य बताया था। उन्होंने वायसराय के व्यक्तिगत सचिव डनलप स्मिथ को लिखा था,

"अजीतसिंह को लाजपतराय के साथ जोड़ना, एक अद्‌भुत अन्याय है। जब मैं पीछे फरवरी में लाहौर था, अजीतसिंह ने लाजपतराय को एक 'कायर' कहकर बदनाम करना शुरू कर दिया और उसे एक सरकार का सहयोगी आदमी बतलाया, क्योंकि लाजपतराय ने अजीतसिंह के प्रचार में कुछ नहीं किया।"[44] 1907 ई० के अधिवेशन में इनके बारे में सहानुभूति में एक भी शब्द नहीं बोला गया। जब लोकमान्य तिलक ने बोलना चाहा तो उन्हें स्वीकृति न दी गई। 1908 ई० की कांग्रेस में, 1897 में तिलक की पहले हुई गिरफ्तारी की भांति इस बार भी कोई सहानुभूति प्रस्ताव पारित न हुआ।[45]

राष्ट्रवादी कांग्रेस के कार्यक्रम तथा कार्य विधि

राष्ट्रवादी नेताओं के गिरफ्तार होने से उनका न विकास हो सका, न ही उसके क्रमबद्ध अधिवेशन ही। परन्तु उनके राष्ट्रीय चिन्तन तथा उद्देश्यों तथा कार्यविधि पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

लोकमान्य तिलक पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 'स्वराज्य' शब्द का उपयोग किया। इसी शब्द का उपयोग 1906 ई० में कलकत्ता अधिवेशन में दादा भाई नौरोजी ने प्रयोग में लाया। लोकमान्य तिलक ने कांग्रेस का लक्ष्य घोषित करते हुए कहा था "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है"[46] और स्वराज्य के बिना हमारा जीवन और धर्म व्यर्थ है।[47] लाला लाजपतराय ने "सरकारी भवनों की ओर देखने की बजाए भारतीय झोपड़ियों की ओर देखने" की प्रेरणा दी थी। उन्होंने घोषणा की थी कि, "भीख मांगने से कभी आजादी नहीं मिलती।"[48] उन्होंने ब्रिटिश सरकार की आलोचना करते हुए कहा था "खिचड़ी पक रही है, हम न खायेंगे, न खाने देंगे। हम न बैठेंगे, न बैठने देंगे। न सोयेंगे, न सोने देंगे, मंजिल पर पहुंचे बिना चैन न लेंगे।"[49] उन्होंने ब्रिटिश सरकार की पड़ी लाठियों से जर्जरित शरीर होने पर कहा था, "उन पर की गई एक-एक चोट ब्रिटिश शासन में एक-एक कील सिद्ध होगी।"[50]

इसी भांति विपिन चन्द्र पाल ने मांग की थी, "देश में न्याय सुधार (Reform) नही, अपितु पुनर्गठन (Re-form) की आवश्यकता है। उन्होंने ब्रिटिश सरकार की नीति निर्धारण, कर लगाने, भारतीय धन व्यय करने के अधिकार को चुनौती दी थी।[51] महर्षि अरविन्द घोष ने कहा था, "राजनीति स्वतन्त्रता के बिना सामाजिक तथा शैक्षणिक सुधार, औद्योगिक प्रसार, एक जाति की नैतिक उन्नति इत्यादि की बात सोचना मूर्खता की चरम सीमा है।"[52]

यह उल्लेखनीय है कि राष्ट्रवादियों ने पहली बार कांग्रेस का उद्देश्य 'स्वराज्य' दिया।

लम्बे कारावास से मुक्त होने के पश्चात लोकमान्य तिलक ने पुन: राष्ट्रवादी कांग्रेस में जीवन लाने की कोशिश की। यह वह काल था जब उदारवादी प्रथम महायुद्ध होने के कारण सरकारी चापलूसी अथवा ब्रिटिश सरकार की तन-मन-धन से सेवा करने में लगे थे। लोकमान्य तिलक व श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने मिलकर प्रथम महायुद्ध के दौरान भी होम रूल आन्दोलन के रूप में सम्पूर्ण देश में कांग्रेस का आधार तैयार किया था। तिलक 1914 ई० में जेल से छूटते ही पुन: राष्ट्रीय कार्य में लग गये। ऐनी बेसेन्ट जो 1914 ई० में मद्रास अधिवेशन में आईं थीं, अपने भाषण में कहा, "भारत, साम्राज्यवाद के शिशु गृह की भांति नहीं रहना चाहता है और न वह आंसुओं के मूल्य के बदले में स्वतन्त्रता की विनती करता है, वह एक राष्ट्रीय हैसियत से साम्राज्य से न्याय मांगता है और स्वतन्त्रता को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता है। इस बारे में किसी को भ्रमजाल में नहीं रहना चाहिए।"[53] आयरलैण्ड में होम रूल लीग की भांति उन्होंने सुझाव दिया कि भारत भी इसी प्रकार से आन्दोलन करे।

संयोग से फरवरी 1915 में गोपाल कृष्ण गोखले और नौ महीने के पश्चात सर फिरोजशाह मेहता, जो उदारवादी कांग्रेस के दिग्गजों में से थे उनकी मृत्यु हो गई। साथ ही ऐनी बेसेन्ट के होम रूल तथा लोकमान्य तिलक के स्वराज्य के जन्मसिद्ध अधिकार की भावना ने राष्ट्रवादियों को पुन: शक्ति दी। इसी का परिणाम होम रूल आन्दोलन था। होम रूल आन्दोलन का भी उद्देश्य साम्राज्य के दूसरे उपनिवेशों की भांति स्वशासन की स्थापना करना था। होम रूल लीग की स्थापना सितम्बर 1916 में मद्रास में की गई थी। होम रूल लीग की अध्यक्ष ऐनी बेसेन्ट थीं तथा इसके अन्य प्रमुख नेता अंरुडेल, सी.पी. रामस्वामी अय्यर तथा वाडिया थे। ऐनी बेसेन्ट ने इसके लिए भारत के विभिन्न स्थानों का दौरा भी किया। अक्टूबर 1916 ई० तक सम्पूर्ण देश में उसकी लगभग 500 शाखायें स्थापित हो गई थीं।

अप्रैल 1916 में लोकमान्य तिलक ने भी बेलगांव में होम रूल लीग की स्थापना की। तिलक के ही सहयोग से ऐनी बेसेन्ट इस आन्दोलन को संचालित करने के लिए तैयार हुई थी। जनवरी से जून 1917 तक उन्होंने सम्पूर्ण देश का दौरा किया था। ब्रिटिश सरकार तिलक व ऐनी बेसेन्ट के बढ़ते प्रभाव से चिंतित हुई। ऐनी बेसेन्ट के दो पत्रों 'कामन विल' तथा 'न्यू इण्डिया' पर प्रतिबन्ध लगा दिया। ऐनी बेसेन्ट, अंरुडेल व वाडिया को गिरफ्तार कर लिया। तिलक पर भी दिल्ली और पंजाब में जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। स्थान-स्थान पर विरोध सभायें, प्रदर्शनों के कारण ऐनी बेसेन्ट को छोड़ दिया गया। 20 अक्टूबर 1917 को भारत मन्त्री मांन्टेग्यू की प्रसिद्ध घोषणा, जिसमें धीरे-धीरे भारत में उत्तरदायी सरकार की बात कही गई, यह आन्दोलन प्राय:

समाप्त हो गया।

राष्ट्रवादी कांग्रेस की सफलतायें

राष्ट्रवादी कांग्रेस की 1906-1918 ई० के दौरान सफलताओं के बारे में निष्कर्ष स्वरूप कुछ बातें कही जा सकती हैं, प्रथम, राष्ट्रवादियों ने कांग्रेस के उद्देश्य को स्पष्ट रूप से पहली बार रखा तथा इसे स्वराज्य का नाम दिया, यद्यपि इसका कदापि अर्थ पूर्ण स्वतन्त्रता न था। दूसरे, राष्ट्रवादियों ने उदारवादी कांग्रेस की तुलना में अपना मार्ग बिल्कुल भिन्न चुना। तीसरा, कांग्रेस का देशव्यापी आधार होम रूल आन्दोलन के द्वारा बना। 1916-1917 ई० में देश के विभिन्न आंचलों तथा जिलों में कांग्रेस की स्थापना हुई। बाद में इसी आधार पर कांग्रेस को देशव्यापी स्वरूप मिला। चौथे, प्रथम महायुद्ध में जब सम्पूर्ण देश राजभक्ति में लगा था, राष्ट्रवादियों का होम रूल आन्दोलन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा गौरवशाली कृति थी। पांचवे, उदारवादी कांग्रेस जिसने भारत में सांस्कृतिक एजेण्डा का पूर्णत: त्याग दिया अथवा अपनाया ही नहीं था, राष्ट्रवादी कांग्रेस ने स्वराज्य, स्वभाषा, स्वदेशी तथा स्वधर्म का उद्घोष किया। इस काल में हिन्दी भाषा, गऊ रक्षा, गीता, रामराज्य, वन्देमातरम्, रक्षाबन्धन, शिवाजी उत्सव, गणेश उत्सव, दुर्गा पूजा, भारत माता की जय आदि शब्दों तथा जयघोषों का राष्ट्रीयता तथा स्वतन्त्रता के स्वरों में कहा गया। नीरद चौधरी का यह कथन सही है कि लोकमान्य तिलक की मृत्यु के पश्चात कांग्रेस से सांस्कृतिक एजेन्डा बिल्कुल समाप्त हो गया।

उदारवादी कांग्रेस के पुन: क्रिया-कलाप (1908-1918 ई०)

1907 ई० की कांग्रेस की फूट के पश्चात, जहां राष्ट्रवादी नेताओं की गिरफ्तारी से उनका संघर्ष ढ़ीला हो गया, वहीं उदारवादी कांग्रेस का जोश-खरोश भी कम हुआ। 1889 ई० के कांग्रेस अधिनियम के पश्चात 1914 ई० तक कांग्रेसी प्रतिनिधियों की संख्या कभी इतनी नहीं रही। यह बहुत कम रही।[54] यदि इस काल खण्ड (1908-1914 ई०) में हुए अधिवेशनों[55] पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि अब राष्ट्रवादियों का कोई प्रतिरोध न हुआ। पहली बार कांग्रेस का संविधान बनाया गया। कांग्रेस अधिवेशन में आने वाले सुधारों का स्वागत किया। स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा के प्रस्ताव खत्म कर दिये। बायकाट प्रस्ताव का जिक्र ही नहीं किया। 1909 ई० में लाहौर में पण्डित मदनमोहन मालवीय के नेतृत्त्व में अधिवेशन हुआ। सुधार बिल का स्वागत किया परन्तु मजहब के आधार पर पृथक चुनाव प्रतिनिधित्व का विरोध किया। 1910 ई० के अधिवेशन में वेडरबर्न ने अपने अध्यक्षीय भाषण में तीन शब्दों 'आशा, सान्त्वना तथा मिलजुलकर

प्रयत्न' पर बल दिया। गोपाल कृष्ण गोखले ने वेडरबर्न को 'एक महान ऋषि' बतलाया। साम्प्रदायिक एकता पर बल दिया। इसी भांति 1911 ई० के अधिवेशन में पुन: हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात दोहराई गई। 1911 ई० में बंग भंग की समाप्ती के अधिवेशन में हर्ष का वातावरण रहा परन्तु सीडीशन मिटिंग्स ऐक्ट, प्रेस ऐक्ट व क्रिमनल लॉ एमेन्डमेन्ट ऐक्ट को भी नहीं भुलाया जा सका। 1911 ई० में मि० गांधी व ट्रांसवाल की भारतीय समुदाय के लिये संघर्ष के लिए बधाई दी गई पर लोकमान्य तिलक जो माण्डले में कैद थे तथा डायबिटीज के मरीज थे, स्मरण भी नहीं किया गया। 1912 ई० का बांकीपुर सम्मेलन तो हयूम के प्रति श्रद्धांजलि देने में भी व्यस्त रहा। एक अजीब प्रस्ताव पारित किया गया कि एक व्यक्ति जो अंग्रेजी नहीं जानता सदस्यता के योग्य न माना जाए। 1914 ई० में महायुद्ध की घोषणा होने से ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादारी तथा सब प्रकार की सहायता करने की बात कही गई।

महायुद्ध होने से जहां प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ती गई, वफादारी की सीमायें भी बढ़ती गईं तथा कांग्रेस ने पूरी ताकत से ब्रिटिश साम्राज्य की सफलता की कामना की। इसी के मध्य गांधी जी 1915 ई० में भारत आ गये। इस वफादारी के प्रदर्शन में वे भी किसी से पीछे न रहे। परन्तु अगस्त 1920 में तिलक के मरते ही भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में एक नवयुग प्रारम्भ हुआ जिसका नेतृत्व गांधी जी ने सम्भाला।

अध्याय-तीन

सन्दर्भ सूची

1. मोहनदास कर्मचन्द गांधी, हिन्द स्वराज्य
2. द पंजाबी, 10.7.1905
3. आर.सी. मजूमदार (सम्पादित), द ब्रिटिश पेरामाउन्टसी एण्ड इण्डियन रेनीसां, द हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ द इण्डियन पिपुल, भाग दस (बम्बई, 1965), पृ. 488
4. आर.पी. दुआ, द इम्पेक्ट आफ द रसियन जेपीनीज वार आन इण्डियन पालिटिक्स (1904-05) (दिल्ली, 1966), पृ0 31-32
5. सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी, पूर्वोक्त, पृ. 189
6. होम पालिटिकल (पब्लिक-ए) गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया, प्रोसेडिंग्स, मार्च 1906, नं. 5-6
7. पट्टामि सीता रमैया, हिस्ट्री आफ द कांग्रेस, भाग एक (1885-1935) (दिल्ली, 1969 संस्करण), पृ. 1
8. होम पालिटिकल (पब्लिक ऐ) गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया, प्रोसेडिंग्स, मार्च 1906, पृ. 5-8
9. द ट्रिब्यून, 18.4.1905
10. एस.सी. मित्तल, फ्रीडम मूवमेन्ट इन पंजाब (दिल्ली, 1977), पृ. 29
11. रामगोपाल, लोकमान्य तिलक (बम्बई, 1956), पृ. 112
12. देखें, तिलक, केसरी में लेख, भाग दो, पृ. 485
13. दामोदर हरि चापेकर, आटोबायोग्रेफी : मजूमदार एण्ड मजूमदार, पृ. 50
14. स्वामी विवेकानन्द, कम्पलीट वर्क्स आफ स्वामी विवेकानन्द, भाग सात, पृ. 147-148
15. विस्तार के लिए, एस.सी. मित्तल, 'लाला लाजपत रायेंस डिपोरटेशन एण्ड द ग्रोथ आफ पब्लिक ओपिनियन', कुरूक्षेत्र यूनिवर्सिटी रिसर्च जनरल, भाग आठ, नं. 1-2, 1974
16. गिलबर्ट मार्टिन, सरवेन्ट्स आफ इण्डिया, पृ. 84; होम डिपार्टमेन्ट (पालिटिकल-ए) गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया, प्रोसीडिंग्स नवम्बर 1907, नं. 4-7
17. मैरी मिण्टो (काउन्टैस आफ) : इण्डिया मिण्टो एण्ड मार्ले (लन्दन, 1908), पृ. 134
18. द पंजाबी, 3.7.1907
19. देखें, लार्ड हार्डिंग पेपर्स
20. मजूमदार एण्ड मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 50-51

21. मजूमदार एण्ड मजूमदार, वही, पृ. 63
22. रिपोर्ट आई.एन.सी., बनारस, 1905; आर.पी. अय्यर व एल.एस. भण्डारी, पूर्वोक्त, पृ. 52
23. प्रधान और भागवत, लोकमान्य तिलक, पृ. 172
24. वी.सी. जोशी (सम्पादित) आटोबायोग्रेफिकल राइटिंग्स, पृ. 114
25. मजूमदार व मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 68-69
26. विस्तार के लिए देखें, आर.पी. अय्यर व एल.एस. भण्डारी, पूर्वोक्त, पृ. 57
27. एस.गोपाल, ब्रिटिश पालिसी इन इण्डिया (1858-1905)
28. एस.सी. मित्तल, स्वदेशी मूवमेन्ट इन पंजाब एण्ड हरियाणा, कुरूक्षेत्र यूनिवर्सिटी रिसर्च जनरल, भाग 16-17 (1982-83)
29. वी.सी. जोशी (सम्पादित), लाजपत राय, राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, भाग एक, पृ. 128
30. द ट्रिब्यून, 29.5.1907
31. झंग स्याल, 20.5.1907
32. पंजाबी, 15.5.1907 व 22.5.1907
33. ज्ञान रत्न, 28.6.1907
34. सन्ध्या, 10.5.1907
35. युगान्तर, 12.5.1907
36. एस.सी. मित्तल, "नई हवा: पंजाब इन द बिगनिंग आफ टवन्टीथ सेन्चुरी (1906-1919)", कुरूक्षेत्र यूनिवर्सिटी रिसर्च जनरल, भाग XX-XXI,1987; हीरेन मुकर्जी, इण्डियन स्ट्रगल फार फ्रीडम, पृ. 119
37. पंजाबी, 3.8.1907
38. पंजाबी, 3.8.1907
39. मेरी मिण्टो (काउन्टेस आफ) पूर्वोक्त, पृ. 126
40. इन्द्र विद्यावाचस्पति, भारत की स्वाधीनता संग्राम का इतिहास, पृ. 110
41. वेलेनटाइन शिरोल, द इण्डियन अनरेस्ट (लन्दन, 1910); एस.सी. मित्तल, इण्डिया डिस्टोरेटेड: ए स्टेडी आफ ब्रिटिश हिस्टोरियन्स आन इण्डिया, भाग तीन (नई दिल्ली, 1998), पृ. 376, 446, 449
42. एम.पी. पण्डित, श्री अरविंद (नई दिल्ली, 1985), पृ. 94
43. वही, पृ. 96, 98

44. होम डिपार्टमेन्ट (पालिटिकल डिपोजिट) गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया, प्रोसेडिंग्स, अगस्त 1907, नं. 3; गिलबर्ट मार्टिन, सरवेन्ट्स आफ इण्डिया (गोखले का पत्र डनलप स्मिथ को, 10 जून 1907), पृ. 88
45. देखें, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन, 1907 व 1908 की रिपोर्ट्स
46. इन्द्रा विद्यावाचस्पति, लोकमान्य तिलक और उनका युग (नई दिल्ली, 1963), पृ. 139
47. वही, पृ. 139
48. एस.सी. मित्तल, देशरत्न लाला लाजपत राय (सहारनपुर, 1962), पृ. 21
49. वही, (देखें 1920, लाहौर का एक भाषण)
50. वही, पृ. 74
51. वी.एल. ग्रोवर व यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास (नई दिल्ली, 2001), पृ. 306
52. वही,
53. दीनानाथ वर्मा, आधुनिक भारत (पटना, 1974), पृ. 426
54. देखें, परिशिष्ट
55. देखें, 1908–1914 तक के कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशनों की कार्यवाहियां

अध्याय–चार
समझौतावादी कांग्रेस

उदारवादियों, राष्ट्रवादियों के अतिरिक्त कांग्रेस में तीसरी श्रेणी समझौतावादियों की रही। इनका कार्यकाल सबसे लम्बा था। यद्यपि इनका उद्देश्य भी राष्ट्रवादियों की भांति भारत में स्वराज्य (डोमिनियन स्टेट्स) की स्थापना करना था। इनको भी सफलता सीमित मात्रा में मिली थी, परन्तु इनका मार्ग भिन्न था। इनका क्रम सरकार से बातचीत, विरोध, असफलता, ठहराव तथा कुछ काल बाद फिर यह क्रम होता था। इन्हें समझौतावादी, आन्दोलनवादी या गांधीवादी कह सकते हैं। गांधीवादी मुख्यत: इसलिए क्योंकि इस लम्बे संघर्ष का नेतृत्व गांधी जी ने किया।

1916 ई० में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में उदारवादी तथा राष्ट्रवादी पुन: एक मंच पर एकत्रित हुए, इसे भारतीय राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण मोड़ कहा जा सकता है। भारत की राजनीति में गांधी जी का आगमन भी भारत की राजनीति में एक अद्‌भुत अवसर था। परन्तु गांधी जी ने अपने राजनीतिक गुरू गोपाल कृष्ण गोखले के कहने से पहले दो तीन वर्ष तक भारत के विभिन्न स्थानों की यात्रा की। भारत के राजनीतिक वातावरण तथा नेताओं की मानसिकता तथा कांग्रेस की स्थिति को समझने की कोशिश की। प्रारम्भ में उन्होंने 1917 ई० में बिहार में चम्पारन, 1918 ई० में खेड़ा में किसानों, 1918 ई० में अहमदाबाद के मिल मजदूरों की समस्याओं को निकट से देखा।

1919 ई० में पंजाब की जलियांवाला बाग की महान दुर्घटना तथा पंजाब में मार्शल लॉ, टर्की के खिलाफ की दुरावस्था तथा सरकार द्वारा प्रस्तुत रौलेट बिलों ने उन्हें देश की राजनीति के केन्द्र बिन्दु पर लाकर खड़ा कर दिया। गांधी जी को विश्वास था कि प्रथम महायुद्ध में अंग्रेजों की सफलता के पश्चात भारतीय स्वराज्य की दिशा में महत्त्वपूर्ण पग उठाया जायेगा।[1] सोचा था कि ब्रिटिश शासन के पिटारे से सफलता की देवी प्रकट होगी, परन्तु आशा के विपरीत निकला फुंकारता हुआ फन फैलाये काला सर्प। महायुद्ध की समाप्ती के साथ, 1915 ई० का भारत का सुरक्षा नियम भी समाप्त हो रहा था। भारत के वायसराय लार्ड चैम्सफोर्ड को इसका पहले से अनुमान था तथा उसने इसकी तैयारी पहले से ही कर ली थी। सरकार को भय था कि भारत में किसी प्रकार की क्रांतिकारी या अराजकतावादी घटनाओं का विस्फोट न हो जाये।[2] अत:

न्यायाधीश सिडनी रौलेट के नेतृत्व में एक कमेटी स्थापित की। इसी रिपोर्ट के आधार पर ब्रिटिश सरकार के बचाव के लिये इम्पीरियल कौंसिल में एक बिल रखा गया, जिसका चहुं ओर तीव्र विरोध हुआ। इसमें किसी भी अपील, वकील या दलील की अनुमति न थी।

अत: 1919 के प्रारम्भ में ही गांधी जी के नेतृत्व में रौलेट बिलों के विरोध में आन्दोलन, जलियांवाला बाग के क्रूर हत्याकाण्ड की जांच के लिए एक कांग्रेस की उप जांच समिति तथा खिलाफत आन्दोलन की तैयारी प्रारम्भ हुई।

रौलट बिलों के विरोध में आन्दोलन

भारत में सर्वत्र रौलट बिलों का विरोध हुआ। यहां तक कि लंदन में भी इसके विरोध में कुछ सभायें हुईं। इस बिल का भारत की इम्पीरियल कौंसिल के सभी चुने हुए एवं सरकारी नामजद भारतीय सदस्यों द्वारा तीव्र विरोध हुआ।[3] सर्वत्र विरोध होने पर भी 18 मार्च 1919 को रौलट बिल 20 के मुकाबले 35 मतों से स्वीकृत हो गया।[4] जी०एस० खापर्डे ने अपनी डायरी में लिखा कि कौंसिल के इतिहास में यह पहला अवसर था जिसमें सभी भारतीय सदस्यों ने एकमत से वोट किया।[5] इससे गांधी जी को बड़ा धक्का लगा।[6] उन्होंने बीमारी की अवस्था में भी लार्ड चैम्सफोर्ड को पत्र लिखकर इसे अस्वीकृत करने का आग्रह किया, पर सफलता न मिली। उन्हें लगा कि अब सत्याग्रह के अलावा कोई अन्य मार्ग नहीं छोड़ा गया है।[7] अत: बम्बई में उनकी अध्यक्षता में एक सत्याग्रह सभा बनाई गई। सत्याग्रह की शपथ ली गई। रौलट बिलों के विरोध में गांधी जी ने देश में पूर्ण हड़ताल का आहवान किया। इन काले बिलों का सर्वत्र विरोध हुआ।[8] कांग्रेस जांच उप समिति ने इसे समाज पर अत्याचार बतलाया।[9] इससे ब्रिटिश न्याय के प्रति विश्वास बुरी तरह हिल गया। देश के सभी प्रमुख समाचार पत्रों ने सरकार की कटु आलोचना की। अमृत बाजार पत्रिका ने इन बिलों की तुलना मार्शल लॉ की घोषणा तथा नादिरशाह के आदेशों से की।[10]

गांधी जी ने पहले 30 मार्च 1919 के दिन देश भर में हड़ताल का सन्देश दिया। बाद में, बदलकर इसे 6 अप्रैल कर दिया गया। सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय भावना का देशव्यापी प्रभाव हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द ने 30 मार्च को ही, दिल्ली के चांदनी चौक की जामा मस्जिद में खड़े होकर रौलट बिलों का विरोध किया। वस्तुत: मुसलमान खिलाफत के प्रश्न पर हिन्दू सहयोग चाहते थे।[11] स्वामी श्रद्धानन्द ने चांदनी चौक, टाउन हाल के निकट एक जुलूस के रूप में ब्रिटिश शक्ति का विरोध किया। जब ब्रिटिश अधिकारियों ने गोली चलाने की धमकी दी तो उन्होंने अपना

सीना तानकर कहा, "मारो गोली, खड़ा हूं।" सरकारी अधिकारियों का जोश ठण्डा हो गया। पंजाब में अमृतसर तथा लाहौर में सर्वोच्च विरोध हुआ। परिणामस्वरूप 9 अप्रैल को दिल्ली के निकट पलवल स्टेशन पर गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया। अमृतसर के दो प्रसिद्ध डाक्टरों सत्यपाल व सेफुद्दीन किचलू को भी गिरफ्तार कर लिया गया। स्थान-स्थान पर देश में उत्तेजनापूर्ण वातावरण हो गया। पंजाब सरकार द्वारा रौलट ऐक्ट के स्पष्टीकरण के लिए 10,000 पत्रक भी बांटे गये पर कोई परिणाम न निकला।

मुख्यत: असन्तोष का मुख्य कारण दोनों डाक्टरों की गिरफ्तारी बताया गया।[13] मेजर फेरर ने पंजाब में बेचैनी का 9/10 कारण दिल्ली को बतलाया।[14] स्थिति को भयंकर तथा अनियंत्रित देखते हुए जालन्धर के 45वीं ब्रिगेड के ब्रिगेडियर जनरल आर.ई.एच. डायर को तार भेजकर सेना, तोपें तथा एक हवाई जहाज लेकर तुरन्त अमृतसर आने को कहा[15] जो 11 अप्रैल की रात्रि में वहां पहुंच गया।

जलियांवाला बाग का हत्याकाण्ड तथा मार्शल लॉ

1857 ई० के महासमर के पश्चात भारतीय इतिहास में पहला क्रूर तथा वीभत्स नरसंहार 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर के जलियांवाला बाग में हुआ। रौलट ऐक्ट विरोध की प्रतिक्रिया स्वरूप, ब्रिटिश सरकार ने उसका बदला 11 अप्रैल को जनरल डायर को बुलाकर तथा बैशाखी के पर्व पर जलियांवाला बाग में सीधे-सीधे पंजाब के कृषकों एवं सामान्य जनता पर 1650 गोलियों की बौछार करके किया। ये गोलियां सूर्य छिपने से पूर्व 6 मिनट तक निरंतर चलती रहीं[16] तथा तब तक चलीं जब तक ये गोलियां सेना के पास थीं। सभी नियमों का उल्लंघन कर प्रारम्भ से ही गोली उस ओर चलाई गई जिस ओर भीड़ सर्वाधिक थी। हत्याकाण्ड योजनापूर्वक था। जनरल डायर के अनुसार उसे गोली चलाते समय ऐसा लग रहा था मानों फ्रांस के विरूद्ध किसी युद्ध के मोर्चे पर खड़ा हो। गोलियों के चलाने के पूर्व एक हवाई जहाज उस स्थान का चक्कर लगाकर वहां की परिस्थिति का आंकलन कर रहा था।

डायर के अन्दाजे के अनुसार सभा में आये लोगों की संख्या 15-20 हजार के लगभग थी। पं० मदनमोहन मालवीय ने इसे 16-20 तक माना है।[17] कांग्रेस इन्क्वायरी कमेटी ने यह संख्या 20 हजार मानी है।[18] इस सभा में ब्रिटिश सेना के पहुंचने से पहले सात व्यक्ति बोल चुके थे।[19] बृजगोपाल नामक एक बैंक कर्मचारी अपनी एक उर्दू में नज़्म 'फरियाद' को खत्म कर चुका था। इससे पूर्व दो प्रस्तावों, जिसमें रौलट ऐक्ट को वापिस लेने तथा 10 अप्रैल को अमृतसर

में फायरिंग की कटु आलोचना की गई थी। उस समय 'वक्त' अखबार का सम्पादक दुर्गादास बोलने को खड़ा हुआ था[20] कि इतने में शोर मचा "आ गये, आ गये।"

जनरल डायर ने निहत्थे श्रोताओं पर गोली चलाने का आदेश दिया। सैनिक तब तक गोली चलाते रहे जब तक गोलियां खत्म न हो गईं। यद्यपि यह ज्ञात होना बड़ा कठिन है कि इस हत्याकाण्ड में कितने लोग शहीद हुए। जनरल डायर के अनुसार केवल दो-तीन सौ लोग मारे गये। उसका यह अन्दाजा फ्रांस में हुए युद्ध में मरे सैनिकों से था। उसके अनुसार 6 गोलियों से औसतन एक व्यक्ति मारा गया था।[21] पंजाब के मुख्य सचिव के अनुसार कुल 291 व्यक्ति मारे गये थे।[22] सरकारी संशोधित आंकड़ों के अनुसार 379 व्यक्ति मारे गये तथा लगभग 1200 घायल हुए थे। गांधी जी को एक पत्र में स्वामी श्रद्धानन्द ने मारे जाने वालों की संख्या 1500 से कम न थी, बतलाया।[23] इम्पीरियल कौंसिल में मालवीय जी ने यह संख्या 1000 बतलाई।[24]

सरकार ने मारे जाने वालों या घायलों को उसी अवस्था में जलियांवाला बाग में छोड़ दिया था। जनरल डायर ने कहा कि इस बारे में सोचना उसका काम न था। साथ ही उसी रात्रि 8 बजे अमृतसर में कर्फ्यू लगा दिया था। परिणामस्वरूप रात्रि दस बजे तक एक भी व्यक्ति अमृतसर की सडकों पर दृष्टिगोचर न था।[25] इस नृशंस हत्याकाण्ड के साथ पंजाब के अधिकतर भागों में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया।[26] इसके लिये पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर माइकेल ओड़वायर ने अनुमति मांगी[27] थी जो तुरन्त दे दी गई। इसके अनुसार लाहौर-अमृतसर में 15 अप्रैल, गुजरांवाला में 16 अप्रैल, गुजरात (पंजाब) में 19 अप्रैल तथा लायलपुर में 24 अप्रैल को मार्शल लॉ लागू कर दिया गया। जो बाद में अमृतसर, गुजरांवाला, लायलपुर में 9 अगस्त, लाहौर में 11 अगस्त तथा शेष अन्य स्थानों से 25 अगस्त को हटा लिया गया था।[28]

पंजाब के लोगों के कष्ट जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड से ही समाप्त नहीं हुए, बल्कि लगभग चार मास तक मार्शल लॉ के अमानुषिक अत्याचारों तथा कठोर यातनाओं को भी उन्हें सहना पड़ा। यथार्थ स्थिति को जानने के लिए उदाहरण के रूप में कुछ प्रसंग देना आवश्यक होगा।

अमृतसर में बिजली, पानी की सप्लाई काट दी गई। वकीलों को विशेष कांस्टेबिलों के कार्यों पर सड़कों की सुरक्षा पर लगा दिया। अनेकों को निरपराध जेलों में ठूंसा गया। अनेक नागरिकों को सड़कों पर रेंगने के लिए मजबूर किया। सड़कों पर चलने की मनाही कर दी गई तथा लोगों को छतों से कूदना पड़ा। अंग्रेज को देखकर सलाम करना अनिवार्य कर दिया। सूरज की गर्मी में घण्टों खड़े रखना, उनकी दाढ़ी या मूंछें खींचना, बेंतें लगाना आदि अनेक कल्पनातीत

सजायें दी गईं।[29]

लाहौर में पढ़े-लिखे लोगों को, विशेषकर छात्रों को मार्शल लॉ का निशाना बनाया गया, उनकी साईकिलें छीनना, दिन में चार बार हाज़िरी देने को बाध्य करना, स्कूलों से निकालना आदि सजायें दी गईं। इसमें अध्यापकों को भी नहीं छोड़ा गया। बाहर से आने वाले समाचार पत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिये। पत्रों के सम्पादकों को गिरफ्तार कर एक-एक या दो-दो वर्ष की सजायें दी गईं। झूठे मुकद्दमे बनाये गये। अकेले लाहौर में चार कमीशनों के सम्मुख 114 झूठे मुकद्दमे बनाये गये, जिसमें 852 व्यक्तियों पर झूठे आरोप लगाये गये। इसमें 581 को दोषी घोषित किया गया। दोषियों में 108 को मौत की सजा तथा 265 को जीवन भर के लिये देश निकाला तथा अन्य सजायें दी गईं।[30] कसूर में लोगों को रेलवे वेगनों से सामान लादने या ढ़ोने पर लगाया गया। स्थन-स्थान पर मार्केट में, चौराहों पर मार्शल लॉ के यशोगान के लिए कवितायें कहने के लिए मजबूर किया। डण्डे से पिटते हुए व्यक्तियों को देखने के लिये वेश्याओं को बुलाया गया। लोगों को बन्द रखने के लिए लोहे के पिंजरे भी बनाये गये।

गुजरांवाला में सामान्य नगरीय बस्तियों पर आकाश से बम्ब फेंके गये। जबरदस्ती धन की वसूली की गई। रामनगर में तोबाघर या जेलघर बनाये गये। लोगों को परेड़ कर गन्दी-गन्दी गालियां देकर छोड़ा गया। संक्षेप में सम्पूर्ण पंजाब कुछ महीनों तक पूर्णत: आतंकित रहा तथा शेष भारत से उसका नाता तोड़ दिया गया।

जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड का देशव्यापी प्रभाव

उपरोक्त वीभत्स तथा अमानुषिक ब्रिटिश सरकार के व्यवहार से समूचा भारत अचंभित हो गया। सभ्यता तथा न्याय का ढ़ोल पीटने वाले कितने क्रूर तथा जानवरों जैसा व्यवहार कर सकते हैं, इसका प्रत्यक्ष अनुभव लोगों को हुआ। निश्चय ही जलियांवाला बाग की घटना भारतीयों व अंग्रेजों के सम्बन्ध में एक परिवर्तनकारी बिन्दु था।[31] गांधी जी द्वारा चलाये रौलट बिल विरोधी आन्दोलन का सर्वाधिक प्रभाव पंजाब में दिखलाई दिया। इसकी तुलना में संयुक्त प्रांत, मद्रास, कलकत्ता, यहां तक कि बम्बई शांत रहे। ब्रिटिश विद्वानों ने इस भयंकर काण्ड पर भी जनरल डायर को बचाने की कोशिश की। रूपर्ट फर्नीओक्स ने इसे डायर की गोलियां चलाते समय मानसिक असंतुलन बताया।[32] एक दूसरे विद्वान ने इसे आत्मरक्षा के लिए किया गया कार्य बतलाया।[33] परन्तु गम्भीरता से अध्ययन करने पर, यह स्पष्ट हो जाता है कि डायर का यह कुकृत्य बदले की भावना से ही था।[34] इस दिल दहला देने वाले हत्याकाण्ड की गूंज ब्रिटिश पार्लियामेन्ट

के गलियारों में भी गूंजी। ब्रिटेन के युद्ध सचिव विन्स्टन चर्चिल ने इसे "ब्रिटिश साम्राज्य के आधुनिक इतिहास में एक असमानान्तर घटना" बतलाया।[35] भारतमन्त्री मान्टेग्यू ने इसे 'एक निर्णायक भूल' कहा।[36] मि० एच०एच० ऐस्कुविथ ने 'अपने समकालीन इतिहास के भयंकर अत्याचारों में से एक बताया।[37] कर्नल जे०सी० वेजवुड ने जनरल डायर के इस कुकृत्य को ब्रिटिश इतिहास पर सबसे बड़ा कलंक, तब से जब जान आफ आर्क को जलाया था" बताया।[38] सी०एफ० एण्ड्रूज ने इस हत्याकाण्ड की तुलना ग्लोकों के हत्याकाण्ड से की।[39]

भारत में भी इसकी कटु आलोचना हुई। यह पहला अवसर था जब भारतीय जनमानस ने अपनी ब्रिटिश शासन के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त की, पंजाब लेजिस्लेटिव कौंसिल में इसका भयंकर प्रतिकार हुआ।[40] समूचे देश में जबर्दस्त विरोध हुआ। पं० जवाहरलाल नेहरू ने लिखा, 'अमृतसर' शब्द हत्याकाण्ड का पर्यायवाची बन गया।[41] पं० मोतीलाल नेहरू ने इसे "अत्याधिक शोकपूर्ण तथा सबकुछ प्रकट करने वाली"[42] घटना बताया। एम०ए० जिन्ना ने इस घटना को शारीरिक कसाईपन (Physical Butchery) कहा।[43] इस घटना ने गांधी जी का ब्रिटिश शासन के प्रति नैतिक विश्वास तथा पवित्रता को हिला दिया। उन्होंने इसे 'बर्बरता' का कार्य बतलाया।[44] गांधी जी जिन्होंने प्रथम महायुद्ध में अंग्रेजों को पूरा सहयोग दिया था, अब 'विद्रोही' बन गये।[45] उन्होंने केसर-हिन्द का पदक लौटा दिया। इसी भांति सरोजनी नायडू एवं हकीम अजमल खां ने भी अपने पदक लौटा दिये। महाकवि रवीन्द्रनाथ ने 'नाईटहुड' का खिताब वापिस कर दिया।

जलियांवाला बाग की घटना ने कांग्रेस के जन्म से चली आ रही उदारवादियों की राजभक्ति, आस्था, नैतिकता तथा अपनाये गये संवैधानिक मार्ग को भी हिला दिया। इस पर मोतीलाल नेहरू ने सभी उदारवादियों को कांग्रेसी अमृतसर अधिवेशन में भाग लेने की अपील की।

खिलाफत आन्दोलन

भारत के मुसलमानों में, न ही सर सैयद अहमद खां के अभिभाषणों और न ही 1906 ई० में मुस्लिम लीग ने इतनी चेतना जगाई, जितनी 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में टर्की के प्रश्न पर मुसलमानों में चेतना आई। टर्की का सुल्तान मुस्लिम जगत का प्रमुख (खलीफा) माना जाता था। खलीफा तथा सुल्तान के पद एक ही व्यक्ति को मिले हुए थे। प्रथम महायुद्ध की घोषणा से मित्र राष्ट्रों के विरूद्ध टर्की के होने से भारतीय मुसलमानों में तीव्र उत्तेजना हुई। मुसलमानों की यह बेचैनी शीघ्र ही खिलाफत आन्दोलन के रूप में प्रकट हुई।[46] मुसलमानों ने इसे अंग्रेजों का 'खुला

विश्वासघात' बताया।

खिलाफत आन्दोलन मित्र राष्ट्रों के विरूद्ध, मुख्यत: ब्रिटिश के खिलाफ, टर्की के समर्थन में एक विशुद्ध मुस्लिम आन्दोलन था। टर्की के टुकड़े हो जाने से मुसलमानों को अपनी पवित्र संस्था के भविष्य के बारे में चिंता होने लगी थी। यह भय था कि भविष्य में टर्की के सुल्तान को खलीफा के पद से हटा दिया जायेगा।

भारत में इसके प्रमुख नेता मौलाना अबुल कलाम आजाद, डा० एम०ए० अन्सारी, डा० सेफुद्दीन किचलू, लखनऊ के मौलाना अब्दुल बारी, हकीम अजमल खां, मोहम्मद अली तथा शौकत अली तथा डा० सैयद महमूद थे। 1912 ई० में मौलाना अबुल कलाम आजाद ने एक उर्दू पत्र 'अल हिलाल' प्रारम्भ किया था। इसकी 26000 प्रतियों का सरकुलेशन था।[47] टर्की के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण के विपरीत होने के कारण सरकार ने इसे बन्द कर दिया था। मोहम्मद अली व शौकत अली को गिरफ्तार कर लिया तथा युद्ध के दिनों में (1914-1918 ई०) उन्हें जेल में ही रखा गया तथा युद्ध समाप्ती के एक वर्ष बाद दिसम्बर 1919 ई० में जेल से मुक्त कर दिया गया। जेल से छुटते ही उन्होंने सक्रिय राजनीति में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था।[48]

बंगाल, उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत व पंजाब मुस्लिम बाहुल्य प्रांत थे। खिलाफत आन्दोलन की तीव्रता भी यहीं रही। 17 अक्टूबर को समूचे देश में मुसलमानों द्वारा खिलाफत दिवस मनाया गया। पंजाब में खिलाफत आन्दोलन के नेता डा० सेफुद्दीन किचलू (अमृतसर), जफर अली खां (लाहौर), लाल खां (गुजरांवाला), आगा मोहम्मद सफदर (स्यालकोट) तथा लाहौर के सैयद हबीब शाह थे। नवम्बर 1919 में पंजाब के नेताओं ने[49] एक खिलाफत कमेटी भी मौलवी दाउद गजनवी को महासचिव बनाकर स्थापित की थी।[50] 30 नवम्बर को लाहौर में फज़ले हुसैन की अध्यक्षता में एक विरोध सभा भी की गई थी।[51]

इसी दौरान 23 नवम्बर को हिन्दुओं-मुसलमानों की एक संयुक्त कांफ्रेंस गांधी जी के नेतृत्व में हुई। लखनऊ के मौलाना अब्दुल बारी ने एक फतवा भी प्रसारित किया। 19 जनवरी 1920 को अली बन्धु - मोहम्मद अली तथा शौकत अली भारत के वायसराय से मिले, पर कोई लाभ न हुआ। एक खिलाफत मैनीफेस्टों भी तैयार किया गया।

इस प्रसंग पर यह विचारणीय है कि गांधी जी को देश के स्वराज्य के लिये हिन्दू-मुस्लिम एकता क्यों आवश्यक लगी। गांधी जी का लगा कि मुसलमानों को खिलाफत में सहयोग देकर वे मुसलमानों का सहयोग प्राप्त कर लेंगे। गांधी जी ने प्रारम्भ से ही उन्हें पूरा सहयोग देने का

आश्वासन दिया। इस आन्दोलन से गांधी जी को लोकमान्य तिलक को, जो अब तक एकमात्र राष्ट्रीय स्तर के भारत के नेता थे, उन्हें हटाकर स्वयं देश का नेतृत्व प्राप्त करने का सुअवसर भी मिला। गांधी जी ने प्रारम्भ से यह कहना शुरू किया कि खिलाफत के सही प्रश्न के हल पर ही देश की भावी शक्ति का दारोमदार है।[52] उन्होंने वायसराय के एक भाषण की आलोचना करते हुए कहा, "वायसराय अपने इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के 55 मिनट के भाषण में इन प्रश्नों पर केवल एक मिनट बोले, इस पर उनको 54 मिनट देने चाहिएं थे।"[53] उन्होंने घोषणा की, "हिन्दू-मुसलमान में जितनी इस समय एकता है, उतनी एकता इस युग में कभी भी नहीं रही।"[54]

पहले मई 1920 में तथा सितम्बर 1920 के कलकत्ता अधिवेशन में गांधी जी ने प्रत्येक मुसलमान को इस आन्दोलन में सहयोग देने को कहा। आन्दोलन को सफल बनाने के लिए डा० बी०आर० अम्बेडकर के अनुसार कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में टैक्सी चालाकों को भी प्रतिनिधि बनाकर अधिवेशन में शामिल किया गया।[55]

वस्तुत: यह एक अस्थाई तथा अवसरवादी समझौता था। इसका सम्बन्ध भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन से जरा भी न था। तत्कालीन दस्तावेजों से यह ज्ञात होता है कि कांग्रेस के अधिकतर नेता इस सम्बन्ध में गांधी जी के साथ नहीं थे। लोकमान्य तिलक के साथ बंगाल तथा महाराष्ट्र के प्रतिनिधियों ने उक्त प्रस्ताव से उदासीनता छा गई थी। तत्कालीन मध्य प्रांत के कांग्रेसी नेता डा० केशव राव हेडगेवार (बाद में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संस्थापक) ने भी कहा कि इससे पृथकतावादी मनोवृत्ति उत्पन्न होगी जो मुसलमानों को भारत के राष्ट्रीय जीवन के साथ एकीकृत न होने देगी।

कांग्रेस के इतिहास में यद्यपि मुसलमानों को किसी भी प्रकार संगठन के साथ जोड़ने के लिए प्रयास होते रहे थे। गोपाल कृष्ण गोखले तथा सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी ने इसके लिए असफल प्रयास किये थे। समय-समय पर कांग्रेस के पूर्व के कई प्रस्तावों को, मुसलमानों को प्रसन्न रखने के लिए विषय समिति ने उन्हें वहीं रद्द कर दिया था। इस दृष्टि से खिलाफत आन्दोलन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पग था। आन्दोलन के असफल होने के बाद टर्की तथा भारत में इसके परस्पर विपरीत परिणाम हुए। टर्की व मिश्र में एक सुधारवादी तथा पंथ निरपेक्ष शासन की स्थापना को सहयोग मिला। शिक्षा पर मुल्ला मौलवियों का प्रभाव कम हुआ। मजहबी अदालतें हटा दी गईं। अनेक मकबरों को ताले ड़ाल दिये गये। टर्की में फैज टोपी पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। बहुविवाह बन्द हुए। कुरान तुर्की भाषा में पढ़ी जाने लगी तथा अरबी पर प्रतिबन्ध लगा।[56]

भारत में इसके विपरीत परिणाम हुए। साम्प्रदायिक दंगों का दौर प्रारम्भ हुआ। भारतीय मुसलमान अधिक प्रतिक्रियावादी तथा रूढ़िवादी हो गये। मुसलमानों ने पैन-इस्लामवाद का नारा दिया। भारतीय मुसलमानों ने यहां के राष्ट्रीय जीवन में रचने-पचने की बजाये अपने अस्तित्त्व के लिए अलग से तथा तीव्रता से प्रयास किये। मोहम्मद अली जैसे नेता ने जिसे गांधी जी ने अपना दायां हाथ बतलाया था, उसने अब यह कहना शुरू कर दिया कि संसार का निम्न से निम्न व्यक्ति भी गांधी जी से महान है।

मोहम्मद करीम छागला (स्वतन्त्र भारत के सर्वोच्च न्यायाधीश) ने, जो तत्कालीन मुस्लिम लीग के नेता थे, गांधी जी की कटु आलोचना करते हुए, बाम्बे स्टूडैन्ट ब्रदरहुड नामक संस्था के अन्तर्गत 19 दिसम्बर 1925 को साम्प्रदायिक अलगाव के कारणों की मीमांसा करते हुए कहा, "राष्ट्रीय कार्यक्रम में खिलाफत का प्रश्न जोड़कर मिस्टर गांधी ने एक महान गलती की, क्योंकि उसने मुसलमानों में एक अतिरिक्त भूमिगत वफादारी की भावना को बढ़ाया जो अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए सीमाओं के पार देखने लगे हैं। यह काम करने का गलत तरीका था क्योंकि भारत में हिन्दू-मुसलमानों में प्रत्येक वस्तु के लिये समझौता है, सिवाय मजहब के। एक शब्द में मिस्टर गांधी ने हवा दी, जो तूफान बनकर पैदा हुआ।"[57]

संक्षेप में खिलाफत आन्दोलन ने बजाय भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग देने के, पृथकतावादी मनोवृत्ति, साम्प्रदायिक दंगों की बाढ़, पैन-इस्लामाबाद को प्रोत्साहन तथा द्विराष्ट्रवाद के विचार को बढ़ावा दिया। खिलाफत आन्दोलन से कांग्रेस का यह समझौता हिन्दू-मुस्लिम एकता, राष्ट्रवाद तथा देशभक्ति की आधारशिला पर न टिका था बल्कि टर्की के सम्मान पर था। मुसलमानों का टर्की के प्रति लगाव वास्तव में राष्ट्रीय न होकर, शुद्ध रूप से मजहबी था। उल्लेखनीय है कि मुगल सम्राटों ने भी किसी खलीफा या आध्यात्मिक नेता को न ही उसकी प्रभुता को स्वीकार किया और न ही उसे मान्यता दी थी। वी०डी० सावरकर ने खिलाफत को 'खुली आफत' कहा था। इसके परिणाम स्वरूप भारत में भयंकर साम्प्रदायिक दंगे हुए जिसे डा० अम्बेडकर ने 'गृह युद्ध' कहा[58] जिसके दूरगामी प्रभाव भारत विभाजन के रूप में हुए। रौलट ऐक्ट, जलियांवाला बाग काण्ड तथा खिलाफत आन्दोलन की छाया में अमृतसर में कांग्रेस अधिवेशन हुआ। प्रारम्भ में सरकारी अधिकारियों ने प्रयत्न किया कि किसी प्रकार से अधिवेशन अमृतसर में न हो। उन्होंने इससे उत्तेजना तथा झगड़े की आशंका व्यक्त की, परन्तु बाद में सरकार ने अपना इरादा बदल दिया।

अमृतसर अधिवेशन

ऐचीशन पार्क में अमृतसर का अधिवेशन न केवल कांग्रेस बल्कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में बहुत अभूतपूर्व था। यहां तक कि भारत के विभिन्न स्थानों से आये सभी प्रतिनिधियों में पंजाब में हुई कठोर तथा वीभत्स घटनाओं को जानने की बहुत उत्सुकता तथा कौतुहल था। पंडाल में 15000 लोगों के बैठने की व्यवस्था की गई थी, यद्यपि इसके लिये 25000 टिकटें दी गई थीं।[59] परन्तु अधिवेशन में लगभग 36000 लोग थे।[60] भारी वर्षा के कारण, अनेक प्रतिनिधियों को अमृतसर वासियों के घरों पर ठहराया गया था।[61] अधिकतर लोग सर्वप्रथम पहले जलियांवाला बाग गये, जो एक तीर्थस्थल बन गया था।[62] देश के प्रमुख नेता जैसे बालगंगाधर तिलक, विपिनचन्द्रपाल, एम०ए० जिन्ना, हसन इमाम, श्रीनिवास शास्त्री, एस०आर० बोमनजी, लाला हरकिशन लाल, पंडित रामभज दत्त, डा० किचलू व डा० सत्यपाल सभी ने इसमें भाग लिया।[63] मोहम्मद अली तथा शौकत अली सीधे जेल से छूटकर वहां पहुंचे थे।[64]

विचार-विमर्श के मुख्य मुद्दे मान्टेग्यू-चैम्सफोर्ड सुधारों, पंजाब की घटनाओं तथा खिलाफत के सम्बन्धों के बारे में थे। उल्लेखनीय है कि कांग्रेस अधिवेशन के साथ-साथ अमृतसर में तभी आल इण्डिया मुस्लिम लीग, खिलाफत ऐसोसिएशन तथा जमैयत-उल-उलेमा के भी अधिवेशन हो रहे थे। अधिवेशन के अध्यक्ष पं० मोतीलाल नेहरू ने उदारवादियों को कांग्रेस में भाग लेने को कहा तथा यह भी कहा कि यदि वे आगे न आये तो देश उनका नाममात्र का नेतृत्व भी स्वीकार न करेगा।[65] विषय समिति दो दल में बंटी थी। पं० मोतीलाल व ऐनी बेसेन्ट एक दल में थे तथा लोकमान्य तिलक, विपिन चन्द्र पाल, सी०आर० दास, सत्यमूर्ति व के०एम० मुंशी दूसरे दल में थे।[66] सी०आर० दास ने अपने एक प्रस्ताव में 'सुधारों' को 'अपर्याप्त, असन्तोषजनक व निराशाजनक' कहा।[67] गांधी जी ने इसमें से 'निराशाजनक' शब्द हटाने के लिए संशोधन रखा तथा एक अन्य पेराग्राफ भी जोड़ा। परन्तु कुछ संशोधनों को करके एक नया फार्मूला बनाकर इसे पास किया गया। एक दूसरे प्रस्ताव में, विषय समिति के सम्मुख जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड तथा साथ ही अमृतसर दंगों में भीड़ पर अत्याचारों पर खेद के सन्दर्भ में था। इस प्रस्ताव के भी दूसरे भाग पर बड़ा विवाद हुआ। इसका दूसरा भाग हटा दिया गया था। परन्तु गांधी जी सन्तुष्ट न थे। कुछ प्रतिनिधियों ने यह प्रस्ताव गलती से ऐनी बेसेन्ट द्वारा तैयार किया समझा।[68] उन्हें यह प्रस्ताव ब्रिटिश समर्थित लगा। एक प्रतिनिधि ने यह भी कहा कि कोई भारत मां से जन्मा, उक्त प्रस्ताव ऐसा तैयार नहीं कर सकता। वास्तव में यह प्रस्ताव गांधी जी द्वारा तैयार किया गया था जो स्वयं उन्होंने स्वीकार किया।[69] अत: अगले दिन अधिवेशन के अध्यक्ष पं० मोतीलाल नेहरू ने

पुन: इस पर विचार करने को कहा। अन्त में गांधी जी के अनुरोध पर प्रस्ताव पास कर दिया गया।

कुल मिलाकर अमृतसर कांग्रेस में पचास प्रस्ताव विभिन्न विषयों जैसे चैम्सफोर्ड को वापिस बुलाने, प्रेस ऐक्ट रद्द करने, रौलट ऐक्ट वापिस लेने, मजदूरों तथा किसानों की दशा पर विचार करने, सर माइकेल ओड़वायर को सैनिक कमेटी से हटाने, जरनल डायर को कमांड से हटाने तथा विविध जेलों में कैदी छोड़ने तथा सजायें माफ करने के सन्दर्भ में थे। यह भी जानकारी दी गई कि मार्शल लॉ के अन्तर्गत 108 व्यक्तियों को मौत की सजायें दी गईं तथा पंजाब झगड़ों की भी यदि कुल सजाओं को मिला दें तो वह 7371 वर्षों की सजा बनती है।[70] अत: यह अधिवेशन बड़े जोश-खरोश के साथ समाप्त हो गया, जिसे पं० जवाहरलाल नेहरू ने 'पहली गांधी कांग्रेस' कहा।[71]

असहयोग आन्दोलन (1920-1922)

जलियांवाला बाग के हत्याकाण्ड तथा मार्शल लॉ से पीड़ित पंजाब तथा टर्की के बारे में विश्व शांति सम्मेलन में रखी शर्तों के समय, 26 मई 1920 को डिसआर्डस कमेटी (हण्टर कमेटी) की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। उपरोक्त कमेटी का कांग्रेस ने पहले से ही बहिष्कार कर दिया था तथा अपनी जांच कमेटी नियुक्त की थी। डिसआर्डस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट दो भागों में प्रकाशित की थी - मेजोरिटी रिपोर्ट (अंग्रेजी बहुमत) तथा माइनोरिटी (अल्पमत) रिपोर्ट तथा पंजाब में हुई घटनाओं के सन्दर्भ में सात भागों में 'इविडेन्स' प्रस्तुत किये थे। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने केवल पांच भागों को ही प्रकाशित किया तथा अगले दो 'इविडेन्स' भाग छिपा लिये थे। ये दो भाग 52 वर्षों के पश्चात प्रकाश में आये थे।[72] अंग्रेजी बहुमत रिपोर्ट से समूचे देश में बहुत निराशा हुई तथा इससे ब्रिटिश प्रशासन के प्रति विश्वास पूर्णत: हिल गया।[73] भारत मन्त्री द्वारा प्रस्तुत इस रिपोर्ट की देश के सभी प्रमुख नेताओं तथा समाचार पत्रों ने कटु आलोचना की। रिपोर्ट को कोरी लीपा-पोती बताया गया।[74] कमेटी के अंग्रेजी सदस्यों तथा भारतीय सदस्यों द्वारा प्रस्तुत अल्पमत रिपोर्ट को परस्पर विरोधी विचारों को देखकर लाला लाजपतराय ने इसे 'एक उच्च राजनीतिक दस्तावेज बतलाया जिसकी योजना नस्लीय भावनाओं को भड़काना' बताया।[75] साथ ही इससे तब और भी ताज्जुब हुआ जब हाउस आफ कामन्स में जनरल डायर के जघन्य अपराधों के लिए बचाने की कोशिश की गई। साथ ही मोहम्मद अली के प्रतिनिधित्व की असफलता तथा 10 अगस्त 1920 को सेवरेज की सन्धि ने भारत में मुस्लिम मस्तिष्क को भी भड़का दिया।[76]

रौलट ऐक्ट, जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड तथा खिलाफत आन्दोलन के प्रति कठोर

ब्रिटिश रवैये को चुनौती देते हुए 1 अगस्त 1920 को गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन की घोषणा की। इससे पूर्व नवम्बर 1919 में खिलाफत आन्दोलन की बैठक में गांधी जी ने पहली बार असहयोग की बात कही थी।[77] सितम्बर 1920 में लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। जहां असहयोग का समर्थन किया गया। इसी भांति पुन: दिसम्बर 1920 में नागपुर अधिवेशन में भी इसका समर्थन किया गया। कांग्रेस के संविधान में परिवर्तन किया तथा कांग्रेस का लक्ष्य ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन की बजाए स्वराज्य घोषित किया गया। मोहम्मद अली जिन्ना, ऐनी बेसेन्ट और विपिन चन्द्र पाल कांग्रेस के इस असहयोग से सहमत न थे। अत: उन्होंने कांग्रेस छोड़ दी। 'असहयोग' के सन्दर्भ में गांधी जी का प्रस्ताव 873 के मुकाबले 1855 के भारी मतों से स्वीकृत हो गया।[78]

असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रमों में सरकारी उपाधियों तथा अवैतनिक पदों का त्याग, स्थानीय संस्थाओं मं नामजद सदस्यों से त्यागपत्र, सरकारी समारोहों तथा दरबारों का बहिष्कार, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग, सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों तथा कालेजों का बहिष्कार, राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना, चुनावों का बहिष्कार, सरकारी न्यायालयों का वकीलों द्वारा बहिष्कार तथा राष्ट्रीय न्यायालयों की स्थापना इसके प्रमुख विषय थे। इसके अलावा हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा छुआछूत दूर करने को भी बल दिया गया था।

आन्दोलन का प्रारम्भ गांधी जी ने अपनी उपाधियों के त्याग से किया तथा केसरे हिन्द, जुलुवार मैडल तथा बोयर वार मैडल त्याग दिये।[79] देश के अनेक नेताओं एवं प्रभावी व्यक्तियों ने भी अपनी उपाधियां तथा पदवियां छोड़ दीं। विद्यार्थियों ने स्कूलों तथा कालेजों को छोड़ा। वकीलों ने न्यायालय छोड़े। विधान मण्डलों का बहिष्कार किया। कोई भी कांग्रेसी 1921 में हुए विधान मण्डलों के चुनाव में खड़ा नहीं हआ। इसके साथ काशी विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, जामिया मिलिया इस्लामिया, गुजरात विद्यापीठ जैसी राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की स्थापना हुई।

ऐसे वातावरण में सरकार की ओर से 1919 के भारत अधिनियम को लागू किया गया।[80] फरवरी 1921 में इसको प्रारम्भ करने के लिये जब डयूक आफ कैनाट भारत आये तो चहुं ओर उसका बहिष्कार हुआ। इसी भांति बाद में नवम्बर 1921 में प्रिंस आफ वेल्स का भी बहिष्कार किया गया। उसके विरूद्ध बहिष्कार प्रस्ताव तथा विरोध सभायें हुईं।[81] इसके विपरीत सरकारी अधिकारियों द्वारा उनके स्वागत के लिए धन इकट्ठा किया गया।[82] पठनीय है कि सरकार द्वारा लाहौर में प्रिंस आफ वेल्स के स्वागत को 'शानदार रूप से सफल' बताया गया, जबकि दूसरी ओर उक्त दिवस वहां 'पूर्ण हड़ताल-शांतिपूर्ण तथा ऐच्छिक' बतलाई गई।[83]

प्रिंस आफ वेल्स के बहिष्कार तथा असहयोग आन्दोलन से ब्रिटिश नौकरशाही बहुत परेशान तथा भयभीत हुई। उन्हें 1857 की पुनरावृत्ति का भी ड़र लगने लगा। लार्ड चैम्सफोर्ड ने झुंझलाहट में आन्दोलन को 'असफल', 'गलत', 'अव्यवहारिक' तथा 'मूर्खता से भरपूर मूर्खतापूर्ण योजना' बतलाया।[84] परन्तु आन्दोलन की प्रगति को देख, नये वायसराय लार्ड रीडिंग ने दिसम्बर 1921 में स्वीकार किया कि सरकार 'हैरान तथा भ्रांत' हुई।[85]

शीघ्र ही सरकार ने दमनकारी नीति का सहारा लिया। सीडीशन मिटिंग्स ऐक्ट को स्थान-स्थान पर अक्टूबर 1920 में लागू किया। अनेक प्रमुख पत्रों पर दमन तथा दबाव का शिकंजा कसा। कुछ सम्पादकों को गिरफ्तार कर सजायें दीं। अनेक पत्रों की जमानत निधि जब्त कर ली। 'वन्देमातरम' की जमानतें जब्त कर लीं। 'केसरी' की 2000 रूपयों की जमानत जब्त कर 10,000 रूपयों की नई जमानत जमा करने को का।[86] आवागमन पर व्यक्तिगत प्रतिबंध लगाये गये। अनेक नेताओं को गिरफ्तार किया गया। स्वदेशी का प्रचार तथा विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। गांधी जी ने लोगों को तिलक स्वराज्य फंड शीघ्र ही इकट्ठा करने को कहा, जो हो गया।

इस आन्दोलन में क्षणिक हिन्दू-मुस्लिम एकता भी प्रकट हुई। परन्तु शीघ्र ही मालाबार में खिलाफती सभाओं में मजहबी उन्माद इतना उग्र रूप धारण कर गया कि इतिहास में 'मोपला विद्रोह' के रूप में हुआ। इसने अगस्त 1921 में हिन्दुओं के विरोध में जेहाद का रूप धारण कर लिया। मुख्यत: यह विद्रोह मुसलमानों का हिन्दुओं के नर-संहार, जबर्दस्ती धर्मान्तरण तथा मंदिरों के ध्वंस करने के लिये जाना गया।[87] हिन्दुओं की अपार सम्पत्ति लूट ली गई। ब्रिटिश सरकार ने सेना की मदद से विद्रोह का दमन किया। परन्तु गांधी जी ने मुसलमानों को खुश रखने के लिये इसमें हिन्दुओं की गलती बताई। 1921 के अन्त में कई स्थानों पर कर न देने का भी निश्चय किया गया। आंध्र के गुंटूर में यह प्रारम्भ भी हो गया, परन्तु गांधी जी ने इसकी अनुमति नहीं दी। दिसम्बर 1921 में कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन में असहयोग आन्दोलन को तीव्र करने की बात की गई। सी०आर० दास के जेल में होने के कारण हकीम अजमल खां ने इसकी अध्यक्षता की। उन्होंने इस अहिंसक असहयोग आन्दोलन को तेजी से बढ़ता 'ऐशियाई आन्दोलन' कहा, जो शीघ्र ही विश्व चेतना बन, विश्व अन्याय तथा असत्य के विरूद्ध शस्त्र साबित होगा।[88] असहयोग आन्दोलन पर प्रस्ताव लगभग 35 मिनट तक पढ़ा गया।[89] इस अधिवेशन का यह वैशिष्टय था कि अधिवेशन के लिए खादी के टैंट लगाये गये।[90] परन्तु इस अधिवेशन में मोपला विद्रोह का जिक्र तक नहीं किया गया।

एक अनुमान के अनुसार केवल दो मास में (दिसम्बर 1921-जनवरी 1922) भारत में असहयोग आन्दोलन में 30,000 व्यक्तियों को पकड़ा गया तथा उन्हें सजायें दी गईं। फरवरी 1922 के प्रारम्भ में गांधी जी ने भारत के वायसराय लार्ड रीडिंग को पत्र लिखकर कर न देने की धमकी भी दी थी।

लेकिन 5 फरवरी 1922 को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में चौरी चोरा नामक स्थान पर एक भीड़ ने पुलिस चौकी को घेर लिया और आग लगा दी। इसमें 22 सिपाही तथा एक थानेदार की मृत्यु हो गई। गांधी जी ने तत्काल आन्दोलन को हिंसात्मक होते देख 12 फरवरी को अचानक स्थगित करने की घोषणा कर दी। अचानक इस घोषणा से कांग्रेस के सभी बड़े नेता भौचक्के रह गये। जनसमाज आश्चर्यचकित तथा क्रोधित हुआ। लाला लाजपतराय ने इस निर्णय को एक बम्ब धमाके के समान बतालाया।[92] पं० मोतीलाल नेहरू जो लखनऊ जेल में थे, गुस्से में आपे से बाहर हो गये। पं० जवाहरलाल नेहरू ने निराशा व्यक्त करते हुए एक पत्र में लिखा कि गांधी जी ने 'सुन्न कर देने वाली दवा की खुराक' दी।[93] सुभाष चन्द्र बोस ने इसे अत्यन्त कष्टकारक बतलाया। मोहम्मद अली तथा शौकत अली इससे असन्तुष्ट हुए। पंजाब प्रांतीय कांग्रेस ने इस निर्णय को ब्रिटिश नौकरशाही के सम्मुख समर्पण बतलाया तथा इस पर पुनर्विचार तथा वस्तुस्थिति को परिचित कराने की बात की।[94] गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया।

असहयोग आन्दोलन अपने उद्देश्यों में असफल रहा। गांधी जी, न ही अहिंसा द्वारा जनता का हृदय परिवर्तन कर सके और न ही हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित हो सकी। हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रश्न एक स्वप्न बनकर रह गया। इस आन्दोलन से न तो पंजाब की कठिनाईयां दूर हुईं और न ही 'एक वर्ष में स्वराज्य' ही प्राप्त हो सका। गांधी जी का यह नारा थोथा साबित हुआ। कांग्रेस संगठित होने के बजाये अनेक नेता इससे विरक्त हो गये। कांग्रेस के दो दिग्गजों मातीलाल नेहरू एवं चितरंजन दास ने कांग्रेस के अन्तर्गत ही स्वराज्य पार्टी का गठन कर लिया। लोकमान्य तिलक के अनुयायी जी०एस० खापर्डे, डा० हेडगेवार, कांग्रेस से ही दूर हो गये। बाद में गांधी जी ने भी स्वयं जनमानस को मनोवैज्ञानिक रूप से बिना तैयार किये इस आन्दोलन को एक हिमालयन भूल माना। आन्दोलन की असफलता से लोगों में निराशा तथा अनैतिकता की भावनाओं को बढ़ावा मिला तथा साम्प्रदायिक दंगों का अमानुषिक ढ़ंग से विस्तार हुआ। देश की राजनीति में कुछ वर्षों के लिये ठहराव आ गया।

परन्तु यह सोचना कि असहयोग आन्दोलन का जनता तथा देश की राजनीति पर कोई प्रभाव नहीं हुआ[95], गलत होगा। इससे भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन कुछ कदम आगे बढ़ा। खादी

का प्रयोग, स्वदेशी का प्रचार, राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओं का विस्तार हुआ। कांग्रेस की रीति-नीति में भी परिवर्तन आया। कांग्रेस में जन आन्दोलन से किसानों, मजदूरों तथा भारी संख्या में विद्यार्थियों का आगमन हुआ। हिन्दी भाषा का प्रयोग बढ़ा। कांग्रेस का आन्दोलन अब जन आन्दोलन की ओर अग्रसर हुआ।

कांग्रेस की प्रगति 1922-1929 ई० तक

असहयोग आन्दोलन की असफलता से भारत की राजनीति में शिथिलता आ गई। टर्की के सुल्तान को खलीफा के सन्दर्भ में सफलता न मिलने से जो मुसलमान अचानक कांग्रेस में आये थे, वे अलग हो गये तथा ब्रिटिश सरकार ने इस अलगाव को बढ़ाया। साथ ही कांग्रेस के नेताओं में परस्पर टकराव से भी, असहयोग आन्दोलन का यथेष्ठ लाभ देश तथा कांग्रेस को नहीं मिला।

ब्रिटिश सरकार ने पहले 1909 ई० के सुधारों द्वारा तथा 1919 ई० में मान्टेग्यू-चैम्सफोर्ड के 1919 ई० के ऐक्ट के द्वारा पृथक चुनाव प्रतिनिधित्व को माना था। कांग्रेस ने भी स्वीकार किया था। दुर्भाग्य से भारतीय इतिहास में हिन्दू-मुस्लिम दंगों की अनेक घटनाओं को जन्म मिला। दंगे प्राय: वहीं हुए जहां मुस्लिम बाहुल्य था या वे पर्याप्त संख्या में थे।

अगस्त 1921 में हुए मोपला विद्रोह ने अन्य प्रदेशों में मुसलमानों को दंगों के लिए प्रोत्साहित किया। जुलाई 1923 में अम्बाला में एक केन्द्रीय जमैयत-तबलीग-उल-इस्लाम का गठन किया गया जिसका संगठन मन्त्री सैयद गुलाम भीख नारंग को बनाया गया।[96] खिलाफत नेताओं ने अब मुसलमानों को "एक नया तथा अधिक प्रगतिशील प्रोग्राम" अपनाने को कहा।[97] डा० सेफुद्दीन किचलू ने अपना ध्यान तंजीम (संगठन) तथा तबलीग (धर्म परिवर्तन) आन्दोलन की ओर लगाया। हिन्दुओं को भी अपने समाज की कमजोरियों का आभास हुआ।[98] उन्होंने 'शुद्धि' तथा 'संगठन' अपनाया। शुद्धि आन्दोलन 1888 में प्रारम्भ हुआ था[99] तथा अनेक व्यक्तियों ने पुनर्हिन्दू धर्म को अपनाया था।[100] मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, डा० बी०एस० मुन्जे, वी०डी० सावरकर ने इसके लिये प्रयत्न किये थे। मालवीय जी ने हिन्दू महासभा के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता की थी। लाजपतराय ने अखिल भारतीय अछूतोद्धार सभा बनाई, स्वामी श्रद्धानन्द ने शुद्धि आन्दोलन में बढ़चढ़ कर भाग लिया।

पृथक निर्वाचन प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर बनी प्रांतीय लेजिस्लेटिव तथा स्थानीय बोर्डों ने भी अलगाव व टकराव को बढ़ाया। 1922 के पश्चात शीघ्र ही अनेक हिन्दू-मुस्लिम

दंगे हुए। उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में कोहाट में 9-10 सितम्बर को भयंकर दंगे हुए जिसमें 155 हिन्दू मारे गए या जख्मी हुए तथा 4000 की संख्या को रावलपिंडी जाना पड़ा। पंजाब में अमृतसर[101], मुल्तान, पानीपत[102] तथा इसके अन्य भागों में दंगे हुए। 1925-1927 के दौरान भी अनेक स्थानों पर दंगे होते रहे। लार्ड रीडिंग की अपीलें असफल रहीं। दंगों के परिणामस्वरूप 23 दिसम्बर 1926 को स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या कर दी गई।

साम्प्रदायिक दंगों ने देश के राजनीतिक व संवैधानिक तनाव को बढ़ाया। असहयोग आन्दोलन के अचानक स्थगित होने से भावी राजनीतिक विकास में बाधायें आईं। कांग्रेस के अन्तर्गत ही एक ऐसा दल बन गया जो असहयोग आन्दोलन में अविश्वास रखते थे तथा कांग्रेस के कार्यक्रमों में परिवर्तन चाहते थे। इन्हें परिवर्तनवादी या स्वराज्यवादी कहा गया। इसके प्रमुख नेता देशबन्धु चितरंजन दास तथा पं० मोतीलाल नेहरू थे। दूसरे वे थे जो अब भी गांधी जी के नेतृत्व में आस्था रखते थे तथा असहयोग के पक्षपाती थे। ये विधान मण्डलों के बहिष्कार में आस्था रखते थे तथा इन्हें अपरिवर्तनवादी कहा गया। इनके प्रमुख नेता डा० राजेन्द्र प्रसाद, राजगोपालाचारी व डा० एम०ए० अन्सारी थे।

दिसम्बर 1922 में कांग्रेस का अधिवेशन गया में हुआ, इसकी अध्यक्षता देशबन्धु चितरंजन दास ने की। उन्होंने प्रयत्न किया कि सरकारी कौंसिलों में प्रवेश का प्रस्ताव पारित हो जाये पर उन्हें सफलता नहीं मिली। अत: उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने मोतीलाल नेहरू से मिलकर इलाहाबाद में एक सम्मेलन किया तथा स्वराज्य दल की स्थापना की। इन्होंने कांग्रेस के कौंसिलों के प्रवेश के बहिष्कार के अलावा, कांग्रेस के कार्यक्रमों को स्वीकार किया।[103] इन्होंने नवम्बर 1923 में होने वाले चुनाव में भाग लिया। चुनाव में इन्हें अच्छी सफलतायें मिलीं। केन्द्रीय विधान मण्डल में तथा सेन्ट्रल प्रीविन्शेन्स में चुने हुए इनके सदस्य बहुमत में आये। अन्य प्रांतों में भी कुछ सीटें मिलीं। केन्द्र विधान मण्डल में स्वराज्य दल के नेता मोतीलाल नेहरू व बंगाल में चितरंजन दास बने।[104] स्वराज्य दल ने विधान मण्डलों में कई महत्त्वपूर्ण कार्य किये तथा सुधारों की मांग की।

इसी बीच दिसम्बर 1923 में कांग्रेस का अधिवेशन कोकानड़ में हुआ। इसकी अध्यक्षता मौलाना मोहम्मद अली ने की। उन्होंने अपने भाषण में 'स्वराज्य' का अर्थ 'सर्वराज्य' अर्थात सब का राज्य बतलाया। यह पहला अवसर था जब कांग्रेस के अध्यक्ष द्वारा वन्देमातरम गीत को रोकने का प्रयास किया, पर यह असफल रहा।

स्वास्थ्य खराब होने से गांधी जी को 1924 में जेल से छोड़ दिया गया। गांधी जी के प्रयत्नों से स्वराज्यवादियों तथा दूसरों में एक समझौता हुआ, जिसमें उन्हें चुनाव में लड़ने की स्वीकृति दी गई, साथ ही उन्होंने कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रमों अर्थात छुआछूत दूर करने, हिन्दू-मुस्लिम एकता, चरखा की कताई तथा नशाबन्दी[105] को स्वीकार किया। जून 1925 में चितरंजन दास की मृत्यु से स्वराज्य दल कमजोर हो गया। कुछ सदस्यों ने भी सरकार के प्रति सहयोग, सम्मान, प्रतिष्ठा, पद की नीति अपनाई। उदाहरणत: सेंट्रल प्रीविंशेन्स में स्वराज्य दल के नेता एस०बी० तांबे ने गवर्नर की कार्यकारिणी में मन्त्री पद स्वीकार कर लिया। कुछ सदस्यों ने मिलकर 'नेशनल पार्टी' बनाई। 1926 के चुनाव में मद्रास को छोड़कर प्राय: सभी स्थानों पर स्वराज्य दल की हार हुई।

1919 ई० के भारतीय अधिनियम के प्रावधान में दस वर्ष बाद तत्कालीन ऐक्ट की उपयोगिता के अवलोकन की बात थी। अत: एक जांच आयोग बैठना था। इंग्लैण्ड की बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों को देखते हुए, इंग्लैण्ड के अनुदार दल ने यह जांच कमीशन 1927 में अर्थात निर्धारित समय से दो वर्ष पहले ही भेज दिया। इसका मुख्य कारण था कि इंग्लैण्ड के आने वाले चुनाव में अनुदार दल को जीतने की आशा कम थी तथा वे भारत के भविष्य का निर्धारण स्वयं करना चाहते थे।

भारत में साइमन कमीशन की अध्यक्षता में एक कमीशन भेजा गया। इसमें कुल सात सदस्य थे, परन्तु इसमें कोई भी भारतीय न था। अत: इस कमीशन को 'व्हाइट मैन कमीशन' भी कहा जाता है। 3 फरवरी 1928 को कमीशन बम्बई पहुंच गया। इसका सर्वत्र विरोध किया। सभी प्रमुख नगरों में हड़ताल करके, काली पट्टी लगाकर तथा 'साइमन कमीशन गो बैक' के नारों से इसका विरोध किया। लखनऊ में पंडित जवाहरलाल नेहरू व गोविन्द वल्लभ पंत ने इसका विरोध किया। लाहौर में लाजपतराय ने इसका प्रतिरोध किया।[106] विरोध स्वरूप उन्हें पुलिस की लाठी लगी, जिससे बाद में अगले मास उनकी मृत्यु हो गई। 1930 में साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित की गई जिसके कुछ सुझावों को 1935 के भारत अधिनियम का आधार बनाया गया।

साइमन कमीशन के चहुं ओर विरोध से पुन: राष्ट्रीय चेतना आई। लाजपतराय की मृत्यु ने न केवल राष्ट्रवादियों को, बल्कि क्रांतिकारियों को और अधिक उत्तेजित तथा सतर्क कर दिया।

इसी बीच भारतीय सचिव लार्ड बर्कनहैड ने ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में भारतीयों को एक

ऐसा संविधान बनाने की चुनौती दी जो सभी को मान्य हो। वस्तुत: यह एक कूटनीतिज्ञपूर्ण वक्तव्य था। उत्तर के रूप में कांग्रेस ने 28 फरवरी 1928 को एक सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया। इसमें आये हुए व्यक्तियों की एक समिति भावी संविधान बनाने के लिए बनाई, जिसके अध्यक्ष पं० मोतीलाल नेहरू थे। बाद में इन्हीं की सिफारिशों को 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से कहा गया है। अगस्त 1928 में पारस्परिक मतभेदों के कारण इसमें अनेक दोष बतलाए गये। मुस्लिम लीग के प्रधान मुहम्मद अली ने इसे अप्रजातांत्रिक तथा प्रतिक्रियावादी तथा अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुस्लिम हितों की विरोधी बताया।[107] मौलाना अबुल कलाम आजाद, डा० एम०ए० अंसारी व हकीम अजमल खां ने इसका समर्थन किया। सेंट्रल सिक्ख लीग के अध्यक्ष सरदार खडकसिंह ने इसे अस्वीकृत कर इसे रद्दी की टोकरी में फेंकने को कहा।[108] हिन्दू नेता भाई परमानन्द ने इसकी कटु आलोचना की।[109] एम०ए० जिन्ना ने एक अखिल भारतीय सम्मेलन बुलाकर अपनी 14 सूत्रीय मांगें रखीं। पं० नेहरू व सुभाष बोस कमेटी की सिफारिश 'डोमियन स्टेट्स' की मांग नहीं चाहते थे। दिसम्बर 1928 के कलकत्ता अधिवेशन में नेहरू रिपोर्ट भी प्रस्तुत की गई। विरोध के पश्चात भी गांधी जी के प्रयत्नों से डोमिनियन स्टेट्स की मांग का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। इसी बीच 31 अक्टूबर 1929 को भारत के वायसराय लार्ड इरविन ने गोलमेज कांफ्रेंस की घोषणा की जिससे भारत तथा इंग्लैण्ड में उत्तेजना फैली।[110] साथ ही यह भी चेतावनी दी कि यदि यह रिपोर्ट दिसम्बर 1930 तक स्वीकार न की गई तो देश में अगले अधिवेशन से पुन: आन्दोलन शुरू कर दिया जायेगा।

कांग्रेस तथा क्रांतिकारी

यह भारतीय इतिहास की विडम्बना है कि यहां के राष्ट्रीय आन्दोलन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा क्रांतिकारियों की पृष्ठभूमि, उद्देश्य, कार्यविधि तथा प्रतिफल परस्पर विरोधी तथा विपरीत रहे हैं। 1885–1947 के लम्बे काल में कांग्रेस का नेतृत्व क्रमश: उदारवादियों, राष्ट्रवादियों तथा समझौतावादियों ने किया।

क्रांतिकारियों की दिशा

1857 ई० के महा समर के पश्चात तथा कांग्रेस के जन्म से पूर्व ही पंजाब में कूका आंदोलन तथा महाराष्ट्र में वासुदेव बलवन्त फड़के द्वारा क्रांतिकारी गतिविधियां प्रारम्भ हो गईं थीं। चापेकर बन्धुओं तथा सावरकर बन्धुओं ने शीघ्र ही अंग्रेज सरकार को चौकन्ना तथा भयभीत कर दिया था। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत के विभिन्न प्रांतों में अनेक गुप्त संस्थायें स्थापित हो गईं थीं, जो देशभक्ति, बलिदान, संघर्ष का परिचायक थीं।

क्रांतिकारियों का एक मात्र सीधा तथा स्पष्ट उद्देश्य अंग्रेजों को भारत से खदेड़कर भारत को एक पूर्ण स्वतन्त्र देश बनाना था। इनका मार्ग न ही हिंसा का था और नही 1917 ई० की रूसी क्रांति से किंचित भी प्रभावित था।[111] क्रांतिकारियों की कार्यविधि को समझने के लिए संक्षेप में कुछ प्रसिद्ध क्रांतिकारियों के विचार जानने महत्त्वपूर्ण होंगे।

ब्रिटिश शासकों की राजधानी लन्दन में भारत के प्रथम क्रांतिकारी मदनलाल धींगरा ने अदालत में फांसी की घोषणा से पूर्व 1 जुलाई 1909 को कहा था, "भारत में आज एक ही पाठ पढ़ाने की आवश्यकता है कि वह कैसे मरा जाता है और सिखाने का सर्वोत्तम उपाय है कि हम स्वयं मर कर दिखलायें।"[112]

क्रांतिकारी वारीन्द्र घोष ने कहा था :[113]

"कुछ अंग्रेजों को मारकर अपने देश को मुक्त करने की न तो हम आशा रखे हैं और न वैसा हमारा मतलब ही है। हम लोगों को यह दिखलाना चाहते हैं कि किस प्रकार साहसिक कार्य और मरना चाहिए।"

इसी भांति शहीद शिरोमणि भगतसिंह ने 15 जनवरी 1931 को अपने एक मित्र रामशरण दास की पुस्तक 'द ड्रीमलैण्ड' की भूमिका लिखते हुए कहा :[114]

"सच्चाई यह है कि हमारे देश के सभी राजनीतिक आन्दोलन जिन्होंने वर्तमान इतिहास में महत्त्वपूर्ण भूमिका की है, इसकी प्राप्ती के निमित्त, आदर्श में पिछड़े हुए रहे हैं। क्रांतिकारी पार्टी भी इसका अपवाद नहीं है... सिवाय गदर पार्टी के जिसने संयुक्त अमेरिका की सरकार के स्वरूप से प्रभावित होकर स्पष्ट रूप बतलाया कि वे तत्कालीन सरकार के स्थान पर एक गणतंत्रीय सरकार चाहते थे।"

इससे पूर्व 6 जून 1929 में दिल्ली के सत्र न्यायाधीश की अदालत में उन्होंने कहा था, "क्रांति के लिए खूनी लड़ाईयां अनिवार्य नहीं हैं और न ही उनको व्यक्तिगत प्रतिहिंसा के लिये कोई स्थान है। वे बम और पिस्तौल का सम्प्रदाय नहीं हैं। क्रांति से हमारा प्रयोजन है, समाज व्यवस्था में आमूल परिवर्तन।" गांधी जी ने एक लेख 'यंग इण्डिया' में 'काल्ट आफ बम्ब' लिखा था।[115] इसके उत्तर में भगतसिंह ने 'फिलोसफी आफ बम्ब' लिखा। इसकी पहली पंक्ति में ही लिखा कि, "मैं मनुष्य के रक्त बहाने के खिलाफ हूं।" एक अन्य स्थान पर आतंकवाद का विरोध करते हुए लिखा, "आतंकवाद के शैतान के साथ कोई सद्भावना दिखाने की जरूरत नहीं है... यह तो सिर्फ पटाखे चलाने का काम होगा। किसी क्रांतिकारी को इस दूषित चक्र में, समर्थक बगावतों में

चक्कर काटने की आवश्यकता नहीं है।"

उन्होंने गांधी जी को यह भी बतलाया कि वे अहिंसक आन्दोलन के विरोधी क्यों हैं? कहा, "गांधी जी एक दयालु मानववादी व्यक्ति हैं। लेकिन ऐसी दयालुता से सामाजिक बदलाव नहीं आता।"

फांसी से पूर्व उन्होंने 2 फरवरी 1931 को पुन: एक लेख में कहा, "हमें आन्दोलन की सम्भावनाओं, पराजयों व उपलब्धियों सम्बन्धी किसी प्रकार का भ्रम नहीं होना चाहिए। आज इस आन्दोलन को गांधीवाद कहना ठीक है... इसका तरीका अनूठा है। लेकिन उसके विचार बेचारे लोगों के किसी काम के नहीं हैं। गांधीवाद साबरमती के संत को कोई स्थाई सदस्य नहीं दे पाएगा।"

पहले राष्ट्रवादियों पर प्रहार

प्रारम्भ में मि० हयूम के जीवित रहते (1912 ई० तक) उसके अनुयायी उदारवादियों ने अपने मार्ग में बाधा, राष्ट्रवादी कांग्रेस के लोगों को पाया। इसका विस्तृत विवरण भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की वार्षिक कार्यवाहियों, पारित प्रस्तावों तथा वक्तव्यों से ज्ञात होता है। उदाहरण के लिए 1897 के अमरावती कांग्रेस अधिवेशन में जबकि महारानी विक्टोरिया के शासन की हीरक जयन्ती पर उसका यशोगान किया गया तथा बधाई प्रस्ताव पारित किये, लोकमान्य तिलक को देशभक्ति हित गिरफ्तारी पर एक भी सहानुभूति का शब्द न कहा गया। इसी भांति सूरत की 1907 ई० की कांग्रेस की फूट में तिलक को अधिवेशन के पंडाल में ही घेरकर धक्का-मुक्की होने लगी। साथ ही गोपाल कृष्ण गोखले ने भी राष्ट्रवादियों द्वारा अपनी पिटाई अथवा मार जाने की आशंका भी जताई थीं।[116] इसी भांति 1907-1908 ई० में जब राष्ट्रवादियों के सर्वोच्च नेता ला० लाजपतराय, लोकमान्य तिलक, विपिन चन्द पाल व श्री अरविन्द घोष को पकड़कर विभिन्न स्थानों पर जेल भेज दिया गया। कांग्रेस के नेताओं ने तो नहीं बल्कि जनता ने आक्रोश किया। पंजाब के विभिन्न स्थानों पर प्रदर्शन हुए। कलकत्ता (कोलकोता) तथा बम्बई (मुम्बई) में विरोध हुआ। बम्बई में मजदूरों ने भी पूरी हड़ताल रखी। शायद इसीलिए लेनिन ने तिलक को भारत का 'प्रथम जनवादी'[117] तथा प्रथम 'ट्रेड यूनियन लीडर' कहा। लन्दन में भी उनकी गिरफ्तारी के खिलाफ सभायें हुईं। संयोग से तिलक की गिरफ्तारी के साथ श्री गोपाल कृष्ण गोखले लन्दन में थे। जब उन्हें एक सभा की अध्यक्षता करने के लिये कहा गया तो उन्होंने तुरन्त अस्वीकार ही नहीं किया बल्कि भारत मन्त्री लार्ड मार्ले को बतलाया कि "तिलक का काफी सम्बन्ध सावरकर और बापट से है।" कुछ

क्रांतिकारियों ने इससे क्षुब्ध होकर गोखले के कृत्य को बड़ा भारी 'विश्वासघात' कहा। कुछ उन्हें मारने के लिए तैयार हो गये, परन्तु उन्हें यह कहकर कि मार्ले की चाल है, उन्हें शांत किया गया।[118]

क्रांतिकारियों की निंदा तथा विरोध

कांग्रेस का प्रारम्भ से ही क्रांतिकारियों से विरोध रहा। कांग्रेसी नेता किसी भी प्रकार से ऐसा समर्थन नहीं करना चाहते थे जिससे उनकी राजभक्ति पर आंच आये। इंग्लैण्ड की एक सभा में मदनलाल धींगरा के कृत्य के विरूद्ध जब प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास होने लगा तो अकेले सावरकर ने उसका विरोध किया, परन्तु प्रस्ताव बहुमत से ही पास हो सका।[119] उक्त सभा में धींगरा को पागल तथा उसके कार्य को धर्मान्ध कृत्य बतलाया।[120] भारत मन्त्री लार्ड मार्ले ने इस घटना को नीचतापूर्ण तथा कायरतापूर्ण कहा।[121] भारत के वायसराय लार्ड मिन्टो ने धींगरा के कार्य को अति घृणापूर्ण बतलाया।[122] 5 जुलाई की रात्रि में भारतीयों की एक सभा रिफार्मस क्लब (लन्दन) में हुई जिसमें कांग्रेसी नेता सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने धींगरा के हिंसा तथा कार्य का विरोध किया। साथ ही यह भी कह दिया कि "हत्यारा (धींगरा) पंजाब का था न कि बंगाल का।" लाहौर में होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन की स्वागत समिति ने धींगरा के कृत्य की तीव्र भर्त्सना की तथा इस कार्य को 'भीरूता तथा विवेकशून्य युक्त' बतलाया।[123] श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने इस कार्य को 'भारत के नाम को कलुषित करने वाला' बताया।[124] प्रथम महायुद्ध के दिनों में भी जब कांग्रेसी नेता राजभक्ति दिखलाने में एक-दूसरे से प्रतियोगिता कर रहे थे, क्रांतिकारी न केवल भारत के विभिन्न प्रांतों में बल्कि विदेशों में पूर्णत: गतिशील थे।

महायुद्ध के पश्चात भी ब्रिटिश सरकार क्रांतिकारी गतिविधियों से विचलित थी। रौलट कमेटी बनाने से पूर्व ही वायसराय चैम्सफोर्ड इससे सावधान था। अत: मूलत: रौलट बिल कांग्रेस के नेताओं के डर से नहीं, बल्कि क्रांतिकारी क्रियाकलापों की सम्भावनाओं से परेशान थे। जलियांवाला बाग के नरसंहार, पंजाब में मार्शल लॉ की वीभत्सकारी घटनाओं ने देश के वातावरण को प्रभावित अवश्य किया था, परन्तु असहयोग आन्दोलन की निष्फलता तथा अचानक उसके स्थगित होने से देश के नैराश्य वातावरण में क्रांतिकारियों की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। उन्होंने समाज में विश्वास तथा जागृति लाई थी।

कांग्रेस और क्रांतिकारियों के विचारों को अधिक गहराई से समझने के लिए समझौतावादियों अथवा महात्मा गांधी जी के विचार जानना महत्त्वपूर्ण होंगे। यह सर्वविदित है कि गांधी जी जीवन भर अहिंसा के पुजारी रहे तथा उनकी प्रारम्भ से ही क्रांतिकारियों के प्रति भूमिका

शत्रुतापूर्ण तथा कटु-विरोधी रही। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखें तो उन्होंने सदैव जो भी सेनापति या नेता मुगल शासकों या ब्रिटिश शासकों से लड़े, उनकी कटु आलोचना की। उन्होंने महाराणा प्रताप की कटु आलोचना की थी।[125] कांग्रेस ने कभी भी 1857 ई० के संघर्ष को महान नहीं माना। गांधी जी ने 1903 ई० के इंडियन ओपिनियन में इसे एक 'विद्रोह' ही कहा। वहीं पं० नेहरू ने एक 'सामन्ती विस्फोट'[126] तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद ने इसे 'राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित नहीं'[127] माना। वस्तुत: ए०ओ० हयूम ने कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन 1886 ई० में ही गांधी से बहुत पूर्व, कांग्रेस की दिशा तथा संवैधानिक मार्ग निश्चित कर दिया था।

गांधी जी ने 'हिन्द स्वराज्य' में महान क्रांतिकारी मदनलाल धींगरा की निन्दा की तथा उसे एक देशभक्त बतलाते हुए उसके प्रेम को अन्धा बतलाया, जिसने अपने शरीर को गलत ढ़ंग से छोड़ा।[128] महान शहीद यतीन दास को जिसने 64 दिन की भूख हड़ताल से 13 सितम्बर 1919 को शरीर त्यागा, इस सन्दर्भ में गांधी जी ने कुछ भी बोलने से इंकार कर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि इस सन्दर्भ में कुछ भी लिखना, उनके हित में नहीं होगा।[129] गांधी जी ने चिटगांव आरमेरेरी के अभियान के नेताओं को पथभ्रष्ट कहा।[130] इसी भांति उन्होंने शहीद आजम भगतसिंह, राजगुरू तथा सुखदेव के प्रति कठोर नीति का अनुसरण किया, जबकि कांग्रेस के अधिकारिक इतिहासकार पट्टाभिसीता रमैया ने सत्य को न छिपाकर स्पष्ट लिखा[131], "इस कथन में कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि उन क्षणों में भगतसिंह का नाम समस्त भारत में इतना जाना जाता था जितना महात्मा गांधी का।" और बाद में यही बात सुभाषचन्द बोस तथा आजाद हिन्द फौज के तीन सेना अधिकारियों के बारे में भी कही। पट्टाभि ने पुन: लिखा कि शहानवाज, सहगल तथा ढ़िल्लो नामों से, सभी राष्ट्रीय नेता पीछे रह गये थे। लोग गांधी जी की जगह सुभाष को चाहने लगे तथा गांधी जी मूकदर्शक रह गये थे।

यह उल्लेखनीय है कि अनेक ब्रिटिश अधिकारी इस बात से प्रसन्न भी थे कि गांधी जी के होते हुए भारत में किसी प्रकार के हिंसात्मक गतिविधियों की गुंजायश कम है। गांधी जी ने लार्ड इरविन को यह आश्वासन भी दिया कि उनका कार्य अहिंसा से असंगठित हिंसात्मक शक्ति को रोकना है।[132] अनेक अंग्रेजों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है कि गांधी जी उनके सर्वोत्तम मित्र तथा भारत में सहायक हैं। उन्होंने गांधी जी को "एक ऐसा मित्र बतलाया जिसमें सविनय अवज्ञा आन्दोलन को रोकने की ही क्षमता ही नहीं, बल्कि क्रांतिकारी आन्दोलन के मार्ग की भी।"[133] लार्ड सेमुअल ने कहा कि "सच्चाई यह है कि भारत में कोई खुला विद्रोह न हुआ... इसका मुख्यत: कारण गांधी जी का प्रभाव है... जो भारत में वे ब्रिटिश के सर्वश्रेष्ठ पुलिसमैन हैं।"[134]

कांग्रेस तथा क्रांतिकारियों के सम्बन्धों को और अधिक स्पष्ट करने में क्रांतिकारी सुखदेव का गांधी जी को पत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।[135] अपने बलिदान से पूर्व उसने यह पत्र गांधी जी को लिखा था जिसका उत्तर उसकी मृत्यु के पश्चात 22 अप्रैल 1931 में 'यंग इण्डिया' में गांधी जी ने प्रकाशित किया था। पत्र को जानने से पूर्व उस काल की स्थिति का अवलोकन भी आवश्यक है। इन दिनों गांधी जी की भारत के वायसराय लार्ड इरविन से बात चल रही थी। सविनय अवज्ञा आन्दोलन का बुरी तरह दमन कर दिया गया था। गांधी जी की वायसराय इरविन से बातचीत के आधार पर 26 जनवरी 1931 को उन्हें तथा कांग्रेस कमेटी के सदस्यों को जेल से छोड़ दिया गया। यह समझौता 4 मार्च 1931 को हुआ। सभी कांग्रेसी राजनैतिक कैदी गांधी जी ने छुड़वा लिये थे। परन्तु भगतसिंह, सुखदेव व राजगुरू की फांसी की सजा दी जाने वाली थी। विषय इन तीनों क्रांतिकारियों की फांसी का भी प्रश्न आया। सम्भवत: गांधी जी इस विषय पर डटे नहीं। इसमें इरविन ने यह सुझाव अवश्यक दिया कि फांसी 31 मार्च 1931 को होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन के बाद दे दी जायेगी। इस पर गांधी जी ने कहा[136]:

"अगर इन लड़कों को फांसी ही दी जायेगी तो बेहतर होगा कि वह बाद की बजाय कांग्रेस अधिवेशन से पहले ही दे दी जाये। तब देश की हालत ज्यादा स्पष्ट होगी। लोगों के मन में झूठी आशा न बनी रहेगी।"

इसी काल में सुखदेव ने गांधी जी को पत्र लिखा था जिसमें उसने अहिंसा के सिद्धांत पर एक अंतिम अवसर की मांग को 'अनुचित' तथा भावपूर्ण बतलाया। सुखदेव ने गांधी जी को अपने सभी कैदी को छुड़ाने, पर देश की आजादी के लिए अन्य कैदियों की चिन्ता न करने का आरोप लगाया था। इस पत्र में उसने गदर पार्टी, मार्शल लॉ के अन्तर्गत कैदी, बब्बर अकाली दल के कैदी तथा अन्य क्रांतिकारी कैदियों की बात की थी। उसने गांधी जी पर आरोप लगाते हुए इसे क्रांतिकारी आन्दोलन को नौकरशाही से मिलकर क्रांतिकारियों के साथ विश्वासघात, दल त्याग और गद्दारी के बराबर बताया था।

इसके उत्तर में गांधी जी ने 'हिंसा' के मार्ग की कटु आलोचना की तथा अन्य कैदियों को भी छुड़ाने की दबी आवाज में वायदा किया था।[137]

कुछ भी हो, इससे करांची अधिवेशन में आने वालों की संख्या घट गई थी। मुन्शी प्रेमचन्द जैसे लेखक जो इस अधिवेशन में जाने को उत्सुक थे, उन्होंने लिखा[138], "मैं करांची अधिवेशन में जाने वाला था। परन्तु जब भगतसिंह की फांसी का समाचार सुना, हृदय टूट गया।

करांची जाकर क्या करूंगा ?"

क्रांतिकारियों के संघर्ष 1947 तक चलते रहे। कभी पश्चिमोत्तर में गढ़वाली सैनिकों द्वारा, कभी नागा पहाड़ियों में यदुनाग तथा रानी गाईडिलोउ द्वारा। यह संघर्ष आजाद हिन्द फौज तथा सुभाष चन्द्र बोस द्वारा निरंतर चलता रहा। संक्षेप में सच्चाई यह है कि यह कथन अतिश्योक्तिपूर्ण है कि "भारत ने स्वतन्त्रता बिना खून-खराबे के प्राप्त की।"[140] गांधी जी का कथन है कि "अंग्रेजों ने भारत से जाने का निश्चय किया क्योंकि वे हमारे अहिंसक आन्दोलन से प्रभावित थे।"[141] इस सन्दर्भ में भारत में रहे हाई कमिश्नर जान फ्रीमैन का कथन अधिक सच्चाई के निकट है कि भारत की स्वतन्त्रता के लिये क्रांतिकारी संघर्ष को कम करके बतलाना, भ्रामक तथा झूठ था, जिन्होंने अंग्रेजों को भारत से समय से पूर्व हटने के लिये बाध्य किया।[142] आर्थर कोइस्लेर का कथन तो है कि 'गांधी के बिना देश काफी पहले स्वतन्त्र हो गया होता।'[143]

सविनय अवज्ञा आन्दोलन

साइमन कमीशन के जाने तथा भारतीयों द्वारा नेहरू रिपोर्ट तैयार करने से देश में पुनः राजनीतिक सरगर्मियां हुईं। कांग्रेस ने अपनी मांग डोमिनियन स्टेट्स को रखा तथा इसकी अंतिम तिथि पहले 31 दिसम्बर 1930 की दी, परन्तु भारी दबाव के कारण उसे 31 दिसम्बर 1929 करना पड़ा। बातचीत का दौर पुनः शुरू हुआ। 1929 ई० के कांग्रेस अधिवेशन से दो महीने पहले अर्थात् 31 अक्टूबर 1929 को भारत के वायसराय लार्ड इरविन ने यह घोषणा की, "महामहिम सरकार की तरफ से यह स्पष्ट करने का मुझे अधिकार दिया गया है कि उनके विचारानुसार 1917 ई० की घोषणा (20 अगस्त 1917, मान्टेग्यू घोषणा) में यह निहित है कि भारत की संवैधानिक प्रगति का स्वाभाविक प्रश्न जैसा उसमें दिया गया है डोमिनियन स्टेट्स की प्राप्ती है।"[144] इसके साथ ही उसने गोलमेज कांफ्रेंस, जिसमें ब्रिटिश तथा भारतीय होंगे, करने का एक मुद्दा भी जोड़ दिया, जिसने एक चिंगारी का काम किया तथा भारत में उत्तेजना बढ़ी।[145]

इसी राजनीतिक गर्म वातावरण में दिसम्बर 1929 में कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन हुआ। लाजपतराय की मृत्यु हो गई थी तथा उनके प्रति भावना व्यक्त करने के लिए अधिवेशन के स्थान को लाजपतराय नगर कहा गया। कांग्रेस के नियमानुसार प्रांतीय चुनावों के आधार पर दस स्थानों में से पांच गांधी जी को, तीन वल्लभ भाई पटेल को तथा दो स्थान पं० जवाहरलाल नेहरू को मिले थे।[146] परन्तु गांधी जी के कहने पर यह स्थान नेहरू जी को दिया गया। कांग्रेस जनमत के विपरीत गांधी जी का यह निर्णय एक परिवर्तनकारी मोड़ था। इसे जहां युवा नेहरू को पिछले

द्वार से कांग्रेस राजनीतिक के सर्वोच्च पद पर लाकर खड़ा किया, वहां जनमत के दूसरे स्थान पर आये पटेल को पीछे ढ़केल दिया और तभी से नेहरू तथा पटेल में वैचारिक वैमनस्य भी प्रारम्भ हुआ। गांधी जी ने पं० नेहरू को तार द्वारा इसे पुराने भारत का, युवा भारत के द्वारा छुटकारा बतलाया।[147] (Older India relieved by younger India)।

उक्त अधिवेशन को लाहौर में करने में बड़ी कठिनाई आई। डा० गोपीचन्द भार्गव ने जो वहां की व्यवस्था में प्रमुख थे, लिखा, "साम्प्रदायिकता पंजाब में अभी पर्याप्त है, दमन पूरे जोरों पर है तथा हम बंटे हुए हैं।"[148] आंतरिक मतभेदों के कारण भी संगठन कमजोर हो रहा था।[149] अतः अधिवेशन को सफल बनाने के लिए राष्ट्रीय समाचार पत्रों - 'द ट्रिब्यून' तथा 'द पीपुल' द्वारा विशेष अपीलें निकाली गईं। यहां तक कि स्थान प्राप्ती के लिये बड़ी कठिनाईयां आईं थीं।[150] पं० नेहरू के नेतृत्व में पहली बार पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ती, कांग्रेस का लक्ष्य बतलाया गया। उन्होंने स्वतन्त्रता का अर्थ ब्रिटिश प्रभुत्व तथा ब्रिटिश से पूर्ण मुक्ति बतलाया।[151] इसके साथ अधिवेशन में सभी कांग्रेसियों को केन्द्रीय तथा प्रांतीय कौंसिलों से त्यागपत्र देने तथा भविष्य में चुनाव न लड़ने को कहा। आगामी पहली गोलमेज कांफ्रेंस में न भाग लेने को कहा। एक प्रस्ताव द्वारा 23 दिसम्बर 1929 को दिल्ली के निकट वायसराय की गाड़ी के नीचे बम्ब रखने पर सहानुभूति प्रकट की गई जिसका राष्ट्रवादी प्रतिनिधियों ने विरोध किया परन्तु यह केवल 84 के बहुमत से पारित किया गया।[152] इसके साथ स्वराज्य के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन में वायसराय के प्रयत्नों की सराहना का भी प्रस्ताव 180 मतों के बहुमत से पारित हुआ।[153] अधिवेशन में कांग्रेस ने यह अपील भी की कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन के कार्यक्रम के लिए वे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को अधिकार की स्वीकृति दे।

1930 ई० वर्ष का प्रारम्भ राजनैतिक असंतोष और विपदाओं में हुआ। आर्थिक मंदी ने कृषकों और मजदूरों की अवस्था खराब कर दी थी। साथ ही इससे पूर्व (1928 ई०) सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में बारडोली (सूरत जिला) के सफल आन्दोलन से किसानों में जागृति ला दी थी। विभिन्न मिलों में हुई हड़तालों से मजदूरों में चेतना आई थी। मेरठ षडयन्त्र केस में अनेक व्यक्तियों को राजद्रोह के अपराध में जो सजायें दी गई, उससे भी नवयुवकों में जागृति आई थी। ब्रिटिश सरकार की उपेक्षा तथा कांग्रेस के पूर्ण स्वराज्य की घोषणा ने देशव्यापी बेचैनी बढ़ा दी थी।

26 जनवरी को सारे देश में स्वाधीनता दिवस मनाया गया। 14-16 फरवरी 1930 में साबरमती में एक बैठक में गांधी जी ने 2 मार्च 1930 को वायसराय को एक पत्र लिखकर

समझौते का यत्न किया, जो सन्तोषजनक न था। गांधी जी ने नमक कानून तोड़कर इस आन्दोलन को शुरू करने का विचार किया। 12 मार्च को गांधी जी 78 सहयोगियों के साथ 200 मील की पदयात्रा कर 5 अप्रैल को दांडी पहुंचे और 6 अप्रैल को समुद्र के किनारे उन्होंने नमक कानून तोड़कर देशव्यापी आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। गांधी जी ने 9 अप्रैल को आन्दोलन का कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसमें गांव-गांव में गैर कानूनी नमक बनाने, महिलाओं द्वारा शराब की दुकानों, अफीम के ठेकों और विदेशी कपड़ों की दुकानों पर धरना देने, विदेशी वस्त्रों को जलाने, तकली व चरखा कातने, छुआछूत से दूर रहने, विद्यार्थियों द्वारा स्कूलों और कालेजों का बहिष्कार करने और सरकारी नौकरियों से त्याग पत्र का आहवान किया। साथ ही सरकार को टैक्स न देने की बात की।

शीघ्र ही यह आन्दोलन तेजी से फैला। छात्रों, किसानों, मजदूरों एवं महिलाओं ने इसमें भाग लिया। महिलाओं ने शराब की दुकानों पर धरने दिये। किसानों ने कर देना बन्द कर दिया। विद्यार्थियों ने स्कूलों तथा कालेजों को छोड़ा। विदेशी कपड़ों के बहिष्कार से कई अंग्रेजी मिलें बन्द हो गईं।

6 मई 1930 को गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया। जून 1930 में कांग्रेस और उससे सम्बन्धित सभी संस्थाओं को गैर कानूनी घोषित कर दिया। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 60,000 तथा कांग्रेस के अनुसार 90,000 व्यक्ति पकड़े गये इसमें महिलायें तथा बच्चे भी थे।[154] इस संघर्ष में उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में खान अब्दुल गफ्फार खां ने बढ़चढ़ कर भाग लिया, जिन्हें 'फ्रंटियर गांधी' के नाम से पुकारा गया। जुलाई तक यह आन्दोलन पूर्णत: देशव्यापी हो गया। स्थान-स्थान पर मार्शल लॉ लागू कर दिया गया।

सरकार ने 12 नवम्बर 1930 को लंदन में गोलमेज सम्मेलन बुलाकर बातचीत का मार्ग अपनाया। परन्तु कांग्रेस के भाग न लेने से कोई हल न हुआ। स्वस्थ वातावरण बनाने की दृष्टि से 26 जनवरी 1931 को कांग्रेस तथा उससे सम्बन्धित संस्थाओं से प्रतिबन्ध हटा लिया गया। गांधी जी को जेल से छोड़ दिया गया। 4 मार्च 1931 को गांधी-इरविन पैक्ट हुआ। गांधी जी ने 1922 ई० की भांति आन्दोलन को स्थगित कर दिया तथा दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेना स्वीकार किया। देश के अधिकतर नेताओं ने आन्दोलन स्थगित करने को पसन्द न किया। इससे एक भी मांग पूरी न हुई थी। न ही नमक पर से कानून हटा। आंध्र, पंजाब तथा बंगाल की प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों ने गांधी-इरविन पैक्ट की पुष्टि भी नहीं की।[155] परन्तु मार्च 1931 के करांची अधिवेशन में इसे मान लिया गया।[156]

17 अप्रैल को लार्ड इरविन भारत से चला गया तथा नया वायसराय वेलिंग्टन भारत आया। सरकारी दमन चक्र अब भी चलता रहा। 12 सितम्बर को गांधी जी दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने लन्दन पहुंचे। परन्तु स्वराज्य तथा साम्प्रदायिकता के प्रश्न पर कोई समझौता न हुआ। गांधी जी निराश लौटे।

3 जनवरी 1932 को पुन: सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। गांधी जी, नेहरू, गफ्फार खां व सरदार पटेल गिरफ्तार कर लिये गये। कांग्रेस को पुन: गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। आन्दोलन को बुरी तरह कुचला गया। इसी बीच ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री मेकडोनल्ड ने 16 अगस्त 1932 को एक घोषणा की जिसे मेकडोनल्ड निर्णय या साम्प्रदायिक पंचाट भी कहते हैं। इसके अनुसार दलितों को हिन्दुओं से अलग मानकर उन्हें अलग प्रतिनिधित्व देने को कहा गया। गांधी जी ने इसका विरोध किया तथा जेल में ही आमरण अनशन कर दिया। बाद में इसमें संशोधन कर पूना पैक्ट तैयार किया गया।

तीसरा गोलमेज सम्मेलन 17 नवम्बर से 24 दिसम्बर 1932 तक चला। इसमें भी कांग्रेस ने भाग नहीं लिया। मार्च 1933 ई० में ब्रिटिश सरकार ने एक श्वेत पत्र तैयार किया जो 1935 ई० के ऐक्ट का आधार बना।

गांधी जी के नेतृत्व में यह दूसरा बड़ा महत्त्वपूर्ण आन्दोलन था। अप्रैल 1933 के कलकत्ता अधिवेशन में सत्याग्रहियों की संख्या 1,20,000 बतलाई गई। इस आन्दोलन में विद्यार्थियों, मजदूरों, महिलाओं सभी ने भाग लिया था। पर यह आन्दोलन भी सफल न हुआ। बीच-बीच में आन्दोलन स्थगित करने से बड़ी हानि हुई। कांग्रेस ने कोई सामाजिक और आर्थिक प्रोग्राम नहीं दिया। परिणामस्वरूप शीघ्र ही 'कांग्रेस समाजवादी पार्टी' की स्थापना हुई। किसानों को कोई राहत न मिली। देश में असमंजस की स्थिति हो गई। सुभाष चन्द्र बोस ने आस्टिया से एक वक्तव्य दिया तथा आन्दोलन को स्थगित करने को गांधी जी की 'असफलता की स्वीकृति' कहा तथा कांग्रेस के पुनर्गठन की मांग की।[157]

द्वितीय महायुद्ध तथा व्यक्तिगत सत्याग्रह

सविनय अवज्ञा आन्दोलन की असफलता से कांग्रेस की प्रगति में कुछ देर के लिए ठहराव की स्थिति पुन: आई। इसी काल में 1935 में भारत सरकार ने महत्त्वपूर्ण अधिनियम पारित किया। यह बड़ा विस्तृत था जिसमें 451 धाराएं थीं। इसमें प्रांतों में तथा केन्द्र में कुछ अधिकारों को बढ़ावा दिया गया पर साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति में कोई परिवर्तन न किया गया। सुधारों में

इसकी एक मुख्य विशेषता प्रांतों में स्वायत्तता की स्थापना करना था। इसका चहुंओर विरोध हुआ। प्राय: सभी भारतीयों ने इसे अस्वीकृत कर दिया। सर्वाधिक आलोचना इसके संघीय भाग की हुई, जो लागू करने से पहले स्थगित कर दिया गया।

उपरोक्त संविधान के अन्तर्गत प्रांत में स्वायत्तता स्थापित कर, द्वैत शासन प्रणाली को समाप्त कर दिया गया। प्रांतीय कार्यपालिका का प्रमुख गवर्नर होता था तथा उसे मंत्रियों से सलाह करके चलने को कहा गया। परन्तु यह व्यवस्था व्यवहार में सार्थक न थी। वस्तुत: इस व्यवस्था में भी गवर्नर को विशेषाधिकार प्राप्त थे। अनेक दोषों के होते हुए भी कांग्रेस ने इसे स्वीकार किया तथा आगामी चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया। परन्तु इस संविधान की कटु आलोचना की गई। पंडित नेहरू ने इसे 'दासता का घोषणा पत्र' कहा। इसके अनुसार जनवरी 1937 में चुनाव हुए। इस चुनाव में अधिनियम के अनुसार भारत के 13 प्रतिशत से भी कम मतदाता थे। चुनाव में कांग्रेस को शानदार सफलता मिली। मुस्लिम लीग बुरी तरह हारी। लार्ड लिनलिथगो के परस्पर सहयोग के आश्वासन के पश्चात कांग्रेस ने 7 जुलाई 1937 को 7 प्रांतों में मन्त्री मंडल पद-ग्रहण किये। इसी काल में मार्च 1936 तथा दिसम्बर 1936 में क्रमश: लखनऊ तथा फैजपुर में कांग्रेस के अधिवेशन हुए। पं० नेहरू के 'समाजवाद' की कल्पना से न गांधी जी प्रसन्न हुए और न ही सरदार पटेल व अन्य प्रमुख नेता।

सुभाषचन्द्र बोस देश के लिए सम्पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग करने वाले प्रथम व्यक्तियों में से थे। 1938 ई० में वे हरिपुर कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये थे। परन्तु क्रांतिकारी विचारों के कारण उन्हें गांधी जी का प्रभुत्व अथवा 'सुपर-अध्यक्ष' की स्थिति मंजूर न थी। वे चाहते थे कि कांग्रेस को आजादी प्राप्ती की एक निश्चित तारीख तय कर देनी चाहिए। वे अगले वर्ष पुन: कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए खड़े हुए। उनके मुकाबले में गांधी जी ने एक दूसरा व्यक्ति पट्टाभि सीतारम्मैया को खड़ा कर दिया। पर वह हार गया। वस्तुत: कांग्रेस की राजनीति में यह गांधी जी की पहली पराजय थी। सुभाष बोस त्रिपुरी अधिवेशन में पुन: अध्यक्ष बने, पर गांधीवादी लोगों के असहयोग तथा तीखी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप उन्हें कांग्रेस का पद छोड़ना पड़ा।

1 सितम्बर 1939 को दूसरे महायुद्ध की घोषणा की गई। ब्रिटिश सरकार ने बिना भारतीयों की सलाह किये भारत को भी युद्ध में झोंक दिया। इस पर कांग्रेस ने तीव्र विरोध किया। द्वितीय महायुद्ध के दौरान भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने पहले 8 अगस्त 1940 को एक घोषणा की, जो 'अगस्त प्रस्ताव' कहलाया। सामान्यत: इस बारे में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता एकमत न थे। वर्धा की बैठक (9-17 सितम्बर 1939) में गांधी जी ने मित्र

राष्ट्रों के प्रति अपनी सहानुभूति जताई। इसके विपरीत सुभाष बोस का कथन था कि युद्ध साम्राज्यवादी है अत: किसी भी पक्ष का साथ न दें, पर परिस्थितियों का लाभ उठाकर स्वाधीनता के लिये एक जन आंदोलन करने की बात की। परन्तु नेहरू ने कहा कि ब्रिटिश सरकार अपने महायुद्ध में भाग लेने का उद्देश्य बताये। यदि प्रजातन्त्र है तो भारत की भी इसमें रूचि है।[159] उन्होंने एक मैनीफेस्टो भी तैयार किया। डा० राजेन्द्र प्रसाद व सरदार पटेल ने बिना शर्त सहयोग देने की बात कही। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने नेहरू जी की बात स्वीकार की। 26 सितम्बर 1939 को गांधी जी ने वायसराय से भेंट की। 10 अक्टूबर 1939 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने तय किया कि भारत के लिए युद्ध तथा शांति के बारे में स्पष्टीकरण के बिना अपना निर्णय नहीं लेना चाहिए।[160] वायसराय के असन्तोषजनक उत्तर आने पर मंत्रियों को त्यागपत्र देने को कहा तथा भावी नीति, नियन्त्रण तथा व्यवस्था के लिए गांधी जी को अधिकार दिये गये।[161] कांग्रेस मन्त्री मण्डल से त्यागपत्र की घटना से मुस्लिम लीग ने 22 दिसम्बर 1939 को 'मुक्ति दिवस' मनाया।

आन्दोलन का स्वरूप क्या हो? इस बारे में मतभेद था। सुभाष चन्द्र बोस, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता जन आन्दोलन चाहते थे। परन्तु गांधी जी इसके लिए तैयार न थे। अब उन्हें लगता था कि देश में ब्रिटिश विरोधी वातावरण नहीं है, कम्युनिस्टों से सहायता के प्रति शंका थी तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता भी न थी।[162]

मार्च 1940 में कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया गया कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों के लिए युद्ध में है तथा अपने साम्राज्य को मजबूत बनाना चाहता है। अत: कांग्रेस प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से युद्ध में भागीदार न होगी।[163] गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह की घोषणा की तथा इसे 'आखिरी सत्याग्रह' कहा।[164] व्यक्तिगत सत्याग्रह स्वरूप में सीमित, प्रतीकात्मक और अहिंसावादी था। इसमें सत्याग्रही का चुनाव गांधी जी पर छोड़ दिया गया। 17 अक्टूबर 1940 से यह प्रारम्भ हुआ। विनोबा भावे पहले सत्याग्रही थे तथा उन्हें तीन महीने की सजा दी गई। जवाहरलाल नेहरू दूसरे सत्याग्रही थे जिन्हें चार महीने की सजा हुई। तीसरे सत्याग्रही ब्रहमदत्त थे। उन्हें 6 महीने की सजा दी गई। इस सत्याग्रह में सरदार पटेल, प्यारेलाल, मौलाना अबुल कलाम आजाद भी गये। जनवरी 1941 तक सरकारी आंकडे के अनुसार 635 व्यक्ति पकड़े गये।[165] एक अन्दाजे के अनुसार जून तक कुल 20,000 व्यक्ति पकड़े गये थे।

व्यक्तिगत सत्याग्रह असफल रहा। आन्दोलन आवश्यक चेतना न जगा सका। प्रसिद्ध लेखक माइकेल ब्रीचर ने इसे असफल माना है। इतिहासकार सुमित सरकार का कथन है कि यह

सत्याग्रह गांधी जी द्वारा चलाये गये अभियानों में सबसे कमजोर तथा सबसे कम प्रभावी था।[166] सरकारी अधिकारियों के अनुसार यह "कुछ भागों में लड़खड़ा रहा था, दूसरे भाग में मृत्यु के निकट था तथा पुन: अन्य भागों में मर चुका था।[167]

वस्तुत: गांधी जी युद्ध में कोई बाधा नहीं चाहते थे। यह केवल एक 'प्रतीकात्मक विरोध' था। स्वाभाविक है कि यह प्रभावहीन था। यह एक पूर्णत: असफल सत्याग्रह था।

द्वितीय महायुद्ध की स्थिति बिगड़ती गई। विशेषकर भारत पर जापान का आक्रमण का ड़र बढ़ गया। दूसरे ओर युद्ध में भाग लेने के सन्दर्भ में कांग्रेस में भी विवाद बढ़ता गया। गांधी जी ने नेतृत्व से अलग होने का विचार किया तथा इसी स्वीकृति वर्धा 15 जनवरी 1942 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने दे दी। व्यक्तिगत सत्याग्रह की असफलता से भी सरकार का रूख कड़ा होता गया था। सरकार स्वेच्छाधारी शासन की भांति कार्य कर रही थी।[168] परन्तु जैसे-जैसे युद्ध बढ़ता गया सरकार को नरमी का रूख अपनाना पड़ा। वायसराय ने जुलाई 1941 में अपनी कार्यकारिणी समिति का विस्तार किया और पांच भारतीयों को इसमें लिया। युद्ध की बिगड़ती हुई अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में अमेरिका तथा चीन जैसे मित्र राष्ट्रों ने भारत के प्रति सहानुभूतिपूर्वक रवैये के लिये दबाव ड़ाला। दिसम्बर 1941 में अमेरिका के प्रेजीडेन्ट रूजवेल्ट ने वाशिंगटन में चर्चिल से बात की और भारत में सुधारों के लिए आग्रह किया। 2 जनवरी 1942 को भारत के उदारवादी नेताओं तेज बहादुर सप्रू व जयकर ने चर्चिल को तार भेजकर भारत के संवैधानिक ढ़ांचे में बदल का आग्रह किया। पर चर्चिल ने इस ओर ध्यान न दिया। चीनी गणतन्त्र का अध्यक्ष च्यांगकाई शेक बढ़ते हुए जापान के आक्रमण से परेशान था। जापान ने शंघाई व हांगकांग पर बम्ब वर्षा की थी तथा फिलीपाईन, मलाया तथा ब्रह्मा पर आक्रमण कर दिया। अत: वह 8 फरवरी को भारत आया। सरकारी अधिकारियों के साथ गांधी जी, पं० नेहरू व मौलाना आजाद से मिला। उसने ब्रिटेन से तुरन्त भारत को राजनैतिक शक्ति देने की बात की। उसने चर्चिल व रूजवेल्ट को पत्र लिखे।

फरवरी 1942 में सिंगापुर का पतन और ब्रह्मा में अत्याधिक खतरा बढ़ गया। अत: ब्रिटिश केबिनेट ने विचार किया। चर्चिल की इच्छा के विपरीत सर स्ट्रेफोर्ड क्रिप्स को भारत भेजा। जो 23 मार्च 1942 को दिल्ली पहुंच गया। एक सप्ताह में ही तैयार करके उसने एक प्रारूप घोषणा के लिये तैयार किया जिसमें उसने युद्ध के बाद भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की बात कही परन्तु युद्ध के दिनों रक्षा की जिम्मेदारी ब्रिटिश सरकार की मानी गई, साथ ही युद्ध के दिनों में किसी प्रकार के संवैधानिक परिवर्तन की बात से इंकार किया।

देश के सभी प्रमुख दलों ने क्रिप्स के सुझावों को अस्वीकृत कर दिया। कांग्रेस युद्ध के दिनों में भारतीयों को कोई प्रभावशाली भूमिका न देने से नाराज थी। 7 अप्रैल 1942 को कांग्रेस कमेटी की बैठक ने क्रिप्स के सुझावों को अस्वीकार करने का फैसला लिया। पं० नेहरू ने कहा कि क्रिप्स के सुझावों में सभी अस्पष्ट हैं, सिवाय इसके कि भारत की सुरक्षा का उत्तरदायित्व ब्रिटेन का होगा।[169] गांधी जी ने इन सुझावों को 'एक पोस्ट डेटेड चैक' कहा। 12 अप्रैल को क्रिप्स वापिस लन्दन चला गया। क्रिप्स मिशन की असफलता से सबसे ज्यादा प्रसन्न चर्चिल था तथा वह मस्त होकर अपनी मेज के चारों ओर नाचने लगा। क्रिप्स ने भारतीय समस्या का कोई हल प्रस्तुत नहीं किया, परन्तु मांटेग्यू घोषणा (1917 ई०) की भांति उसने भी द्वितीय महायुद्ध में भारतीय राजनीतिज्ञों का मस्तिष्क उलझाये रखने की कोशिश की। क्रिप्स ने अपनी असफलता का दोष भी कांग्रेस पर लगाया।

क्रिप्स मिशन की असफलता, आर्थिक दुरावस्था, दक्षिण-पूर्वी ऐशिया में जापान द्वारा सैनिक कार्यों तथा भारत पर आक्रमण के भय से गांधी जी के दृष्टिकोण द्वारा सैनिक कार्यों तथा भारत पर आक्रमण के भय से गांधी जी के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। लुई फिशर ने जब गांधी जी से पूछा[170] कि आपको 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का विचार कैसे आया तो उन्होंने बतलाया कि क्रिप्स के जाने के बाद अगले सोमवार को जब मौन दिवस पर बैठे, तो उनके मन में यह विचार आया। 26 अप्रैल 1942 में अपने एक लेख में उन्होंने अंग्रेजों का आहवान किया कि वे व्यवस्थित रूप से और समयानुसार भारत छोड़ दें। उन्होंने 24 मई को एक लेख में अंग्रेजों को भारत के भरोसे छोड़ देने को कहा। गांधी जी को यह लगता था कि अंग्रेजों के भारत से हटते ही एक काम चलाऊ सरकार की स्थापना की जा सकेगी और हिन्दू-मुस्लिम समस्या भी हल होगी। यहां यह उल्लेखनीय है कि कांग्रेस के प्रमुख नेता गांधी जी के 'भारत छोड़ो' विचार से सहमत न थे।

संयुक्त प्रांत के तत्कालीन गवर्नर सर हैलिट ने लार्ड लिनलिगो को 31 मई 1942 को भेजे अपने गुप्त सन्देश में इलाहाबाद में हुई कांग्रेस कार्य समिति की बैठक का विवरण दिया जिसमें भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव पास हुआ था। इससे ज्ञात होता है कि पं० नेहरू, राजगोपालाचारी, सरोजनी नायडू और भोलाभाई देसाई उस आन्दोलन के पक्ष में न थे जबकि डा० राजेन्द्र प्रसाद, कृपलानी व पटेल, गांधी जी के साथ थे।[171] जवाहरलाल नेहरू व मौलाना आजाद की अपनी रूकावटें थीं।[172] गांधी जी की जवाहरलाल नेहरू व मौलाना आजाद के साथ कटुता भी बढ़ गई थी। गांधी जी ने अपने एक पत्र में पं० नेहरू व मौलाना आजाद को कार्यसमिति

व अध्यक्षता से त्यागपत्र देने के लिए भी कह ड़ाला था।[173] परन्तु गांधी जी ने उन दोनों को मना लिया था।[174] बाद में 8 अगस्त 1942 का प्रस्ताव नेहरू द्वारा ही रखवाया गया था। राजगोपालाचारी प्रारम्भ से ही भारत छोड़ो आन्दोलन के विरोधी थे।[175] वास्तव में वह व्यक्तिगत रूप से बहुत महत्वाकांक्षी थे तथा 1937 ई० में मद्रास में कांग्रेस मन्त्री मण्डल के प्रधानमन्त्री (मुख्य मन्त्री) रह चुके थे तथा बाद में उन्होंने 1942 ई० के आन्दोलन की कटु आलोचना भी की थी।[176] गोविन्द वल्लभ पंत किसी भी प्रस्ताव के विरोध में थे।[177] सैयद महमूद तथा आसफ अली भी प्रस्ताव के पक्ष में न थे। अत: यह कहा जा सकता है कि कांग्रेस के अधिकतर महत्पूर्ण कांग्रेस नेता आन्दोलन के पक्ष में न थे और उन्होंने अधूरे मन से आन्दोलन में भाग लिया था।

14 जुलाई को वर्धा में कांग्रेस समिति ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का एक मत से प्रस्ताव पास किया। मद्रास के कुछ अन्य नेता के० सन्थानम, टी०एन० राजन व एस० रामनाथम इसके पास होने से असन्तुष्ट थे। 7-8 अगस्त 1942 में बम्बई में भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में इस पर पुनर्विचार हुआ। गांधी जी ने अपने प्रस्ताव में अंग्रेजों से भारत छोड़ने को कहा और मांग स्वीकार न होने पर आन्दोलन करने की धमकी दी। उन्होंने भारतीयों को 'करो या मरो' का नारा दिया।

1930 ई० के आन्दोलन की भांति इस आन्दोलन के कार्यक्रमों की कोई स्पष्ट या निश्चित योजना न थी। 'हरिजन' के अंक में कुछ बातें छपीं थीं।[179] जिन्हें इसका कार्यक्रम कहा जा सकता है। 12 सूत्रीय कार्यक्रमों की एक छोटी सी पुष्टि कांग्रेस द्वारा प्रसारित की गई थी। पर 11 अगस्त 1942 को सरकार द्वारा यह जब्त कर ली गई थी। इसमें शांतिपूर्ण हड़ताल, सार्वजनिक सभाओं, नमक बनाने और भूमिकर न देने की बात कही गई थी।

गांधी जी को आशा थी कि संभवत: कोई सरकार से वार्ता होगी। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने प्रारम्भ से ही कठोर कदम उठाये। 8-9 अगस्त 1942 को कांग्रेस के प्राय: सभी प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिये, क्योंकि अधिकतर नेता बम्बई में ही थे। गांधी जी को प्रात: चार बजे गिरफ्तार कर लिया गया। ब्रिटिश सरकार ने सतर्कता रखी तथा किसी भी नेता को विचार विनिमय का अवसर जानबूझकर नहीं दिया। सरकारी अधिकारियों के अनुसार यदि मौका दिया जाता तो सरकारी कार्यवाही का मन्तव्य ही नष्ट हो जाता।[180] नेताओं को भारत के 1908 ई० के फौजदारी संशोधित नियम के अन्तर्गत गिरफ्तार किया गया।[181] सरकार की इस दमनकारी कार्यवाही से भारतीय जनमानस असमंजस में हो गया। उन्हें काफी देर तक पता ही न चला कि उनके नेता उनसे क्यों अलग कर दिये गये। गांधी जी को पूना में और पं० जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल

कलाम आजाद, डा० पट्टाभि सीतारमैया, गोविन्द वल्लभ पंत, डा० प्रफुल्ल चन्द्र घोष, आसफ अली, डा० सैयद अहमद व आचार्य कृपलानी को अहमदनगर के किले में कैद रखा गया। डा० राजेन्द्र प्रसाद को पटना में ही नजरबन्द कर दिया गया। कांग्रेस संगठन को अवैध घोषित कर दिया। सैंकड़ों नेताओं की गिरफ्तारी से जनता नेतृत्वहीन तथा दिशाहीन हो गई। नेतृत्व का उत्तरदायित्व उन लोगों पर आया जो गिरफ्तारी से बच गये थे, उस दिन अर्थात् कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की कार्यकारिणी की बैठक भी हो रही थी। इसमें प्रमुख राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, रामानन्द मिश्र और एस०एम० जोशी थे। कांग्रेस कार्यकारिणी के अधिकारी जिसमें सुचेता कृपलानी और सादिक अली थे, उन्होंने भी ऐसी ही योजना बनाई। इस आन्दोलन में जयप्रकाश नारायण की मुख्य भूमिका रही। अनेक विद्यार्थियों ने स्कूलों तथा कालेजों को छोड़कर आन्दोलन का संचालन किया। भारत के विभिन्न स्थानों पर कांग्रेस के सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं ने गति प्रदान की। उदाहरणत: गुजरात में छोटे भाई पुराणी (1885-1950 ई०) और बी०के० मजूमदार (1902-1981), यूनाईटेड प्रोविंसिस (यू.पी.) में रामलोचन तिवारी, झारखण्ड राय, सम्पूर्णानन्द, के०डी० मालवीय, नन्द किशोर वशिष्ठ, महाराष्ट्र में नाना पाटिल आदि। इसके साथ ही इसमें नवयुवकों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। उत्तर भारत में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पटना विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ और दक्षिण में अन्नामलई विश्वविद्यालय के छात्रों की भूमिका अद्वितीय थी।

'भारत छोड़ो' आन्दोलन को चार भागों में बांट सकते हैं। पहला भाग 9 अगस्त से 11 अगस्त का कहा जा सकता है, इसमें नगरों, कस्बों में हड़तालें, प्रदर्शन और सभायें हुईं। दिनांक 9 अगस्त को ट्रेनों पर पथराव, सोड़े की बोतलें फेंकना, बसें जलाना, मिलों व फैक्ट्रियों में भी मजदूरों की हड़तालें हुइ[ए]। परन्तु मजदूर रैडिकल डेमोक्रेटिक या जो कम्युनिस्टों के प्रभाव में थे, वे ब्रिटिश शासन के प्रति वफादार रहे। सरकार ने रेलवे मजदूरों के महंगाई भत्ते बढ़ाने की घोषणा की, जिससे सरकार का खर्च 2 लाख रूपये की जगह 5 लाख रूपये हो गया। इस दिन 16 स्थानों पर पुलिस द्वारा गोलियां चलाई गईं जिसमें 8 व्यक्ति मारे गये तथा 44 घायल हुए। अगले दिन भी उत्तेजित भीड़ पर 26 स्थानों पर गोलियां चलाई गईं, इसमें 16 व्यक्ति मारे गये व 57 घायल हुए। टेलीफोन व तारघरों को नुक्सान पहुंचाया गया।[182] 11 तारीख को केरा, भडौंच, सूरत, अहमदाबाद, नासिक, सतारा, बेलगांव, धारवाड, रत्नागिरी, शोलापुर, बीजापुर, कोलाबा में दंगे हुए।

दूसरे भाग में यह आन्दोलन गांवों तक जा पहुंचा। सरकार ने कठोरता से दमन किया। सरकारी भवनों, म्युनिसिपल इमारतों, रेलवे स्टेशनों, पुलिस थानों, डाकघरों तथा रेलगाड़ियों पर

आक्रमण हुए। यूनाईटेड प्रोविंसिस के कुछ भागों में अस्थाई सरकारें भी स्थापित की गईं। सरकारी न्यायालयों तथा जेलों पर भी हमले हुए। परन्तु उल्लेखनीय है कि कहीं भी किसी यूरपीयन पर हमला न हुआ।

तीसरे भाग में 23 सितम्बर 1942 से फरवरी 1943 तक सशस्त्र भीड़ द्वारा आक्रमण किये गये। बंगाल और मद्रास में सरकारी भवन पर आक्रमण हुए। बम्बई और यूनाईटेड प्रोविंसिस में कई स्थानों पर बम्ब फेंके गये। सरकार ने आन्दोलन का क्रूरतापूर्वक दमन किया।

चौथे भाग में, फरवरी 1943 से 9 मई 1944 तक का काल आता है। जबकि गांधी जी को जेल से छोड़ दिया गया। इन दिनों अनेक जुलूसों, प्रदर्शनों का आयोजन हुआ। राष्ट्रीय नेताओं की जयंतियां तथा राष्ट्रीय सप्ताह मनाये गये।

इस आन्दोलन में सर्वाधिक भूमिका विद्यार्थियों की थी। मुसलमान सामान्यत: इस आन्दोलन से अलग रहा। समाज का उच्च वर्ग अथवा उपाधि प्राप्त वर्ग सरकार के साथ रहा। मजदूर वर्ग विभाजित रहा। नौकरशाही राजभक्त रही। निम्न मध्यम वर्ग ने इस आन्दोलन में सक्रिय योगदान दिया। प्रो० अम्बा प्रसाद ने इसे एक 'विद्यार्थी-किसान मध्यम वर्गीय विद्रोह' कहा है।

यह आन्दोलन ब्रिटिश सरकार के लिए भयंकर था। इसमें सरकार ने 538 बार गोलियां चलाईं। इसमें 60,229 व्यक्तियों को जेल में रखा गया। सेना ने 6 बार मशीनगनें चलाईं। इसमें कम से कम 7000 व्यक्ति मारे गये।

इस आन्दोलन में विभिन्न पार्टियों की भूमिका एक सी नहीं रही। इसमें सर्वाधिक आपत्तिजनक तथा देशद्रोहिता पूर्ण भूमिका भारतीय कम्युनिस्टों की रही। उन्होंने आन्दोलन के विरूद्ध तथा ब्रिटिश सरकार के समर्थन में कार्य किया। वस्तुत: उन्होंने ब्रिटिश सरकार के एजेन्ट या गुप्तचरों का कार्य किया तथा अपने देश के हितों के विरूद्ध कार्य किया।[183] कम्युनिस्ट पार्टी की पोलिट ब्यूरो तथा भारत सरकार के गृह विभाग के सचिव में समझौता हुआ जिसमें पी०सी० जोशी को ब्रिटिश सरकार की सहायता के लिए छोड़ दिया गया।[184]

मुसलमानों के सरकारी समर्थन से पाकिस्तान की मांग बढ़ी। उन्होंने कहा वे कभी हिन्दुओं के अधीन नहीं रहेंगे। युद्ध जीतने से पहले उन्होंने पाकिस्तान की मांग की।[185] उन्होंने नारा दिया 'पहले पाकिस्तान बाद में आजादी'। हिन्दू महासभा के नेता डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने सरकार द्वारा हिंसा की कटु आलोचना की तथा इसके लिए सरकार को उत्तरदायी बतलाया। उन्होंने

कहा कि कोई भी देश को बांटने के प्रयत्न का पूरी शक्ति से विरोध, न केवल हिन्दू हित में बल्कि सम्पूर्ण भारत के हित में होगा।[186]

हिन्दू महासभा की कार्य समिति ने एक प्रस्ताव पारित कर कहा कि "भारत इस घोषणा से सन्तुष्ट नहीं है कि युद्ध के पश्चात स्वतन्त्रता दी जायेगी। हमें यह शक्ति यहीं और अभी दी जानी चाहिए।"[187] बी०एस० मुंजे, नन्दलाल चटर्जी, मेहरचन्द खन्ना, राजा महेश्वरी दयाल, वी०डी० सावरकर ने इन्हीं विचारों का समर्थन किया पर चर्चिल ने कोई ध्यान नहीं दिया।[188] डा० बी०आर० अम्बेडकर, जो दलितों के नेता तथा वायसराय कौंसिल के सदस्य भी थे, सरकारी नीति का समर्थन किया। उदारवादियों ने जन आंदोलन का विरोध किया। पारसियों ने इस आन्दोलन का समर्थन किया। जबकि ऐंग्लो इण्डियन समाज ने एंथोनी के नेतृत्व में इसका विरोध किया। सिक्ख समाज की भूमिका हिन्दू महासभा जैसी थी।

आन्दोलन असफल रहा। आन्दोलन की असफलता के कई कारण थे। इसके संगठन और कार्यक्रमों में कमियां, सरकारी राजभक्तों तथा कम्युनिस्टों की गद्दारी तथा सरकार की प्रारम्भ से ही कठोर दमनकारी नीति। उद्देश्य की दृष्टि से इस आन्दोलन की विस्तृत तैयारी, कार्यक्रमों की विभिन्न स्तरों पर जानकारी तथा योजनाएं न थीं। आन्दोलन में कोई निर्दिष्ट नेतृत्व न था और न कोई दिशा। इसके अलावा कांग्रेस कार्य समिति के नेताओं की आन्दोलन के प्रति तीव्र आस्था न थी। सैयद महमूद के अनुसार जो उन्होंने जेल से पत्र लिखे, ज्ञात होता है कि उनका मत था कि इस आन्दोलन की कभी स्वीकृति न मिली तथा यह गांधी जी की महान गलती थी।[189]

6 मई 1944 को गांधी जी को जेल से छोड़ दिया गया। उन्होंने राजनीतिक बाधाओं को दूर करने के लिए वायसराय से मिलना चाहा, परन्तु उसने मिलने से इंकार कर दिया। गांधी जी को देश का वातावरण भी बदला-बदला सा लगा। गांधी जी ने 1942 का आन्दोलन केवल शुरू किया था[190], पर वे न उसकी दिशा, और न ही उसके दूरगामी परिणाम से परिचित थे। अत: शीघ्र ही उन्होंने भी अपने आप को कांग्रेस में अपरिचित सा पाया।

अध्याय-चार

सन्दर्भ सूची

1. जे.के. मजूमदार : इंडियन स्पीचेज एण्ड डाक्यूमेन्ट्स आफ ब्रिटिश पालिसी (कलकत्ता, 1937), पृ. 186; सी.एफ. ऐन्ड्रूज व गिरिजा मुकर्जी, द राईज एण्ड ग्रोथ आफ द कांग्रेस (लन्दन, 1938), पृ. 242
2. होम (पालिटिकल बी) भारत सरकार की कार्यवाही, जुलाई 1919, नं. 69-70
3. इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल, कार्यवाही भाग तीन, अप्रैल 1918-मार्च 1919
4. वही
5. जी.एस. खापर्डे पेपर्स (डायरी) फाईल नं. 1, नं. 7-9, 10
6. एम.के. गांधी, द स्टोरी आफ माई एक्सपेरीमेन्ट विद टरूथ (अहमदाबाद, 1963), पृ. 278
7. वही, पृ. 280
8. जवाहरलाल नेहरू, ऐन आटोबायोग्रेफी (लन्दन, 1958), पृ. 40
9. रिपोर्ट आफ द कांग्रेस इन्क्वायरी सब-कमेटी, अध्याय तीन
10. चैम्सफोर्ड पेपर्स, भाग 22, पृ. 268 नं. 171, जिन्ना का पत्र लार्ड चैम्सफोर्ड को, मार्च 28, 1919
11. हरिसिंह, गांधी रौलट सत्याग्रह एण्ड ब्रिटिश इम्पीरियलिज्म (दिल्ली, 1990), पृ. 102
12. सर माइकेल ओडवायर, पूर्वोक्त, पृ. 269
13. बी.जी. होरनीमैन, अमृतसर एण्ड अवर ड्यूटी टू इण्डिया (लन्दन, 1920), पृ. 88
14. होम (पालिटिकल), भारत सरकार 1920 फाईल नं. 373
15. इयान कोलविन, द लाईफ आफ जनरल डायर (लन्दन, 1931), पृ. 161; एस.सी. मित्तल, फ्रीडम मूवमेन्ट इन पंजाब (1905-1929) (दिल्ली, 1976)
16. आर्थर स्वीनशन, सिक्स मिनिट्स टू सनसैट (लन्दन, 1964), पृ. 50
17. इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल, कार्यवाही, अप्रैल 1919-मार्च 1920 भाग LXVIII, 12 सितम्बर 1919, पृ. 303
18. रिपोर्ट आफ द कांग्रेस इन्क्वायरी सब-कमेटी, पृ. 53
19. इयान कोलविन, पूर्वोक्त, पृ. 176
20. वही, पृ. 176
21. होम (पालिटिकल डिपोजिट), भारत सरकार, सितम्बर 1919 नं. 23

22. वही
23. वही
24. इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल, कार्यवाही, अप्रैल 1919-मार्च 1920 भाग LXVIII, पृ. 148
25. इयान कोलविन, पूर्वोक्त, पृ. 175
26. विस्तार के लिए एस.सी. मित्तल, फ्रीडम मूवमेन्ट इन पंजाब (1905-1929 ई०), पृ. 129-135
27. रिपोर्ट आफ द डिस-आर्डर्स इन्कवायरी कमेटी (हण्टर कमेटी) (1920), पृ. 104
28. होम (पालिटिकल-ए), भारत सरकार, सितम्बर 1919, पृ. 108
29. वी.एन. दत्ता, अमृतसर, पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट (अमृतसर, 1967), पृ. 85-87; वी.एन. दत्ता, जलियांवाला बाग (लुधियाना, 1969)
30. रिपोर्ट आफ द डिसआर्डर्स इन्कवायरी कमेटी, पृ. 106; प्यारे मोहन, ऐन इमेजनरी रेबिलियन, हाउ इट वाज सप्रैसेड (लाहौर, 1920), सप्लीमेंटरी, पृ. 1-46
31. वी.एन. दत्ता, जलियांवाला बाग (लुधियाना, 1969), पृ. 169, निहाल सिंह, रूलिंग इण्डिया बाई बुलैट्स एण्ड बम्ब्स (लन्दन, 1920), पृ. 13
32. रूपर्ट फर्नीओक्स, मैस्साकर इन अमृतसर (लन्दन, 1963), पृ. 177
33. आर्थर स्वीनसन, पूर्वोक्त, पृ. 192-193
34. वी.एन. दत्ता, जलियांवाला बाग, पृ. 164; के.पी.एस. मेनन, सी. शैंकरण नैयर (दिल्ली, 1967), पृ. 103
35. पार्लियामेन्टरी डिबेट (हाउस आफ कामन्स), 1920 भाग CXXXI (सेशन 1920, भाग VII, 8 जुलाई 1920), पृ. 1733
36. होम (पालिटिक्स के.डब्ल्यू. ऐ) भारत सरकार कार्यकाल, जून 1920 नं. 126-164; मथमंथ नाथ गुप्त, राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, (आगरा, 1962), पृ. 354
37. पार्लियामेन्टरी डिबेट (हाउस आफ कामन्स) 1920, भाग CXXXI, (सेशन 1920, भाग , 11 जुलाई 1920), पृ. 1796
38. वही
39. देखें, होम (पालिटिकल डिपोजिट) भारत सरकार, जून 1919, फाइल नं. 5
40. पंजाब लेजिस्लेटिव कौंसिल, कार्यवाही 23 फरवरी 1921, 25 फरवरी 1921 (8 जनवरी-16 अप्रैल 1921, भाग एक), पृ. 66, 84, 85, 87
41. जवाहरलाल नेहरू, गिल्मपसेज आफ द वर्ल्ड हिस्ट्री (बम्बई, 1964), पृ. 739

42. जगदीश एस. शर्मा, इंडियन स्ट्रगल फार फ्रीडम, सलैक्टेड डाक्योमेन्ट्स एण्ड सोर्सेज, भाग दो (दिल्ली, 1962-1965), पृ. 383

43. माइकेल एडवर्डस, द लास्ट डेज आफ ब्रिटिश रूल इन इण्डिया (लन्दन, 1963), पृ. 49

44. जगदीश एस. शर्मा, पूर्वोक्त, भाग दो, पृ. 383

45. एम. चलपति राव, गांधी एण्ड नेहरू (जालन्धर, 1967), पृ. 94

46. लार्ड वेवरब्रुक, पालिटिशियन्स एण्ड द वार (1914-1916) (लन्दन, 1960), पृ. 7-8

47. मौलाना अबुल कलाम आजाद, इंडिया विन्स फ्रीडम (कलकत्ता, 1959), पृ. 7-8

48. हीरेन मुकर्जी, पूर्वोक्त, पृ. 137

49. होम (पालिटिकल) भारत सरकार, अगस्त 1920, नं. 110

50. होम (पालिटिकल) भारत सरकार, जनवरी 1920, नं. 5

51. होम (पालिटिकल) भारत सरकार, जनवरी 1920, नं. 44

52. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, भाग 16, पृ. 155

53. यंग इण्डिया, 20 सितम्बर, 1919

54. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, भाग 17, पृ. 64

55. डा. भीमराव अम्बेडकर, थाट्स आन पाकिस्तान (बम्बई, 1941)

56. डोन पैरेटेज, द मिडिल ईस्ट टूडे, पृ. 161-169; ऐ.एम. चिरगनीव, इस्लाम इन फरमेन्ट, कन्टमपरेरी रिव्यू, 1925

57. द पिपुल, 26 सितम्बर, 1925

58. बी.आर. अम्बेडकर, पाकिस्तान ओर पार्टीशन आफ इण्डिया (बम्बई, 1945), पृ. 178

59. होम विभाग, भारत सरकार, जनवरी 1920, फाईल नं. 45

60. पट्टाभि सीतारमैय्या, पूर्वोक्त, भाग एक, पृ. 180

61. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग XVI, पृ. 463

62. वही, पृ. 462; डी.जी. तेन्दुलकर, पूर्वोक्त, भाग एक, पृ. 276

63. होम (पालिटिकल डिपोजिट) भारत सरकार, जनवरी 1920, नं. 45

64. वही

65. वही

66. के.एम. मुन्शी, पिलग्रीमेज टू फ्रीडम (बम्बई, 1967), पृ. 16

67. एच.एन. दासगुप्ता, देशबन्धु चितरंजन दास (दिल्ली, 1965), पृ. 55

68. के.एम. मुन्शी, पूर्वोक्त, पृ. 16

69. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग XVII, पृ. 90

70. बी.आर. नन्दा, पं. मोतीलाल नेहरू (दिल्ली, 1969), पृ. 112

71. जवाहरलाल नेहरू, ऐन आटोबायोग्रेफी, पृ. 44

72. देखें, वी.एन. दत्ता, न्यू लाईट आन पंजाब डिस्टरबेन्सेज, 1972

73. होम (पालिटिकल डिपोजिट) जुलाई 1920, नं. 96

74. के.के. दत्त, फ्रीडम मूवमेन्ट इन बिहार (1857-1928), भाग एक (पटना, 1967), पृ. 300

75. होम (पालिटिकल डिपोजिट), जुलाई 1920, नं. 96

76. डी.जी. तेन्दुलकर, महात्मा (द लाईफ आफ मोहन दास कर्मचन्द गांधी), भाग दो, पृ. 10

77. पी.सी. घोष, महात्मा गांधी, ऐज आई शो हिम (दिल्ली, 1968), पृ. 88, 91

78. अलगूराय शास्त्री, ला. लाजपतराय (प्रयाग, 1957), पृ. 343; सी.डब्ल्यू.जी. भाग XVIII, पृ. 260

79. डी.जी. तेन्दुलकर, पूर्वोक्त, पृ. 1

80. वेलेंटाइन शिरोल, इण्डिया : ओल्ड एण्ड न्यू (लन्दन, 1921), पृ. 225

81. द ट्रिब्यून, 18.08.1921

82. वही, 14.01.1922

83. वही, 28.02.1922

84. डी.जी. तेन्दुलकर, भाग दो, पृ. 9

85. जवाहरलाल नेहरू, ऐन आटोबायोग्रेफी, पृ. 70, 87

86. ए.आई.सी.सी. पेपर्स, प्रेस कम्यूनिक, प्रेस मैसेज इंक्लूड्स टू ए.आर.सी.सी. एण्ड रिपोर्ट्स आफ द वर्क डन बाई द कांग्रेस इन पंजाब 1922

87. एडवर्ड थाम्पसन व जी.टी. गैरेट, द राइज एण्ड फुलफिलमैन्ट आफ द ब्रिटिश रूल इन इण्डिया (लन्दन, 1934), पृ. 614

88. रिपोर्ट आई.एन.सी. अहमदाबाद, 1921

89. वही

90. वही
91. वी.सी. जोशी (सम्पादित) स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स आफ लाजपतराय, भाग दो (दिल्ली, 1965), पृ. 137
92. बी.आर. नन्दा, पंडित मोतीलाल नेहरू (दिल्ली, 1966), पृ. 143
93. वही, पृ. 143
94. ऐ.आई.सी.सी. पेपर्स, प्रेस कम्यून, प्रेस मैसेज... पृ. 45
95. द ट्रिब्यून, 7.3.1922 (देखें, पंजाब के वित्त सदस्य सर जान मेनार्ड के विचार)
96. होम (पालिटिकल) 1924, फाईल नं. 6/17
97. वही
98. वी.सी. जोशी, लाला लाजपतराय, ऐ बायोग्रेफिकल एससे (दिल्ली, 1965), पृ. 46
99. सत्यदेव विधालंकार, जीवन संघर्ष (दिल्ली, 1964), पृ. 119
100. वियोगी हरि, हमारी परम्परा (नई दिल्ली, 1967), पृ. 540, 541
101. होम (पालिटिकल), भारत सरकार अप्रैल 1923; द ट्रिब्यून 15.4.1923, 11.5.1923 व 16.5.1923
102. द ट्रिब्यून 29.8.1923, साथ ही देखें, 4.8.1925, 15.8.1925
103. बी.आर. नन्दा, पं. मोतीलाल नेहरू, पृ. 147
104. वही, पृ. 148
105. यह आश्चर्यजनक है कि पं. मोतीलाल नेहरू को संयुक्त प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर हाईकोर्ट बटलर जो पहले इकट्ठा शैंपेन पीते थे। जेल जाने पर मोतीलाल को गवर्नर का एक अंगरक्षक जो नित्य राज भवन से आता था तथा रूमाल में लिपटी आधी बोतल शैंपेन दे जाता था।

    रफीक जकरिया (सम्पादन) ए स्टडी आफ नेहरू, पृ. 173; बी.आर. नन्दा, पूर्वोक्त, पृ. 141
106. द पिपुल, भाग VI, 15.3.1928, पृ. 165
107. द ट्रिब्यून, 23.10.1928
108. द ट्रिब्यून, 24.10.1928
109. द पिपुल, भाग VII, 9.8.1928, पृ. 114
110. डी.जी. तेन्दुलकर, पूर्वोक्त, भाग दो, पृ. 381
111. हरि सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 206
112. धनन्जय कीर, सावरकर एण्ड हिज टाइम्स, पृ. 35; इन्द्र विद्यावाचस्पति, भारतीय स्वाधीनता का इतिहास, पृ. 182

113. आर.सी. मजूमदार, फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, भाग दो, पृ. 452
114. रामशरण दास, द ड्रीमलैण्ड (अप्रकाशित 1931), देखें भगतसिंह द्वारा लिखी इन्ट्रोडिक्सन, 15 जनवरी 1931
115. गोपाल ठाकुर, भगत सिंह व्यक्तित्व और विचारधारा (नई दिल्ली, 1980 संस्करण) पृ. 28
116. देखें, के.ऐ. देसाई पेपर्स (प्राप्य नेहरू मेमोरियल एण्ड लाइबरेरी)
117. एरिक कोमारोव, लेनिन और भारत : एक ऐतिहासिक अध्ययन (मास्को, 1978), पृ. 55, 57
118. के. ईश्वरदत्त, कांग्रेस इन्साइक्लोपीडिया, पृ. 284
119. द ट्रिब्यून, 7.7.1909
120. वही
121. मार्ले पेपर्स (माइक्रोफिल्म)
122. मिन्टो पेपर्स, कारस्पोण्डेंस, भाग दो (माइक्रोफिल्म)
123. द ट्रिब्यून, 7.7.1909
124. द सिविल एण्ड मिलेटरी गजट, 11.7.1909
125. भोलाभाई देसाई, डे-टू-डे द महात्मा, डायरीज आफ महात्मा गांधी (बनारस, 1969), भाग एक
126. जवाहरलाल नेहरू, द डिस्कवरी आफ इण्डिया (कलकत्ता, 1946)
127. एस.एन. सेन, 1857, प्राक्कथन, पृ. 14-15
128. गांधी, हिन्द स्वराज्य
129. सुभाषचन्द्र बोस, द इंडियन स्ट्रगल, पृ. 163
130. गांधी कम्युनल यूनेटी, पृ. 477
131. पट्टाभि सीतारमैया, हिस्ट्री आफ कांग्रेस, भाग एक, पृ. 457
132. वही, पृ. 375
133. एम.एम. कोठारी, पूर्वोक्त, पृ. 143
134. पट्टाभि सीतारमैया, पूर्वोक्त, पृ. 611; वही पृ. 143
135. यंग इण्डिया, 22.4.1931
136. पट्टाभि सीतारमैया, पूर्वोक्त, पृ. 745
137. यंग इण्डिया, 22.4.1931
138. प्रेमचन्द, चिट्ठी पत्री, भाग एक, पृ. 96

139. द ट्रिब्यून, 25.03.1931

140. हरिजन, 19.10.1947

141. डी.जी. तेन्दुलकर, पूर्वोक्त, भाग VIII, पृ. 8

142. द इण्डियन एक्सप्रेस, 31.10.1968

143. एम. कोठारी, पूर्वोक्त, पृ. 143

144. पट्टाभि सीतारमैया, पूर्वोक्त, पृ. 693

145. डी.जी. तेन्दुलकर, पूर्वोक्त, भाग दो, पृ. 381

146. पट्टाभि सीतारमैया, पूर्वोक्त, भाग एक, पृ. 347

147. द ट्रिब्यून, 2.10.1929

148. वही, 10.12.1929

149. ऐ.आई.सी.सी. पेपर्स : कांग्रेस आरगनाईजेशन इन द प्रोवीन्सेज इन 1929, पृ. 41, 48-49

150. द ट्रिब्यून, 3.10.1929

151. रिपोर्ट, आई.एन.सी. लाहौर, 1929; डी.जी. तेन्दुलकर, पूर्वोक्त, भाग दो, पृ. 384; ओरिस्ट मारीशन, जवाहरलाल नेहरू एण्ड हिज पालिटिक्स (मास्को, 1981) पृ. 162; सलैक्टेड वर्क्स आफ जे. नेहरू, भाग तीन, पृ. 16

152. पट्टाभि सीतारमैया, पूर्वोक्त, भाग एक, पृ. 346-358

153. वही, पृ. 359

154. अयोध्या सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 588

155. द ट्रिब्यून, 9 अप्रैल, 1981, 5 मई, 1931

156. रिपोर्ट, आन एन.सी., कराची, 1931

157. पट्टाभि सीतारमैया, पूर्वोक्त, पृ. 942

158. ओरिस्ट मार्टीशन, पूर्वोक्त, पृ. 172; नेहरू जी के समाजवाद के बारे में विस्तृत अध्ययन के लिये पृ. 138-197

159. डी.जी. तेन्दुलकर, पूर्वोक्त, भाग पांच, पृ. 202

160. वी.पी. मेनन, द ट्रांस्फर आफ पावर इन इण्डिया (नई दिल्ली, 1957), पृ. 65-66

161. हरिजन, भाग सात, 28 अक्टूबर 1939, पृ. 322

162. होम (पालिटिकल), भारत सरकार फाईल, 18.1.1940

163. रिपोर्ट आई.एन.सी., 1940-1946

164. होम (पालिटिकल) भारत सरकार, फाईल नं. 3/33/1940

165. होम (पालिटिकल) भारत सरकार, फाईल नं. 3/28/1941

166. सुमित सरकार, माडर्न इण्डिया (1885-1947) (दिल्ली, 1981), पृ. 380

167. होम (पालिटिकल) भारत सरकार, फाईल 5.11.1941

168. एन. मैन्सर व ई. डब्ल्यू.आर. लूम्बे, द ट्रांस्फर आफ पावर, भाग एक, पृ. 880-881

169. पं. जवाहरलाल नेहरू, द डिस्कवरी आफ इण्डिया, पृ. 459-460

170. पट्टाभि सीतारमैया, पूर्वोक्त, भाग दो, पृ. 355

171. गिरिराज किशोर, 'मन्त्र की जनता ने खुद व्याख्या की', जनसत्ता, 9.8.1992

172. मधु लिमये, 'द अगस्त स्ट्रगल', टाइम्स आफ इण्डिया, 9.8.1992

173. सैयद सेइउद्दीन हमीद (सम्पादक), मौलाना अबुल कलाम आजाद सेन्चुरी वाल्यूम, पृ. 236; मौ. आजाद इण्डिया विन्स फ्रीडम

174. नन्द किशोर आचार्य, 'तथ्यों से तो आंखे न चुरायें', जनसत्ता, 17.9.1992

175. मधु लिमये, पूर्वोक्त; गिरिराज किशोर, पूर्वोक्त; कोपले, राजगोपालाचारी, पृ. 111

176. कोपले, राजगोपालाचारी

177. जे.बी. कृपलानी, गांधी : हिज लाइफ एण्ड थाट (नई दिल्ली), पृ. 201

178. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग LXXVI, पृ. 390-391

179. हरिजन, 9 अगस्त 1942

180. होम (पालिटिकल) भारत सरकार, फाईल नं. 3, 21, 42

181. वही, नं. 24.11.1942

182. वही, नं. 3.15.1943

183. आर.सी. मजूमदार, हिस्ट्री आफ द फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, भाग तीन (कलकत्ता, 1963), पृ. 689

184. वही, पृ. 610; एस.आर. चौधरी, द लेफटिस्ट मूवमेन्ट इन इण्डिया (1917-1947) (कलकत्ता, 1976), पृ. 135

185. होम (पालिटिकल), फाईन नं. 3/102/42

186. वाई.बी. माथुर, क्वीट इण्डिया मूवमेन्ट (नई दिल्ली, 1975), पृ. 132

187. वही

188. वही

189. वी.एन. दत्ता, ए नेशनलिस्ट मुस्लिम

190. पट्टाभि सीतारमैया, पूर्वोक्त, भाग दो, पृ. 376

अध्याय-पांच
राजसत्ता की प्राप्ती

1935 के भारत सरकार के संवैधानिक अधिनियम के अन्तर्गत 1937 में देशव्यापी चुनाव हुए। कांग्रेस पार्टी को बड़ी सफलता मिली। 11 में से 7 प्रांतों में कांग्रेस को बहुमत मिला। इसके अलावा एक प्रांत में सम्मिलित मन्त्री मण्डल बना। मुस्लिम लीग को कहीं भी आशानुरूप सफलता न मिली। इस समय मुस्लिम लीग ने संयुक्त प्रांत के मन्त्री मण्डल में दो स्थानों की मांग की। इसके लिए मौलाना अबुल कलाम आजाद ने भी पूर्ण समर्थन किया।[1] परन्तु गांधी जी तथा पं० जवाहरलाल नेहरू इसके लिए जरा भी तैयार न थे। अनेक विद्वानों का मत है कि यदि यह मान लिया जाता तो सम्भव है कि द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत को प्रमुखता न मिलती। सत्ता सुख प्राप्ती के लिए कांग्रेसी नेताओं की इच्छा बलवती हो रही थी।

प्रांतों में कांग्रेसी मन्त्री मण्डल तथा भ्रष्टाचार

यह सत्य है कि कांग्रेस के जन्म से ही कांग्रेस नेताओं में परस्पर टकराव, मन-मुटाव तथा गुटबन्दी रही। इसी का कारण आजादी से पूर्व कम से कम तीन बार कांग्रेस का विभाजन क्रमश: 1907, 1923 तथा 1933 में हुआ। परन्तु इससे अधिक दुखदाई यह है कि कांग्रेस प्रारम्भ से ही बोगस सदस्यता, मुसलमानों को कांग्रेस में लाने के लिए उनको अनेक अतिरिक्त सुविधायें, अत्याधिक फिजूल खर्ची करती रही तथा यह भी कहा जाता है कि सत्याग्रह के दिनों में कुछ सत्याग्रहियों को जेल जाने के लिए टी०ए० तथा डी०ए० भी देती रही। महात्मा गांधी ने समय-समय पर इसकी कटु-आलोचना भी की।

परन्तु सर्वाधिक आश्चर्य की बात यह हुई कि गांधी जी ने 1934 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन की असफलता से नैराश्य को दूर करने के लिए ब्रिटिश शासन की छत्रछाया में ही कांग्रेसजनों को चुनाव लड़ने की सुविधा दी। उन्होंने के०एम० मुन्शी को एक पत्र में लिखा[2], "कोई अन्य विकल्प नहीं है सिवाय इस प्रयोग को करने के... मैंने अपना मानसिक विरोध छोड़ दिया है। यह उस समय (1920, 1930 ई०) में आवश्यक था। आज इसका विरोध करना बेवकूफीपन लगता है।" गांधी जी ने चुनाव में मतदाताओं से कांग्रेस को वोट देने की अपील की।

गम्भीर प्रश्न है कि गांधी जी जैसे महान नेता ने क्यों अपने सिद्धांतों से समझौता किया ? वे क्यों असहयोगी से सहयोगी बन गये। परिस्थितियों का विश्लेषण करने पर गांधी जी को लगा कि आगामी कांग्रेस के चुनाव में भाग लेने के कई सुपरिणाम होंगे। इससे कांग्रेस में निराशा खत्म होगी तथा कांग्रेस संगठन मजबूत होगा, हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित होगी, हिंसात्मक आन्दोलनों की गति रूकेगी तथा रचनात्मक कार्यक्रमों को बढ़ावा तथा सफलता मिलेगी।

यह सही है कि 1923 के चुनाव में इससे पूर्व स्वराज्यवादियों ने भाग लिया था तथा बंगाल तथा मध्य प्रांत में भारी सफलता प्राप्त की थी। परन्तु उनकी नीति सरकार को अन्दर से तोड़ने या कार्य में बाधा ड़ालने तक सीमित थी। अत: वे सत्ता का कोई सुख न भोग सके।

परन्तु 1937 के चुनाव भिन्न थे। कांग्रेस ने सात प्रांतों में मन्त्री मण्डलों की स्थापना की थी। कांग्रेस के ये मन्त्री मण्डल लगभग दो वर्ष तक रहे। गांधी जी को इनके कार्यों तथा कार्य विधि से बड़ी निराशा हुई, जो उनके 'कलैक्टेड वर्क्स' में उद्धरित विचारों तथा 'हरिजन' के अंकों को पढ़ने से सहज में स्पष्ट होती है।

प्रारम्भ में ही मन्त्री मण्डलों के गठन तथा पदों के वितरण को ही लेकर कांग्रेस संगठन के परस्पर के मतभेद, आन्तरिक द्वेष तथा कटुता खुलकर सामने आई। शीघ्र ही पदों के सम्भालने पर मन्त्रियों के भारी अपव्यय, सुख-सुविधाओं पर फिजूलखर्ची तथा क्षुद्र स्वार्थों के लिये टकराव सामने आये। गांधी जी ने 7 जुलाई 1937 को लिखा[3], "मैंने विभिन्न प्रांतों से कुछ पत्रों को प्राप्त किया, जिसमें उन्होंने स्वयं को अथवा अपने मित्रों को मन्त्रीमण्डल में स्थान न देने के लिये विरोध किया है। ... मुझे इसमें हस्ताक्षेप करने को कहा है। इनमें से कुछ पत्रों में सीधे साम्प्रदायिक दंगों की धमकी दी है, यदि न लिये गये व्यक्तियों के बारे में विचार नहीं किया गया।" परन्तु गांधी जी ने कांग्रेसियों के इन निम्न स्तर के रवैयों पर किसी प्रकार का हस्ताक्षेप करने से मना कर दिया।

गांधी जी को शीघ्र ही आभास हो गया कि कांग्रेसजन इन पदों की प्राप्ती से अपने कार्यक्रम तथा लक्ष्य को शीघ्र भूल गये हैं। अत: उन्होंने कहा[4], "देश की आजादी के इस भयंकर संघर्ष में सफलता नहीं प्राप्त कर सकते, यदि कांग्रेसजन अपने व्यवहार में पर्याप्त निस्वार्थ भाव, अनुशासन और लक्ष्य प्राप्ती के लिए अपनाये मार्ग में विश्वास न प्रकट करेंगे।"

वे कांग्रेस मन्त्री मण्डलों के बनने के पश्चात कांग्रेस में बढ़ती हिंसात्मक प्रवृत्ति से भी क्षुब्ध हुए। उन्होंने कांग्रेसजन के शांतिपूर्ण धरने के स्थान पर हिंसात्मक मार्ग अपनाने की तीव्र

भर्त्सना की। उन्होंने कहा कि कांग्रेसीजन विरोधी दलों की सभाओं को शोरगुल मचाकर या भिन्न प्रकार से उपद्रव कराकर उनकी सभायें भंग करवा रहे हैं। कुछ कांग्रेसी कार्यकर्ता लोगों को उकसाकर पूंजीपति वर्ग को लूट रहे हैं। उन्होंने यह भी लिखा कि अनेक कांग्रेसी अपने पत्रकों या भाषणों में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के नाम पर हिंसा को भड़का रहे हैं।[5]

गांधी जी ने कांग्रेस संगठन में ऊपर से नीचे की ओर फैले भ्रष्टाचार का बोलबाला बताया और आखिर 23 सितम्बर 1938 को कांग्रेस कार्य समिति की बैठक में अपनी व्यथा बतलाते हुए कहा[6], "आज कांग्रेस उन लोगों की है जिनका अहिंसा तथा रचनात्मक कार्यक्रम पर विश्वास नहीं रहा ... जब भी कांग्रेसियों को कोई शक्ति प्राप्त होती है, उसके बंटवारे के लिए अस्वास्थ्यकारी प्रतियोगिता होती है। इससे ज्ञात होता है कि कांग्रेसियों में शक्ति के पचाने की योग्यता नहीं है, उनकी हिंसात्मक या भ्रष्ट तरीकों से कमेटियों के हथियाने की दौड में स्वराज्य एक स्वप्न बनकर रह जायेगा ... यह पद प्राप्ती की कार्यविधि नहीं है। मन्त्री मण्डल कांग्रेस में सेवा की भावना से अपनाये गये थे। अत: यह आवश्यक है कि शुद्धता को अपनायें अन्यथा कांग्रेस अपनी स्वयं की कमजोरियों से ही ढ़ह जाएगी।"

कांग्रेसजनों के द्वारा विभिन्न स्तरों पर कमेटियों के चुनावों के बोगस सदस्यता बनाने, फण्ड़ों के गबन करने, रिश्वत लेने, आंखें दिखलाने आदि की प्रचुरता को भी बतलाया गया। यह भी कहा कि संगठन अधोगति को जा रहा है।

गांधी जी ने सम्पूर्णानन्द को 2 फरवरी 1939 को एक पत्र में लिखा, "जो कौंसिलों में पहुंच गये हैं उनकी समस्यायें दिन पर दिन बढ़ती जा रही हैं। स्वार्थ, आन्तरिक टकराव, झूठ-फरेब तथा हिंसा कांग्रेस में आ गई है और बढ़ रही है। मुझे डर है कि हम अपने अन्दर की कमजोरियों से अपने को नष्ट कर रहे हैं।"

गांधी जी ने कांग्रेस मन्त्री मण्डल के तथा अन्य कांग्रेसजनों के अपने प्रभावों के दुरूपयोग का भी वर्णन किया है। वे विभिन्न स्तरों पर सरकारी अधिकारियों जैसे कलक्टरों से मिलकर स्वयं को या अपने रिश्तेदारों को लाभ पहुंचाते हैं। गांधी जी ने लिखा कि इस सन्दर्भ में कांग्रेसी सब प्रकार के अन्यायों का उपयोग करने में नहीं हिचकते।[7]

संक्षेप में विभिन्न प्रांतों में कांग्रेस के मन्त्री मण्डलों के बनाने से स्वतन्त्रता प्राप्ती की दिशा में कोई सकारात्मक लाभ नहीं हुए, बल्कि कांग्रेसियों की अनुशासनहीनता, पदलोलुपता, सत्ता की भूख, स्वार्थी प्रवृत्ति तथा हिंसात्मक भावना उभर कर सामने आई। वे केवल शराबबन्दी

तथा शिक्षा के क्षेत्र में आंशिक रूप से कुछ सफल हुए।

गांधी जी की सभी आशायें धूमिल हुईं। इससे कांग्रेस संगठन मजबूत नहीं हुआ। बल्कि कांग्रेस का ही अंश कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी कांग्रेसियों द्वारा पद ग्रहण करने से कुपित हो गई तथा कांग्रेस से उनका अलगाव बढ़ा। इतना ही नहीं सुभाष चन्द्र बोस जो 1938 ई० व 1939 ई० में कांग्रेस के अध्यक्ष थे, उनका कांग्रेस के मन्त्रियों तथा कार्यकारिणी के सदस्यों से मतभेद बढ़ा तथा 1939 ई० में उन्हें कांग्रेस से त्यागपत्र देना पड़ा। अनेक युवाओं ने गांधी जी की कांग्रेस छोड़ दी तथा सुभाष चन्द्र बोस की ओर अपना ध्यान लगाया।[8]

गांधी जी को आशा थी कि कांग्रेस के मन्त्रियों को पद प्राप्त होने से रचनात्मक कार्यक्रमों की प्रगति होगी। इससे ग्रामों का विकास तथा उन्नति होगी। किसानों पर कर का बोझ कम होगा तथा कृषि उद्योगों को बढ़ावा मिलेगा। साथ ही शिक्षा में उन्नति, शराबबन्दी तथा छुआछूत दूर होगी, पर इसमें सफलता न मिली, जिसका मुख्य कारण मन्त्रियों की अरूचि तथा धनाभाव था। अधिकतर कांग्रेस नेता गांवों में जाने को उत्सुक न थे, इस निमित्त गांधी जी द्वारा स्थापित गांधी सेवा संघ, गोसेवा संघ, ग्रामीण उद्योग संस्था आदि को कोई प्रोत्साहन न मिला।[9]

गांधी जी का हिन्दू-मुस्लिम एकता बढ़ने का विचार भी असफल रहा। हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द बढ़ने की बजाए, अविश्वास तथा परस्पर विरोध बढ़ा, मुस्लिम लीग ने कांग्रेस मन्त्रीमण्डलों की कटु आलोचना की। साम्प्रदायिक भेदभाव बढ़ा। कांग्रेस को बार-बार 'हिन्दू पार्टी' कहकर सम्बोधित किया जाने लगा। अत: दोनों में दरारें बढ़ती गईं।[10]

गांधी जी का यह सोचना सफल नहीं हुआ कि इससे स्वराज्य प्राप्ती में प्रगति होगी। बल्कि इसके विपरीत परिणाम हुए। सरकार का एक भाग बनकर, राष्ट्र जागृति अथवा स्वतन्त्रता की ओर कदम बढ़ना सम्भव न था।

कांग्रेस का मन्त्री मण्डल बनने से कई नकारात्मक परिणाम हुए। यदि अगले दस वर्षों की कांग्रेस की गतिविधियों की समीक्षा करें तो स्पष्ट रूप से लगेगा कि कांग्रेस के संगठन में शिथिलता आई, जो आगामी सभी आन्दोलनों में दिखलाई देती है। स्वतन्त्रता प्राप्ती के लिए उत्साह बढ़ने की बजाए घटा तथा कांग्रेस नेताओं का लक्ष्य स्वराज्य प्राप्ती की बजाए राजसत्ता या गद्दी प्राप्ती हो गया।

विश्वयुद्ध तथा कांग्रेस नेतृत्व

अन्तर्राष्ट्रीय जगत की तेजी से बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियां विश्व को भयंकर

युद्ध की ओर धकेल रही थीं। भारत के वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने महायुद्ध की घोषणा होते ही बिना किसी भारतीय नेता से पूछे भारत के विश्वयुद्ध में भागीदार होने तथा भाग लेने की घोषणा कर दी थी। तत्कालीन कांग्रेस के प्रमुख नेताओं के इस परिस्थिति में भी विचार एकमत नहीं थे। सुभाषचन्द्र बोस जो 1938 ई० तथा 1939 ई० में कांग्रेस के अध्यक्ष रहे थे, का स्पष्ट मत था कि ब्रिटिश की विपत्तिपूर्ण स्थिति, भारतीयों के लिए सुअवसर है तथा उन्होंने कहा कि देश की स्वतन्त्रता के लिए पूरा लाभ उठाना चाहिए तथा अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष करना चाहिए। पं० जवाहरलाल नेहरू 1929 ई० व 1936 ई० के अपने अध्यक्षीय भाषणों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद का स्वप्न ले रहे थे। उनका विचार था कि ब्रिटिश साम्रान्य को सहयोग देने से पहले यह जानना आवश्यक है कि ब्रिटिश के युद्ध का उद्देश्य साम्राज्यवाद या प्रजातन्त्र का पोषण है, अत: यह स्पष्ट होना आवश्यक है। मौलाना अबुल कलाम आजाद के अनुसार जो 16 फरवरी 1940-6 जुलाई 1946 तक कांग्रेस के अध्यक्ष थे, उनका कथन है कि पं० नेहरू को अन्तर्राष्ट्रीय हितों की चिंता थी न कि वे राष्ट्रीय हितों के प्रति जागरूक थे।[11] गांधी जी की स्थिति असमंजस की थी कि वे ब्रिटिश सरकार को सहयोग दें या न दें। प्रारम्भ में वह किसी प्रकार से ब्रिटिश युद्ध प्रयत्नों में कोई बाधा नहीं बनना चाहते थे। बाद में इसी हेतु उनका 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' केवल 'एक प्रतीकात्मक विरोध' था।

कांग्रेस मन्त्री मण्डलों के त्यागपत्र

ब्रिटिश सरकार द्वारा कांग्रेस को किसी भी प्रकार का स्पष्टीकरण या सन्तोषजनक आश्वासन न मिलने पर कांग्रेसियों ने अनमने भाव से मन्त्री मण्डलों से त्यागपत्र दे दिया। इससे मुस्लिम लीग तथा लार्ड लिथलिथगो को अपार प्रसन्नता हुई। मुस्लिम लीग तो 1937 ई० से ही बेचैन थी। जिन्ना ने 1937 ई० में लीग के लखनऊ अधिवेशन में कहा था, "अब हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा होगी और वन्देमातरम् राष्ट्रगीत होगा। कांग्रेस के झण्डे को प्रत्येक व्यक्ति को स्वीकार करना पड़ेगा और उसका आदर करना पड़ेगा। जो थोड़ी सी शक्ति और जिम्मेदारी उनके हाथ में आई है, उसके प्रारम्भ में ही इन बहुमत वालों ने अपनी करामात दिखा दी है और हिन्दुस्तान हिन्दुओं के लिये ही है।" इसके साथ ही 1938 ई० में उन्होंने 'पीरपुर रिपोर्ट' तथा 'शरीफ रिपोर्ट' से साम्प्रदायिक भावनाओं को उभारने को प्रस्तुत की जो सत्य पर आधारित न थी। कांग्रेस के मन्त्री मण्डलों के त्यागपत्र पर मुस्लिम लीग ने 12 दिसम्बर 1939 को 'मुक्ति दिवस' के रूप में मनाया। अगले अधिवेशन में (1940 ई०) उन्होंने द्विराष्ट्रवाद के सिद्धांत को मानते हुए पाकिस्तान की मांग रखी। मार्च 1940 के लाहौर अधिवेशन में जिन्ना ने कहा कि "यह एक स्वप्न है कि कभी

भी हिन्दू और मुसलमान एक राष्ट्र बन सकते हैं। ...इन दोनों के धार्मिक दर्शन, सामाजिक रीति-रिवाज और साहित्य भिन्न हैं ...ऐसी दोनों जातियों को एक राज्य में इकट्ठा बांधने से, जिसमें एक अल्पसंख्यक हो और दूसरी बहुसंख्यक ...असन्तोष बढ़ेगा और राष्ट्र ही नष्ट हो जाएगा।" मन्त्री मण्डल के त्यागपत्र से भारत का वायसराय लार्ड लिथलिथगो भी बड़ा प्रसन्न हुआ। उसका झुकाव मुस्लिम लीग की ओर बढ़ता गया। यही क्रम आगे लार्ड वेवल के काल में भी रहा।

अगस्त प्रस्ताव

महायुद्ध की विभीषिका से लार्ड लिथलिथगो ने एक प्रस्ताव[5] 8 अगस्त 1940 को रखा। इसमें उसने गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के विस्तार, सभी वर्गों के प्रतिनिधित्व से बनी युद्ध सलाहकार समिति का निर्माण, अल्पसंख्यकों के हितों का ध्यान, एक प्रतिनिधि सभा द्वारा इस युद्ध की समाप्ती के बाद संविधान का नया ढ़ांचा तैयार करना आदि बातें कहीं। परन्तु प्रस्ताव कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने अस्वीकार कर दिया।

क्रिस्प मिशन की असफलता

सरकार के कठोर रवैयों के कारण अक्टूबर 1940 से प्रारम्भ हुआ व्यक्ति सत्याग्रह अप्रभावी साबित हुआ। यह आन्दोलन 1941 ई० के मध्य में अपनी स्वयं मौत के हवाले हो गया बल्कि इससे कांग्रेस की कमजोरी भी जग-जाहिर हुई। परन्तु युद्ध की बढ़ती हुई तीव्रता ने विश्व के प्रमुख राजनेताओं को भारत की समस्याओं की ओर केन्द्रित किया।

यद्यपि 14 अगस्त 1941 को अमेरिका के प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट तथा ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री चर्चिल द्वारा अंटालिक चार्टर की घोषणा की गई जिसमें सभी राष्ट्रों की जनता को अपनी इच्छानुसार शासन करने की स्वतन्त्रता तथा जिन लोगों की स्वतन्त्रता का अपहरण हुआ, उन्हें पुनः बहाली की बात कही गई। परन्तु चर्चिल ने यह भी कहा कि यह घोषणा "उन देशों के भागों पर लागू नहीं होगी जो ब्रिटिश शासन के अधीन हैं।" मित्र राष्ट्रों की बैठक में यह भी कहा कि "वह ब्रिटिश साम्राज्य को भंग करने के लिए सम्राट का प्रधानमन्त्री नहीं बना है।"

परन्तु युद्ध के बढ़ते दबाव से चर्चिल ने अनमने भाव से सर स्टेफोर्ड क्रिप्स को 11 मार्च 1942 को भारत भेजने की घोषणा की। इसका उद्देश्य भारत में औपनिवेशिक स्वराज (डोमिनियन स्टेट्स) बताया गया। कांग्रेस एक राजनीतिक मंच होने के कारण यहां भी कांग्रेस के प्रमुख नेता उसके सुझाव के बारे में एकमत न थे। पं० नेहरू, राजगोपालाचारी, मौलाना अबुल कलाम आजाद तथा महात्मा गांधी की रायें भिन्न थीं। क्रिप्स पं० नेहरू के मित्र थे तथा नेहरू चीन

से लौटे थे, जो जापान के विरोध में चीन की विजय में भारत का सहयोग चाहते थे। पं० नेहरू चीन की स्थिति को लेकर बड़े चिन्तित थे। इसमें राष्ट्रीय दृष्टिकोण पीछे रह गया था। मौलाना आजाद ने स्पष्ट शब्दों में परस्पर की बातचीत का निर्णय देते हुए लिखा, "मुझे पूरा विश्वास हो गया कि वे क्रिप्स के प्रस्तावों को स्वीकार करने के पक्ष में हैं। मौलाना आजाद स्वयं स्पष्ट रूप से क्रिप्स के प्रस्तावों को मानने को तैयार न थे। श्री राजगोपालाचारी भी पंडित नेहरू की भांति इसे स्वीकार करना चाहते थे। कांग्रेस खेमों में राजगोपालाचारी को किसी 'मोडरेट' से कम न समझा जाता था। क्रिप्स से बातचीत करने पर गांधी जी का दृष्टिकोण स्पष्ट था। उन्होंने क्रिप्स से कहा कि उसके सुझाव अत्यन्त नीरस हैं और इनके आधार पर बातचीत की कोई गुंजाइश नहीं है। गांधी जी ने क्रिप्स से उसके प्रस्ताव के बारे में कहा कि "वह एक डूबते हुए बैंक के नाम से काटा गया अगली तारीख का चैक की भांति" है। गांधी जी ने यह भी कहा कि उनके पास इसके अलावा कोई सुझाव नहीं है कि वह अगले हवाई जहाज से अपने देश लौट जायें। बंगाल में डा० श्यामप्रसाद मुकर्जी ने सरकार के अनेक पत्रों में जहां प्रांतीय स्वायत्तता को एक दीर्घकाय तिरस्कार बतलाया[12], वहां क्रिप्स के प्रस्ताव को 'खोखलापन' बताया।[13] वस्तुतः क्रिप्स की योजना की असफलता से कांग्रेस तथा ब्रिटिश सरकार की दूरियां बढ़ीं।[14]

24 अक्टूबर 1943 को लार्ड वेवल भारत का नया वायसराय बनकर आया। उसने 1942 ई० के आन्दोलन में हुई हिंसात्मक कार्यों की जिम्मेदारी कांग्रेस तथा गांधी जी पर ड़ाली।[15] यह भी घोषणा की, "मैं अपने थैले में बहुत सी चीजें ला रहा हूं।" इसी बीच मार्च 1944 में राजगोपालाचारी ने एक फार्मूला रखा जो अस्वीकार कर दिया गया। अतः 1942 ई० के आन्दोलन के दमन के पश्चात भी ब्रिटिश सरकार की क्रूर दृष्टि बनी रही। अस्वस्थ होने पर गांधी जी को 6 मई 1944 को जेल से छोड़ दिया गया। गांधी जी स्वयं तथा इसके साथ कांग्रेस की कार्यसमिति से मिलना चाहते थे परन्तु लार्ड वेवल ने इन दोनों के मिलने के प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया। वायसराय ने यह भी कहा कि यदि रचनात्मक और निश्चित प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है तो उस पर विचार करेंगे।[16] गांधी जी ने मुस्लिम लीग के नेता मि० जिन्ना से वार्ताएं कीं जो 9 सितम्बर से 17 सितम्बर तक चलीं, परन्तु बातचीत से कोई लाभ न हुआ।[17]

वेवल योजना तथा शिमला कांफ्रेंस

लार्ड वेवल ने 14 जून 1945 को एक योजना 'वेवल योजना' रखी। योजना का मुख्य उद्देश्य भारत में व्याप्त जनाक्रोश रोकना, जापान के विरूद्ध भारत का समर्थन जुटाना तथा होने वाले ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के लिये अनुदार दल के लिए जनमत बनाना। योजना मुख्यतः क्रिप्स

मिशन की भांति थी। इसमें स्वशासन की मांग और वायसराय की कार्यकारिणी समिति में मुसलमानों तथा हिन्दुओं की संख्या बढ़ाने की बात कही गई थी।

स्वस्थ वातावरण बनाने के लिए लार्ड वेवल ने भारत के सभी प्रमुख दलों के नेताओं को 25 जून को शिमला में आने के लिए निमंत्रित किया। कांफ्रेंस 25 जून से 14 जुलाई तक शिमला में चली। 21 प्रमुख नेता बुलाये गये। इसमें मुस्लिम लीग से मि० जिन्ना व लियाकत अली खां, कांग्रेस से मौलाना आजाद व पंडित नेहरू थे। इसके अलावा मास्टर तारासिंह व भोलाभाई देसाई प्रमुख थे। सम्मेलन में मि० जिन्ना इस बात पर अड़ गये कि मुस्लिम लीग ही भारत में समस्त मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करती है। अत: कांफ्रेंस असफल रही।

इंग्लैण्ड में चुनाव तथा कैबिनट मिशन की योजना

इसी बीच महायुद्ध में हुई विजयों का लाभ उठाने के लिए प्रधानमन्त्री चर्चिल ने आगामी चुनाव की घोषणा कर दी। परन्तु इसके अपेक्षित परिणाम न निकले। इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी की विजय हुई। लार्ड ऐटली प्रधानमन्त्री बने तथा पैथिक लारेंस भारतमन्त्री। बदलती हुई परिस्थितियों में लार्ड वेवल को अगस्त में इंग्लैण्ड बुलाया गया तथा उसने वापिस लौटकर 19 सितम्बर को, युद्ध के कारण भारत में अवरूद्ध चुनावों के करने की घोषणा कर दी।[18]

नई लेबर पार्टी की सरकार ने 22 जनवरी 1946 को भारतीय नेताओं से वार्ता के लिए एक शिष्टमण्डल भेजने का विचार किया गया। इसकी विधिवत घोषणा 17 फरवरी 1946 को ब्रिटेन के रेडियो द्वारा की गई। इसमें मन्त्री मण्डल के तीन सदस्य, क्रमश: सर पैथिक लारेंस (भारतमन्त्री), सर स्टेफोर्ड क्रिप्स (प्रेसीडेन्ट बोर्ड आफ ट्रेड) तथा ए०के० अलैकजेण्डर (नौसेना मन्त्री) थे[19] को भारत भेजने को कहा। 15 मार्च को लार्ड ऐटली ने हाउस आफ कामन्स में भी घोषणा की, "यद्यपि अल्पसंख्यों का हित हमारे ध्यान में है, फिर भी हम बहुमत की प्रगति पर अल्पमत को वीटो प्रयोग की अनुमति न देंगे।"[20]

भारत के वायसराय लार्ड वेवल ने भारत की राजनैतिक तथा सामरिक स्थिति को डांवाडोल पाया। आजाद हिन्द फौज की ब्रिटिश शासन विरोधी गतिविधियों, नौसेना में बगावत तथा वायुसेना में बेचैनी ने उसे शीघ्रातिशीघ्र भारत छोड़ने को प्रेरित किया। उसने ब्रिटिश सरकार के सन्मुख 4-5 ब्रिगेड ब्रिटिश सेना भी इंग्लैण्ड से भेजने का सुझाव भी रखा था।

सुझाव अस्वीकृत होने पर उसने फरवरी 1946 में भारत विभाजन की योजना रखी थी। उसने मार्च 1946 में एक तार में भारत मन्त्री को लिखा था, "पहला अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य

पाकिस्तान का है। यह आवश्यक है कि हिज मैजेस्टी गवर्नमेन्ट इस पर विचार करें।" साथ ही उसने एक ओर भारत की एकता पर बल तथा पाकिस्तान न बनने पर भारत में गृहयुद्ध तथा अन्य मुसलमानों के साथ दुश्मनी होने की बात कही थी। स्पष्ट रूप से इन कूटनीतिपूर्ण वाक्यों में एक ओर भारतीय एकता का ढ़ोंग तथा दूसरी ओर मुस्लिम नाराजगी का भय तथा वकालत थी।

6 जुलाई 1946 को एक तार द्वारा उसने भारतमन्त्री को भारत विभाजन का विस्तृत ब्यौरा देते हुए लिखा, "अगर सभी मुस्लिम क्षेत्रों को निश्चित करने के लिए मजबूर किया गया तो मैं सुझाव दूंगा कि इसमें जोड़ना चाहिए (अ) सिन्ध, उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रांत, ब्रिटिश बलूचिस्तान, रावलपिंडी, मुल्तान और पंजाब का लाहौर ड़िवीजन, जलपाईगुड़ी व दार्जिलिंग को छोड़कर राजशाही ड़िवीजन, प्रेसीडेन्सी ड़िवीजन के केवल नादिया, मुर्शिदाबाद तथा जेसौर जिले तथा असम का सिल्हट जिला। पंजाब का केवल मुस्लिम बहुल जिला, जो इस विभाजन में नहीं होगा, वह गुरूदासपुर जिला होगा (51 प्रतिशत मुस्लिम)। गुरूदासपुर जिला भौगोलिक दृष्टि से अमृतसर, जो सिखों का पवित्र नगर है, के साथ होना चाहिए तथा पाकिस्तान से बाहर रहना चाहिए।"

उपरोक्त पत्रव्यवहार से ज्ञात होता है कि ब्रिटेन ने भारत विभाजन की योजना पहले ही बना ली थी। 24 मार्च 1946 को केबिनट मिशन दिल्ली पहुंच गया। कैबिनट मिशन ने भारत के विभिन्न नेताओं से बातचीत की, पर समस्या का कोई हल न निकला। जिन्ना पाकिस्तान की मांग पर अड़े रहे। बातचीत के लिए शिमला में एक कांफ्रेंस भी की गई पर सफल नहीं हुई। कैबिनट मिशन व लार्ड वेवल चाहते थे कि समस्या का हल दोनों (कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग) को मंजूर हो, भारत की एकता बनी रहे तथा मुस्लिम लीग की मांग का तत्व भी आ जाये।[21] 15 अप्रैल 1946 को कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आजाद ने अपने वक्तव्य में कहा कि जितनी समस्या होती है, उससे अधिक समस्यायें पैदा हो जाती हैं।[22]

कुछ काल बाद 16 मई को लार्ड वेवल तथा कैबिनट मिशन द्वारा एक संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित किया गया जिसे कैबिनट मिशन योजना कहा जाता है। इसमें एक ऐसे त्रिस्तरीय संविधान का प्रस्ताव रखा जिसमें भारतीय संघ की राजनैतिक एकता को बनाये रखने का प्रयास किया। इसमें ब्रिटिश भारत की भारतीय रियासतों को मिलाकर एक भारतीय संघ के निर्माण का प्रस्ताव रखा, जिसमें इनके पास केवल विदेशी मामले, प्रतिरक्षा तथा संचार विभाग होंगे। शेष शक्तियां राज्यों के पास होंगी। प्रांतों को अलग-अलग कार्यपालिका और विधान सभा के साथ-साथ

अपने समूह बनाने का अधिकार होगा। दूसरे, एक संविधान सभा का निर्णय किया जाएगा जिसमें प्रत्येक प्रांत में जनसंख्या के अनुपात में, साम्प्रदायिक आधार पर प्रतिनिधि होंगे। तीसरे, इसके साथ ही एक अंतरिम सरकार की भी योजना रखी गई। यह संविधान सभा तय संविधान के आधार पर नवीन सरकार के गठन होने तक रहेगी। चौथे, यह भी कहा गया कि संविधान सभाओं को शक्ति के हस्तांतरण से उत्पन्न मामलों पर एक संधि करनी होगी। मिशन ने इस बात पर जोर दिया कि ब्रिटिश सेना तब तक नहीं हटाई जाएगी, जब तक संविधान सभा अपना कार्य पूरा न कर ले। इस योजना में पाकिस्तान की मांग को अस्वीकार कर दिया। परन्तु मुस्लिम लीग को प्रसन्न करने के लिए प्रांतों को तीन दलों में बांट दिया था, पर कांग्रेस के नेता प्रांतों के समूहीकरण को ऐच्छिक बात मानते थे। कैबिनेट मिशन योजना को भारत की राजनैतिक पार्टियों ने अलग-अलग दृष्टिकोण से देखा। कांग्रेस ने इस योजना में कई दोष पाये परन्तु 25 जून को स्वीकार कर लिया। इसी भांति इसमें लीग को पाकिस्तान की मांग स्पष्ट रूप से न दिखी पर उसने 6 जून को ही इसे स्वीकार कर लिया।

कांग्रेस के विचारों को रखते हुए पं० नेहरू ने 10 जुलाई को बम्बई की एक सभा में कहा था, "संविधान सभा में जाकर जो कुछ करेंगे, उसके लिए पूर्ण स्वतन्त्र होंगे। सम्भावना यह है कि प्रांतों में इस प्रकार के कोई वर्ग नहीं बनेंगे।"[23] वस्तुत: पं० नेहरू का यह मूल्यांकन सही नहीं था। मौलाना आजाद ने नेहरू के इस कथन को 'दुर्भाग्यपूर्ण' कहा।[24]

योजना के स्वीकार किये जाने के पश्चात संविधान सभा के लिए चुनाव जुलाई 1946 में हुए। मताधिकार का आधार 1937 ई० के चुनाव को ही रखा गया जो अतार्किक था व सही जनमत को प्रकट न करता था। इसमें केवल भारत के 13 प्रतिशत के मताधिकार की अभिव्यक्ति होती थी।

चुनाव में कांग्रेस ने 214 सामान्य स्थानों में से 205 स्थान प्राप्त किए। उन्हें 4 सिख सदस्यों का भी समर्थन मिला। मुस्लिम लीग को 78 मुस्लिम स्थानों में से 73 स्थान मिले। चुनाव परिणामों से जिन्ना नाराज हो गये, उन्होंने पृथक विधान सभा की मांग की और कहना शुरू कर दिया कि हिन्दू-मुसलमान एक राष्ट्र नहीं हैं। साथ ही मुसलमानों को हिंसात्मक कार्यवाही के लिए भड़काना भी शुरू कर दिया।

प्रत्यक्ष कार्यवाही

अन्तरिम सरकार में कांग्रेस द्वारा मुसलमानों के नामजद करने के अधिकार को मुस्लिम लीग ने मान्यता नहीं दी। जुलाई के अन्त में कैबिनट मिशन के वक्तव्य को भी अस्वीकार कर दिया तथा प्रत्यक्ष कार्यवाही की घोषणा की। 16 अगस्त 1946 को 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस' निश्चित किया गया। इसमें बंगाल, यूनाईटेड प्रोविंसिस, पंजाब, सिंध व उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में दंगे भड़के। इसका सर्वाधिक प्रकोप कलकत्ता में हुआ। मुसलमानों ने बर्बरता तथा पाशविकता का प्रदर्शन किया। एक कथन के अनुसार, "कलकत्ता में भारी लूट और मारपीट शुरू की गई। हिन्दुओं की सम्पत्ति की बड़ी हानि हुई, लगभग 7,000 व्यक्ति इन झगड़ों में मारे गए, 15,000 जख्मी हुए और 1,00,000 बेघर हो गए।"[25]

उक्त दिवस मौलाना आजाद कलकत्ता में ही थे, उन्होंने यह दिन भारतीय इतिहास में काले अक्षरों में लिखा जाने वाला बताया।[26] डा० राजेन्द्र प्रसाद ने इसे नादिरशाह के दिल्ली के नरसंहार का कलंक बतलाया।[27] महात्मा गांधी ने मुस्लिम लीग की मांग के उस तरीके की आलोचना की तथा इसे 'पापमय' बतलाया।

13 अक्टूबर को नोआखली में दंगे भड़के। नोआखली तथा त्रिपुरा के ग्रामों में अनेक विनाशकारी घटनायें हुईं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार नोआखली में 300 व त्रिपुरा में 350 घर जलाये और लूट लिए गये। 29 अक्टूबर को गांधी जी नोआखली पहुंचे। बिहार में इन दंगों की तीखी प्रतिक्रिया हुई। वहां भी अनेक दंगों और लूटमार की घटनायें हुईं। इन दंगों का[28] पंजाब और दिल्ली में भी वीभत्स रूप रहा। एक प्रमुख समाचार पत्र ने दिल्ली के बारे में लिखा कि जो दिल्ली हमेशा खुश दिखलाई देती थी, गांधी जी के 8 सितम्बर को दिल्ली पहुंचने पर लगा कि वह 'मुर्दों का शहर' हो गया। गांधी जी ने कहा कि "मेरे चारों ओर दावानल जल रहा है।" यही दृश्य पंजाब, रावलपिण्डी, मियांवाली और शेखपुरा में दिखाई दिये।

अंतरिम सरकार का नेतृत्व

कैबिनट मिशन योजना के अनुसार 2 सितम्बर 1946 को पं० जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अंतरिम सरकार का गठन किया गया। कैबिनट मिशन योजना में कहा गया था कि युद्ध विभाग सहित सभी विभाग भारतीय मन्त्रियों के पास होंगे। इस अंतरिम सरकार के कुल 14 सदस्य होंगे। इसमें 6 कांग्रेस, 5 मुस्लिम लीग, 1 भारतीय ईसाई, 1 सिख और 1 पारसी होंगे। योजना को पूरी तरह सफल करने में सरकार ने पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया था।

पं० नेहरू को अंतरिम सरकार का नेतृत्व देने से पूर्व कांग्रेस की आन्तरिक दलबन्दी व

वैमनस्य भी खुलकर सामने आया। प्रश्न है कि नेहरू को क्यों इस सरकार का प्रधानमन्त्री बनाया गया जबकि कांग्रेस संगठन उन्हें नहीं चाहता था। इस सन्दर्भ में सरदार वल्लभ भाई पटेल का रोष भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। वैसे तो पं० नेहरू व पटेल की कटुता तभी से बनी थी जब 1929 ई० में सरदार पटेल को कांग्रेस समितियों द्वारा गांधी जी के बाद दूसरे स्थान पर होने पर भी, गांधी जी ने नेहरू को कांग्रेस अध्यक्ष बनाया था। 1936 ई० में यह कटुता और खुलकर सामने आ गई। अब 1946 ई० में 15 प्रांतीय समितियों से 12 पटेल, 2 राजेन्द्र प्रसाद तथा केवल 1 गांधी जी के पक्ष में थी, जिससे पटेल क्षुब्ध हो गये थे। इस सन्दर्भ में भारत के वायसराय लार्ड वेवल ने एक 'टाप सीक्रेट' तार द्वारा भारत मन्त्री पैथिक लारेंस को 5 अगस्त 1946 को सूचित भी किया था। इसमें कांग्रेस को अंतरिम सरकार के लिए बुलाने से क्या हानि या लाभ होंगे। इस तार में ये भी दिया था कि उसे एक गुप्त साधन से पता चला है कि सरदार पटेल का नेहरू की कार्यप्रणाली के बारे में बहुत सामान्य धारणा (Poor assessment of Nehru's working) है।[29] साथ ही यह भी कहा कि पटेल इससे पूर्ण सहमत है कि कांग्रेस को सरकार में, तत्कालीन अराजकता को दूर करने के लिए शासन में आना चाहिए।

वस्तुत: भारतीय इतिहास का यह अनसुलझा प्रश्न है कि गांधी जी ने देश का सम्पूर्ण कांग्रेस बहुमत पटेल के पक्ष में होते हुए पं० नेहरू को क्यों चुना? इस प्रश्न के उत्तर में ब्रिटिश सरकार तथा गांधी जी के नेहरू के बारे में तत्कालीन विचार जानना उपयोगी होंगे।

जहां तक तत्कालीन वायसराय लार्ड वेवल तथा बाद में लार्ड माउन्टबेटन के विचार हैं, वे पूरी तरह नेहरू जी के पक्ष में थे। जब जुलाई 1945 में देश की आजादी के लिए सुभाष ने बंगाल पर आक्रमण की धमकी दी, तब नेहरू जी ने कलकत्ता की एक जनसभा में यहा था कि, "यदि सुभाष इस ओर से आयेगा तो मैं हाथ में तलवार लेकर उसका मुकाबला करूंगा।" इससे कांग्रेस नेतृत्व की मानसिकता तथा महत्त्वाकांक्षा स्पष्ट हो जाती है। इस प्रसंग में पं० नेहरू की रंगून यात्रा को भी देखा जा सकता है। यह यात्रा ब्रिटिश कूटनीति का एक हिस्सा थी। लार्ड वेवल ने योजना बनाई कि भारत का कोई प्रभावी नेता रंगून जाये जो आजाद हिन्द फौज के सैनिकों में सद्भावना पैदा करे। इसके लिए पं० नेहरू को चुना गया। ब्रिटिश सरकार को लगा कि पं० नेहरू को भेजा जाना उस क्षेत्र में, सुभाष के प्रभाव को कम करने में उपयुक्त होगा। इसके साथ यह यात्रा भारत की भावी सत्ता सौंपने की कूटनीतिक चाल एवं प्रक्रिया का प्रारम्भ थी। पं० नेहरू की यात्रा का स्वरूप इस प्रकार बनाया गया कि वह ब्रिटिश सरकार की योजना न लगकर कांग्रेस की मांग लगे। कांग्रेस द्वारा इस सन्दर्भ में दिसम्बर 1945 में एक प्रस्ताव भी पारित किया गया। सरकार

ने इस रंगून यात्रा के लिए कुछ धनराशि भी देने को कहा। साथ ही कुछ समय प्रतीक्षा करने को भी कहा। पं० हृदयनाथ कुंजरू तथा पी० कोदण्डराव को भेजने का भी प्रस्ताव आया पर सरकार ने स्वीकृति न दी। लेकिन सरकार 15 दिन बाद पं० नेहरू को भेजने के लिए तैयार हो गई।

यह भी विचारणीय है कि लार्ड माउन्टबेटन ने रंगून में पण्डित नेहरू का राजकीय तथा भव्य स्वागत क्यों किया। ब्रह्मा सरकार से कहकर तैयारियां कराई गईं। वस्तुत: रंगून में पं० नेहरू के आगमन पर किंचित भी उत्साह न था। माउन्टबेटन ने इस यात्रा को राजनैतिक महत्त्व दिया। माउन्टबेटन ने एक महत्त्वपूर्ण बैठक में कहा, "यह आदमी (नेहरू) हमारा निमंत्रित मेहमान है और एक विशिष्ट कूटनीतिज्ञ है, जो एक दिन भारत पर शासन कर सकता है।[30] इसका स्वागत उसी प्रकार होना चाहिए। मुझे पता चला है कि आपने उसके लिए एक भी कार का प्रबन्ध नहीं किया है, मैं उसे अपनी कार दे दूंगा। आप लोग मोटर गाड़ियां भेजकर देहातों में उन सब भारतीयों को लाने का प्रबन्ध करें। विशिष्ट भारतीयों को हवाई अड्डे पर जाने के लिये पास दिये जायें। मैं उनके लिए सरकारी भवन में भोजन की व्यवस्था करूंगा।" लार्ड माउन्टबेटन की यह कूटनीति चाल आगे भारत विभाजन में सहायक बनी रही।

जहां तक कांग्रेस नेतृत्व का प्रश्न है कि अन्तरिम सरकार का कौन नेतृत्व करे। गांधी जी का झुकाव निर्विवाद रूप से कांग्रेस संगठन की इच्छा के विपरीत पं० नेहरू की ओर था। वे यद्यपि सरकार की बैलगाड़ी के दो श्रेष्ठ बैल मानते थे – पं० नेहरू तथा सरदार पटेल। आचार्य कृपलानी के शब्दों में गांधी जी मानते थे कि "हमारे दल में जवाहरलाल नेहरू ही अंग्रेज हैं", तो भी उनका पूरी तरह से झुकाव पं० नेहरू के प्रति था। उनका कथन था कि पं० नेहरू "हैरो का छात्र है, कैम्ब्रेज का स्नातक व एक बैरिस्टर है तथा अंग्रेजों से बातचीत के लिये उपयुक्त है।"[31] विश्व प्रसिद्ध इतिहासकार अर्नोल्ड टायनवी से 27 जून 1971 को एक साक्षात्कार में[32] जब पूछा कि गांधी जी ने पं० नेहरू को क्यों चुना? तो उसका उत्तर भी यही था कि गांधी जी आणविक युग का अचेत पैगम्बर थे, जो उसे नष्ट किये बिना राजनैतिक परिवर्तन चाहते थे। उसका विचार था कि नेहरू के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को ठीक करने में उपयोग होगा। पर विषय तो भारत के भावी प्रधानमन्त्री का था। इस बार कांग्रेस का अध्यक्ष, भारत का प्रधानमन्त्री बन सकता था। अत: इससे मौलाना आजाद जो 1940–1946 ई० तक कांग्रेस के अध्यक्ष थे उनका नम्बर भी कट गया, साथ ही पटेल का भी। इसके परिणाम का आंकलन तो देश की भावी पीढ़ी ही कर सकेगी।

अंतरिम सरकार के कार्य

पं० नेहरू के नेतृत्व संभालते ही गांधी जी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी दिन कहा, "आखिर पूर्ण स्वराज्य के द्वारा खुल गये हैं।"[33] गांधी जी ने यह भी कहा कि हम मुस्लिम लीग की प्रतिक्रिया से गुस्से में न आयें। "हमारे जो भी ब्रिटिश से अतीत में झगड़े हो गये थे, हमें अब उनका धन्यवाद करना चाहिए।[34] सरदार पटेल ने कहा कि वे अंतरिम सरकार में ब्रिटिश को शांतिपूर्वक भारत से भेजने में मदद करने आये हैं।[35] अंतरिम सरकार का मुख्य विरोध हिन्दू महासभा ने किया। उनके मुख्य पत्र 'हिन्दू आउटलुक' ने लिखा, "हमारे नेता (कांग्रेस के) मामूली प्रलोभन के वशीभूत हो गए हैं और यह वायसराय के लिए आसान है कि वह इन व्यक्तियों की मामूली भावनाओं तथा मानवीय दुर्बलताओं से खेलें।[36]

मुस्लिम लीग ने अन्तरिम सरकार में भाग नहीं लिया। लीग ने इसे 'काला दिवस' के रूप में मनाया। 20 दिन बाद नेहरू जी वेवल से भी मिले। लार्ड वेवल का प्रारम्भ से ही मुस्लिम लीग के प्रति झुकाव रहा था। वह किसी भांति मुस्लिम लीग को प्रसन्न करना चाहता था। अंतरिम सरकार के चार महत्त्वपूर्ण मंत्रियों – विदेश, गृह, सुरक्षा तथा वित्त में से मुस्लिम लीग गृह विभाग चाहती थी। अब तक विदेश विभाग पं० नेहरू, गृह विभाग सरदार पटेल तथा सुरक्षा विभाग सरदार बलदेव सिंह के पास थे। नेहरू इन तीनों निभागों के अलावा कोई विभाग मुस्लिम लीग को देने को तैयार थे, जब मुस्लिम लीग ने गृह विभाग लेने की जिद की तब सरदार पटेल ने सरकार से अपना त्याग पत्र भी देने को कहा।[37] इस पर लार्ड वेवल ने पैथिक लारेंस को सूचित किया। साथ ही उसने इसे नेहरू की धमकी समझा तथा एक धौंस देने की सम्भावना बतलाया।[38] लार्ड वेवल लीग को वित्त विभाग लेने के लिए कहता रहा।[39] आखिर 26 अक्टूबर को मुस्लिम लीग ने अंतरिम सरकार में भाग लेने की सहमति दे दी तथा लीग ने वित्त विभाग संभाल लिया। परन्तु इस सारी गतिविधि से पं० नेहरू प्रसन्न न थे। मुस्लिम लीग अंतरिम सरकार में इसलिए नहीं थी कि उसे सफल बनाया जाये बल्कि इसलिए थी कि उसे अन्दर से तोड़ा जा सके।

अंतरिम सरकार का पं० नेहरू के नेतृत्व में, मुस्लिम लीग के निरन्तर तोड़-फोड़ एवं बाधायें ड़ालने से कार्य सुचारू रूप से न चला। बल्कि यह कहना अनुचित न होगा कि पं० नेहरू तथा सरदार पटेल के मन में इसी काल में पाकिस्तान निर्माण की स्वीकृति हो गई थी। मुस्लिम लीग के अंतरिम शासन में आने के बाद कहा था, "हम सिर दर्द से छुटकारा पाने के लिए सिर कटवाने को तैयार हो गए।"[40] सरदार पटेल ने स्वयं चिंतित स्वर में बाद में 25 नवम्बर 1948 को बनारस विश्वविद्यालय में अंतरिम सरकार का वर्णन करते हुए कहा था, जिन प्रांतों में मुस्लिम

बहुमत था वहां चपरासी से उच्च पदों तक मुसलमान नियुक्त किये जा रहे थे। हिन्दुओं को हटाया जा रहा था। ...प्रत्येक दफ्तर पाकिस्तान की एक ईकाई होती।[41] इसमें सन्देह नहीं है कि मुस्लिम लीग काम में बाधायें ड़ालने के लिए ही आई थी।

उल्लेखनीय है कि अंतरिम सरकार के अन्तर्गत बजट वित्त मन्त्री लियाकत अली के द्वारा फरवरी 1947 में रखा गया। बजट में एक लाख से ऊपर आय वालों पर 25 प्रतिशत टैक्स तथा केपीटल लाभ पर कुछ कर बढ़ाया गया। आयकर की निम्नतम दर 2000 से बढ़ाकर 2500 रूपये कर दी गई, नमक कर हटाया गया। इसे 'गरीब व्यक्ति का बजट' कहा गया। किसी कांग्रेसी नेता ने इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त न की। पर वेवल ने पैथिक लारेंस को लिखा, "नेहरू ने अपने को एक व्याकुल स्थिति में पाया ... वह व्यक्ति रूप से गरीब व्यक्ति के बजट के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था पर वह स्वयं परिस्थिति के अनुरूप खड़ा होने की स्थिति में न था, क्योंकि बड़े व्यापारियों का दबाव था जो कांग्रेस को वित्तीय मदद करते हैं।"[42] 20 फरवरी 1947 को जब प्रधानमन्त्री ऐटली ने घोषणा की कि जून 1948 तक भारत को सत्ता सौंप दी जायेगी। चर्चिल ने इसकी आलोचना की। भारत में पुन: सीधी कार्यवाही को बढ़ावा मिला। अकेले पंजाब में दंगों में 15 दिनों में 2049 व्यक्ति मारे गये तथा 1000 घायल हो गए। 8 मार्च को कांग्रेस की कार्यकारिणी कमेटी ने पंजाब के विभाजन को प्रस्ताव पास कर दिया। सरदार पटेल को गांधी जी ने पत्र लिखा तथा अपने को प्रस्ताव को न समझने वाला बताकर उसके बारे में जानना चाहा।[43] सरदार पटेल ने इसका उत्तर 24 मार्च 1947 को दिया तथा लिखा कि, "निर्णय बड़ा सोच समझ कर किया है। जल्दी में ऐसा कुछ नहीं किया। आप चाहे जो कहें, पंजाब बिहार से भी खराब हालत में है।[44] नेहरू ने भी कहा कि प्रस्ताव वस्तुस्थिति को देखकर ही किया है।

संविधान सभा का निर्माण

कैबिनट मिशन योजना के अनुसार लार्ड वेवल ने न केवल अंतरिम सरकार की स्थापना करवाई बल्कि 9 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा बुलाने का भी निश्चय किया। पर मुस्लिम लीग न चाहती थी। लीग ने पहले देश के बंटवारे की मांग की। अत: मुस्लिम लीग इसमें शामिल न हुई।

लार्ड माउन्टबेटन का भारत आगमन तथा देश के नेताओं से वार्तालाप

इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री क्लीमेंट ऐटली ने अपनी योजना को पूरा करने के लिए 22 मार्च 1947 को लार्ड माउन्टबेटन को कुछ विशेष अधिकार देकर भारत भेजा। माउन्टबेटन शाही

परिवार से जुड़ा था, एवं महत्त्वाकांक्षी, प्रतिष्ठा का भूखा, चापलूसी का इच्छुक व चतुर धोखेबाज तथा फैशनप्रिय था। जब उसने पहली बार दिल्ली में वायसराय की गद्दी सम्भाली तब वह पूर्णत: सैनिक वेशभूषा से सुसज्जित तथा अनेक बैजों तथा मैड़लों से युक्त था। वह समूचे ब्रिटिश शासन में पहला तथा अंतिम वायसराय था जो अपने एक प्रैस अचेटी एलन कैम्पबेल को भी साथ लाया था। वह भारत में पहला वायसराय था जो भारत के भविष्य के बारे में प्रधानमन्त्री लार्ड ऐटली से स्वतन्त्र निर्णय करने का अधिकार भी लेकर आया था।

लार्ड माउन्टबेटन 24 मार्च 1947 से 20 जून 1948 तक भारत रहा। जहां उसने अपनी प्रसिद्धि के लिए अपने प्रैस अटेची से 'मिशन विद माउन्टबेटन' (1951 ई०) लिखवाई। परन्तु जब इससे उसकी चाहत न पूरी हुई, उसने अपने कागजात तथा व्यक्तिगत पत्र-व्यवहारों को दो फ्रांसीसी लेखकों - लेरी कालिंस तथा डोर्मीग्यू लैपाईयर को सौंप दिये, जिन्होंने दो पुस्तकें 'फ्रीडम ऐट मिडनाइट' (1975 ई०) तथा 'माउन्टबेटन एण्ड द पार्टिशन आफ इण्डिया' लिखी। इसके अलावा अनेक दस्तावेज, लेख तथा वक्तव्य भी प्रकाशित हुए।

उसने भारत में आते ही यहां के विभिन्न राजनीतिक नेताओं से मिलकर अपनी शतरंज बिछानी शुरू की। भारत आते ही उसने विभाजन की युद्ध स्तर पर तैयारी की।

भारत विभाजन की उसकी योजना को समझने से पूर्व उसकी मानसिकता को जानना आवश्यक होगा। उसने भारत के दो प्रसिद्ध समुदायों में अपना लगाव मुसलमानों के प्रति जतलाया। व्यवहारिक रूप से वह मुसलमान समर्थक था। एक बार उसने कहा, "तुम देखते हो, मैं मुस्लिम लीग के लोगों को चाहता हूं, क्योंकि वे (हिन्दुओं की अपेक्षा) भारतीय सेना के अधिकारी वर्ग में हैं। मैं व्यक्तिगत रूप से किसी का समर्थक नहीं, परन्तु वास्तव में मैं मुसलमानों को चाहता हूं।" इतना ही नहीं तत्कालीन भारत में ब्रिटिश प्रधान सेनापति सर क्लोड़ ओचीनलीक भी अपने को पंजाबी मुस्लिम समर्थक मानता था। माउन्टबेटन का हिन्दू-द्वेष स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। वह कहता था भारत एक देश नहीं है। 'मिशन विद माउन्टबेटन' में वर्णित बढ़ती हुई हिन्दुओं की शक्ति से सम्भवत: वह कुपित था। साथ ही उसके चाटुकार प्रैस रिपोर्टर्स में एक भी ऐसा अंग्रेज न था जो हिन्दू हितों का समर्थक हो। अत: उसके इस व्यवहार से कुछ लोग माउन्टबेटन के स्थान पर उसे मन-बांटन भी कहते थे।

भारत आते ही उसने शिमला में देश के प्रमुख नेताओं से बात की। इसमें माउन्टबेटन की बातचीत सबसे प्रमुख पं० नेहरू तथा गांधी जी से थी। कुछ विद्वानों के अनुसार माउन्टबेटन

ने पं० नेहरू के सम्मुख विभाजन की योजना रखी थी। मौलाना अबुल कलाम आजाद का कथन है कि नेहरू विभाजन के विरोधी नहीं, पर कम से कम तटस्थ थे, परन्तु इस कठिन कार्य में लार्ड माउन्टबेटन को अपनी आदर्श पत्नी से बहुत सहायता मिली। जिन्होंने नेहरू को अपने पति से अधिक प्रभावित किया।[45] सम्भवत: पं० नेहरू इस सन्दर्भ में कृष्ण मेनन से भी प्रभावित थे।[46] अत: माउन्टबेटन ने स्वीकृति प्राप्त कर ली थी।[47] यह माउन्टबेटन की बड़ी सफलता थी। 4 मई को गांधी जी माउन्टबेटन से मिले, जिसमें गांधी जी ने किसी प्रकार के विभाजन का विरोध किया। माउन्टबेटन ने उस वार्ता को 'अत्यन्त गुप्त' रखा। इससे पहले 3 मई को राजकुमारी अमृतकौर तथा गोविन्द वल्लभ पंत मिले थे, जिन्होंने भारत विभाजन का विरोध किया था। तत्कालीन समाचार पत्रों से ज्ञात होता है कि आचार्य कृपलानी, डा० राजेन्द्र प्रसाद तथा सरदार पटेल अपने भाषणों में खुले आम भारत के विभाजन का विरोध कर रहे थे। प्रधानमन्त्री ऐटली भी इस सन्दर्भ में कई बैठकें कर रहे थे, उनकी इच्छा थी कि भारत विभाजन के प्रस्ताव को माउन्टबेटन शीघ्रातिशीघ्र अर्थात 3 जून 1947 से पूर्व ही रख दें। परन्तु माउन्टबेटन इसके लिए तैयार नहीं हुआ।

सभी को इस बात की भनक थी कि विभाजन शांतिपूर्ण नहीं होगा। वस्तुत: मई के प्रारम्भ में भारतीय राजनीतिज्ञों से लार्ड माउन्टबेटन की वार्ता एक बड़ी सफलता थी। उल्लेखनीय है कि हिन्दू महासभा के वी०जी० देशपांडे ने 21 मई को माउन्टबेटन से भेंट की थी तथा इसके पश्चात विभाजन से देश में दंगे भड़कने की आशंका व्यक्त की थी और कांग्रेस से अनुरोध किया था कि विभाजन स्वीकार करने से पूर्व देश के बहुसंख्यकों (हिन्दुओं) का जनमत संग्रह करें।

उल्लेखनीय है कि जब 2 जून 1947 को कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के सम्मुख भारत विभाजन की योजना रखी गई तब कांग्रेस ने स्वीकृति दे दी। दुर्भाग्य से इस देश के भविष्य के इस महा निर्णय में कांग्रेस नेताओं ने न गांधी जी से बातचीत करने की आवश्यकता समझी और न मौलाना आजाद से, जो गत छह वर्षों से कांग्रेस के अध्यक्ष रहे थे। अत: कांग्रेस ने भारत विभाजन की स्वीकृति दे दी, यदि जिन्ना कोई अड़चन न ड़ालें।

लार्ड माउन्टबेटन ने यह स्वीकार किया है कि उसे जिन्ना को मनाने पर बड़ी कठिनाई तथा मेहनत करनी पड़ी। उसका कहना है कि यदि जिन्ना न मानते तो समस्त योजना में सफलता न मिलती।

आखिर 3 जून 1947 को लार्ड माउन्टबेटन ने कांग्रेस से पं० नेहरू, सरदार पटेल, आचार्य कृपलानी तथा श्री बलदेव सिंह तथा मुस्लिम लीग के मि० जिन्ना, लियाकत अली खां

तथा सर अब्दुर नसरत को बुलाकर विभाजन का प्रस्ताव रखा जो मान लिया गया। माउन्टबेटन ने इस 3 जून 1947 की बैठक को अपने जीवन की सबसे रोमांचक और गंभीर परीक्षा की घड़ी वाला पल माना है। इंग्लैण्ड में इस निर्णय से सभी सहमत ही नहीं, बल्कि विरोधी दल के नेता भी खुश थे। जिस चर्चिल ने माउन्टबेटन की नियुक्ति तथा भारत जाने का विरोध किया, अब वह भी बड़ा खुश था।

27 मई को कांग्रेस कार्यसमिति ने विभाजन के पक्ष में मत दिया पर गांधी जी तैयार न थे, गांधी जी ने कहा "विभाजन के विचार से ही देश भयभीत है।"[48] कांग्रेस साम्प्रदायिक दंगों से विभाजन के लिए तैयार थी। 3 जून को ही विभाजन की योजना रखने के बाद सांयकाल गांधी जी के प्रार्थना सभा में जाने से पूर्व लार्ड माउन्टबेटन गांधी जी से मिला तथा अपनी 'मजबूरी' प्रकट की। गांधी जी ने माउन्टबेटन को भारत के विभाजन का दोषी बतलाया।[49] 5 जून को गांधी जी ने यह भी कहा कि लोगों को भूलना नहीं चाहिए कि इस अवस्था में कांग्रेस की मजबूरी थी।[50] अगले दिन (6 जून) को जब प्रार्थना के पश्चात गांधी जी से पूछा गया कि "आप विभाजन रोकने के लिए उपवास करेंगे।" गांधी जी ने उत्तर दिया, "यदि कांग्रेस कोई पागलपन का कार्य करे तो क्या मतलब है कि मुझे मर जाना चाहिए।"[51] जून 1947 में कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने गांधी जी के मत को पुनः ठुकरा दिया। गांधी जी को लगा नेहरू व पटेल साथ छोड़ गये। 7 जून को उन्होंने नेहरू को एक पत्र भी लिखा कि "हमारे बीच विचारों में अन्तर उससे भी गहरा है जिसका मुझे ड़र था।" गांधी जी को आश्चर्य हुआ कि उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रांत में जनमत संग्रह पर नेहरू के विचार बिल्कुल विपरीत हैं।[52] गांधी जी ने कांग्रेस के निर्णय को गलत बताया तथा भारत के भविष्य को अन्धकारमय कहा तथा प्रार्थना की कि मेरे जीवित रहते मुझे उसका साक्षी न बनाये।[53]

यह सही है कि मुहम्मद अली जिन्ना ने लंगडे पाकिस्तान को स्वीकार करने से मना कर दिया था, परन्तु उसे लार्ड माउन्टबेटन के दबाव के कारण स्वीकार कर लिया था।[54]

3 जून 1947 को लार्ड माउन्टबेटन ने भारत विभाजन की योजना रखी। इसमें संविधान सभा का कार्य जारी रखने को कहा गया। यह भी कहा गया कि यह संविधान उन पर लागू नहीं होगा जो उसके इच्छुक नहीं हैं। दूसरे, पंजाब व बंगाल के विधान मण्डल मुस्लिम और गैर मुस्लिम जिलों के अनुसार बांटे जायेंगे। तीसरे, बलुचिस्तान के लोगों को आत्मनिर्णय का अधिकार होगा। चौथे, पंजाब, बंगाल और सिल्हट में संविधान सभा के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव होगा और भारतीय राजाओं को संप्रुता लौटा दी जाएगी।

देश के नेताओं की प्रतिक्रियाएं

इस पर भारतीय नेताओं ने अपनी-अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त कीं। कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने स्वीकृति दे दी थी। खान अब्दुल गफ्फार खां ने इसे सीमा प्रांत के लोगों के साथ 'विश्वासघात' माना। पुरूषोत्तमदास टण्डन ने पाकिस्तान की स्वीकृति करने पर कांग्रेस की कटु आलोचना की। स्वतन्त्रता से पूर्व राजनीति के चार स्तम्भ माने जाते थे। ये थे महात्मा गांधी, पं० नेहरू, पटेल व आजाद। अतः इन्हीं की प्रतिक्रियाएं तथा कुछ अन्यों के विचार जानने उपयोगी होंगे।

गांधी जी मार्च 1947 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कमेटी के प्रस्ताव से बहुत दुखी थे। 31 मार्च को गांधी जी लार्ड माउन्टबेटन से मिलने गए। लौट कर आने के पश्चात उन्हें लगा कि नेहरू व पटेल ने विभाजन के प्रश्न पर घुटने टेक दिये हैं। गांधी जी ने मौलाना आजाद से पूछा कि "क्या तुम मेरा साथ दोगे?" आजाद ने उत्तर में कहा, "मेरी आशा अब आप पर ही टिकी है।" गांधी जी ने पुनः कहा, "आप भी कैसे सवाल पूछते हैं। अगर कांग्रेस बंटवारा मंजूर करेगी तो मेरी लाश पर होगा।" उसके बाद गांधी जी माउन्टबेटन से एक तथा दो अप्रैल को भी मिले। 2 अप्रैल को गांधी जी से पटेल मिलने गये तथा गांधी जी से दो घण्टे गुप्त वार्ता की। पता नहीं क्या बात हुई। परन्तु मौलाना आजाद को गांधी जी बदले-बदले से लगे।[55] लगा गांधी जी पीछे हट गये। उन्हें सरदार पटेल तथा पं० नेहरू से सन्तोषजनक उत्तर न मिला था। इसी सन्दर्भ में गांधी जी ने 11 अप्रैल को लार्ड माउन्टबेटन को एक पत्र भी लिखा था।[56] इसमें उन्होंने विभाजन का विरोध किया तथा यहां तक कि विभाजन न करके लीग को शक्ति देने को कहा। इस पर नेहरू तथा पटेल बहुत क्रोधित हुए।

पं० नेहरू ने भारत विभाजन पर लार्ड माउन्टबेटन को प्रारम्भ में ही क्यों स्वीकृति दी यह आज भी इतिहास का रहस्य है। यह आश्चर्यजनक है कि 1947 के शुरू में ही भारत के सर्वशक्ति सम्पन्न व्यक्ति होते हुए भारत के विभाजन को रोकने में वे असमर्थ रहे। वे इस समय अंतरिम सरकार के प्रधानमन्त्री, कांग्रेस के अध्यक्ष तथा गांधी जी की प्रथम चाहत थे। लार्ड माउन्टबेटन उनके गहरे मित्र थे तथा माउन्टबेटन उन्हें एक 'शानदार', 'सर्वथा विश्वसनीय', 'काल्पनिक' तथा 'सैद्धान्तिक समाजवादी' मानते थे। यह विश्वास किया जाता है कि लार्ड माउन्टबेटन ने भारत विभाजन योजना में समर्थन प्राप्त करने के लिए प्रयास किया था तथा उसे सफलता मिली थी। उन्होंने जिन्ना से पूर्व विभाजन की स्वीकृति दी थी। पं० नेहरू ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि वे संघर्ष करते-करते थक गये थे। उन्होंने भारत के विभाजन को परिस्थितियों की मजबूरी बतलाया

है।[57] उन्हें यह भी अनुमान था कि विभाजन से देश खूनखराबे व गृहयुद्ध से बच जायेगा। उनका यह भी कहना था कि विभाजन के बिना आगामी कई वर्षों तक भारत की उन्नति रूक जाती।[58] उनके अनुसार केवल दो विकल्प थे – भारत विभाजन या गृह युद्ध। उन्होंने यह कहकर सन्तोष व्यक्त किया कि कभी-कभी पर्वतों के शिखरों पर पहुंचने के लिए घाटियों की छाया में भी चलना पड़ता है। उन्होंने कहा हम आज बंटे हैं, कल मिलने के लिए। कथनों से उनकी मानसिकता तथा महत्त्वाकांक्षा का पता चलता है।

यदि सरदार पटेल के बाद के वक्तव्यों तथा भाषणों का अध्ययन करें तो भारत विभाजन की स्वीकृति में उनकी मनोभूमिका स्पष्ट हो जाती है। उनके मुस्लिम लीग के साथ अंतरिम शासन में अनुभव बड़े कटु थे। वे लीग की सीधी कार्यवाही से बहुत विक्षुब्ध थे। उन्हें यह भी लगा कि साम्प्रदायिक दंगों को रोकने में अंतरिम सरकार असफल रही थी और न सेना पर और न ही पुलिस पर उसका नियन्त्रण रहा था। उन्हें लगा था कि मुस्लिम लीग के साथ वे काम न कर सकेंगे। पटेल ने कहा था, "एक शरीर का एक भाग खराब हो जाये तो उसे शीघ्र हटा देना चाहिए ताकि सारे शरीर में जहर न फैले। मैं मुस्लिम लीग से छुटकारा पाने के लिए भारत का कुछ भाग देने के लिए तैयार हूं।"[59] सरदार पटेल को यह लगता था कि मुस्लिम लीग की तोड-फोड़ की नीति से भारत मजबूत न होगा। उन्हें आशा थी कि "बंटवारे के बाद हम कम से कम 75 या 80 प्रतिशत तो शक्तिशाली बना सकते हैं, शेष को मुस्लिम लीग बना सकती है।[60] बाद में 3 नवम्बर 1949 में सरदार पटेल ने पुन: कहा था, "मैं देश के बंटवारे के लिए उस समय माना, जबकि इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहा। हम उस समय ऐसी अवस्था में पहुंच गये कि यदि हम देश का बंटवारा न मानते तो सब कुछ हमारे हाथ से चला जाता।"[61] उनका यह भी कहना था कि यदि इस प्रकार चलता रहा तो हमें एक पाकिस्तान नहीं, कई पाकिस्तान बनाने पड़ेंगे।

इस सन्दर्भ में मौलाना अबुल कलाम आजाद के विचार स्पष्ट थे तथा वे भारत विभाजन के पक्ष में न थे। इसी भांति पुरूषोत्तम टण्डन भारत विभाजन के कटु आलोचक थे। गोविन्द वल्लभ पंत का मत था कि आज हमें पाकिस्तान या आत्महत्या में से एक चुनना पड़ेगा।

यह सर्वमान्य है कि भारत विभाजन पर कांग्रेस संगठन भी एकमत न था। यह उल्लेखनीय है कि 14-15 जून को जब अखिल भारतीय कांगेस की बैठक हुई तो देश भर से 400 सदस्यों में से कुल 218 सदस्य आये थे। इसमें तीखी तथा लम्बी बहस हुई। इसके पश्चात 151 सदस्यों ने विभाजन के पक्ष में मत दिया।

कांग्रेस राजसत्ता की ओर

3 जून 1947 को कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग द्वारा भारत विभाजन की स्वीकृति पर तेजी से काम हुआ। माउन्टबेटन योजना को शीघ्र पूरा करने के यत्न हुए। 4 जुलाई 1947 को भारत की स्वतन्त्रता के बारे में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में बिल रखा गया। 18 जुलाई को बिल पास हो गया। अर्थात् कुल 12 दिनों में भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम 1947 को विधिवत स्वीकृति दे दी गई। इस अधिनियम में कुल 20 धारायें थीं। 1947 ई० से इण्डिया तथा पाकिस्तान नामक दो डोमिनियन स्टेट्स राज्य की स्थापना हुई। इसमें प्रत्येक डोमिनियन के लिए एक-एक गवर्नर जनरल होगा। गवर्नर जनरल की नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट करेंगे और वह डोमिनियन में सम्राट का प्रतिनिधि होगा।[62]

सत्ता का हस्तांतरण तो हुआ। परन्तु भारतीय इतिहास ही नहीं, विश्व के इतिहास में भयंकर नर-संहार, करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट होने पर तथा लाखों परिवारों के बेघर होने पर। यह उल्लेखनीय है कि विश्व के इतिहास में इससे पूर्व कभी भी जनसंख्या की इतनी अदला बदली नहीं हुई थी। 1923 ई० में ग्रीक, टर्की और बुलगेरिया में एक लाख चालीस हजार जनसंख्या की अदला-बदली हुई थी तथा इसके लिये अट्ठारह मास का पर्याप्त समय दिया गया था, परन्तु पंजाब तथा बंगाल में जनसंख्या की अदला-बदली एक करोड़ से अधिक जनसंख्या की थी तथा इसे केवल तीन महीने दिये गये थे।[63] स्वाभाविक रूप से इस आपातकाल में विश्व की महानतम जनसंख्या की अनियोजित अदला-बदली के कारण भयंकर नरसंहार, सामूहिक हत्यायें, लूटमार, महिलाओं का अपहरण तथा बलात्कार हुए। विद्वानों ने इसे गृहयुद्ध तथा उत्तराधिकार की लड़ाई के नाम से पुकारा है, दंगों का दौर मार्च में ही प्रारम्भ हो गया था जो जून से तीव्र हो गया तथा 15 अगस्त तक आते-आते भयंकरतम हो गया था। इस अदला-बदली में लगभग पांच लाख हिन्दू तथा लगभग इतने ही मुसलमान मारे गये थे। दोनों ओर से लगभग एक लाख महिलाओं का अपहरण तथा बलात्कार हुआ था।[64] सम्पत्ति की हानि का भी कोई ठिकाना ही नहीं। सत्ता प्राप्त करने वाले के सभी अन्दाजे तथा आंकड़े गलत साबित हुए। विभाजन से ऐसा नर-संहार जो कभी न सुना था और न पढ़ा था। मौलाना आजाद ने इसकी पहले ही लार्ड माउन्टबेटन को चेतावनी दी थी।[65] स्वतन्त्रता के पश्चात हिन्दू-मुस्लिम एकता भी स्थापित न हुई[66] जैसा कि कुछ कांग्रेस नेता कह रहे थे। कांग्रेस के अनेक नेता आचार्य कृपलानी, श्री राजगोपालाचारी कांग्रेस छोड़ गये। सोशलिस्ट नेताओं – जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, आचार्य नरेन्द्र देव ने कांग्रेस से नाता तोड़ दिया।[67] अनेक नये लोग कांग्रेस में आये।

आखिर 14 अगस्त की मध्य रात्रि को वह दिन आया जब माउन्टबेटन ने कांग्रेस के सर्वोच्च नेता पं० नेहरू को शक्ति का हस्तांतरण किया। 'महात्मा गांधी की जय', 'माउन्टबेटन की जय' तथा 'भारत मां की जय' के तीन नारों के साथ ब्रिटिश यूनियन जैक उतारा गया तथा भारत का राष्ट्रीय ध्वज फहराया गया। अगले दिन प्रात: पाकिस्तान तथा भारत रेडियो द्वारा प्रसारण हुआ। अंतर केवल इतना था कि जिन्ना के भाषण में जोश था जो उसने 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' कहकर खत्म किया। पं० नेहरू के भाषण में एक थका हुआ व्यक्ति बोल रहा था।[68]

अध्याय-पांच

सन्दर्भ सूची

1. डा. विकास गर्ग, राष्ट्रीय आन्दोलन में मौलाना आजाद की भूमिका (अम्बाला कैंट, 2006), पृ. 497, 503
2. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग LVII, पृ. 363
3. हरिजन, 7.7.1937; वही, भाग LXVI, पृ. 213-214
4. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग LXVI, पृ. 16-17
5. वही, भाग LXVII, पृ. 370
6. वही, भाग LXVII, पृ. 370
7. वही, भाग LXVII, पृ. 125, 468
8. ताराचन्द, हिन्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, भाग IV, पृ. 271-174
9. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग LXV, पृ. 80
10. ताराचन्द, पूर्वोक्त, पृ. 250
11. डा. विकास गर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 412
12. डा. श्याम प्रसाद मुकर्जी, द इडियन स्ट्रगल (कलकत्ता, 1942), प1. 47; देखें मुकर्जी का पत्र सर जान हरबर्ट, बंगाल गवर्नर, दिनांक 16 नवम्बर 1942
13. वही, पृ. 71
14. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग LXXXVI, (अप्रैल 1, 1942 दिसम्बर 17, 1942, नई दिल्ली, 1976), पृ. VI
15. विस्तार के लिये देखें, आर. रोटेनहम, कांग्रेस रेसपोन्सीबीलिटी फार द डिस्टरबैन्स 1942-43 (नई दिल्ली, 1943), पृ. 1-47
16. आर.सी. मजूमदार, हिस्ट्रीा आफ द फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, भाग दो (बम्बई, 1969), पृ. 711-712
17. वही, पृ. 713
18. एम.एन. मित्रा, द इण्डियन अनुअल रजिस्टर, जिल्द दो (कलकत्ता, 1945), पृ. 148-149
19. मौलाना अबुल कलाम आजाद, इण्डिया विन्स फ्रीडम (हैदराबाद, 1992), पृ. 129
20. वी.पी. मैनन, पूर्वोक्त, पृ. 237
21. डा. ताराचन्द, फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, भाग तीन (दिल्ली, 1977), पृ. 543
22. डा. विकास गर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 388

23. एस.एल. नागौरी व जीतेश नागौरी, मौलाना अबुल कलाम आजाद (जयपुर, 1996), पृ. 107
24. मौलाना अबुल कलाम आजाद, पूर्वोक्त, पृ. 158-159
25. वी.पी. मैनन, पूर्वोक्त, पृ. 294
26. मौलाना अबुल कलाम आजाद, पूर्वोक्त, पृ. 158-159
27. डा. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा, पृ. 643
28. विस्तार के लिये देखें, प्रो. दरबारा सिंह, द पंजाब ट्रेजेडी (अमृतसर, 1947), पृ. 30-56
29. मैनसर एवं लूम्बे, द ट्रांस्फर आफ पावर, भाग VIII, पृ. 190
30. लार्ड इश्मे, लार्ड माउन्टबेटन; सतीश चन्द्र मित्तल, आजाद हिन्द फौज तथा पं० नेहरू की भूमिका, पाञ्चजन्य, 17.2.2008
31. डी.जी. तेन्दुलकर, महात्मा, भाग VIII, पृ. 3
32. देखें, टायनवी से साक्षात्कार, 27 जून 1971 को
33. मैंसर एवं लूम्बे, द ट्रांस्फर आफ पावर, भाग VIII, (241), पृ. 386
34. वही; द ट्रिब्यून 3.9.1946
35. वही
36. हिन्दू आउटलुक, 10.9.1946, 3.10.1946
37. मैंसर एवं लूम्बे, द ट्रांस्फर आफ पावर, भाग VIII, (504), पृ. 801; केवल के. पंजाबी, द इनडोमिटेबिल सरदार (बम्बई, 1962), पृ. 123
38. वही
39. वही (513, पृ. 806
40. उद्धरित, एस.एल. नागौरी एवं जीतेश नागौरी, पूर्वोक्त, पृ. 114
41. प्यारेलाल, महात्मा, भाग दो, पृ. 153
42. मैंसर एवं लूम्बे, द ट्रांस्फर आफ पावर, भाग IX (526), पृ. 927
43. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग LXXXVII, पृ. 138 (देखें, 29 मार्च 1947-गांधी जी का सरदार पटेल को पत्र)
44. वही, भाग LXXXVII (24 मार्च 1947 सरदार पटेल का गांधी जी को पत्र)
45. मौलाना अबुल कलाम आजाद, पूर्वोक्त, पृ. 183; एस.एल. नागौरी व जीतेश नागौरी, पूर्वोक्त, पृ. 112
46. वही, पृ. 182-183; वही पृ. 112

47. दुर्गादास, इण्डिया फ्राम कर्जन टू नेहरू एण्ड आफ्टर, पृ. 254
48. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग LXXXVIII, पृ. 50-51
49. विस्तार के लिए देखें रघुवीर तंवर, रिपोर्टिंग द पार्टिशन आफ पंजाब, प्रैस, पब्लिक एण्ड अदर ओथेनियन्स (नई दिल्ली, 2006), पृ. 103; द ट्रिब्यून 7.8.1947
50. वही, द ट्रिब्यून, 5.6.1947
51. वही; वही, 6.6.1947
52. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग LXXXVIII, पृ. 94
53. वही, LXXXVIII, पृ. 50-51
54. प्यारेलाल, पूर्वोक्त, भाग दो, पृ. 215
55. मौलाना अबुल कलाम आजाद, पूर्वोक्त, पृ. 186-187
56. महात्मा गांधी, महात्मा गान्धीज कोरसपोन्डेन्स विद द गवर्नमेन्ट 1944-1947 (अहमदाबाद, 1959), पृ. 244
57. माइकेल ब्रीचर, नेहरू : द पालिटिकल बायोग्रेफी, पृ. 337
58. वही
59. वही
60. वी.पी. मेनन, पूर्वोक्त, पृ. 385
61. प्यारेलाल, पूर्वोक्त, पृ. 154
62. डा. ताराचन्द, फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, भाग IV, पृ. 617
63. सतीशचन्द्र मित्तल, पंजाबी विस्थापितों का हरियाणा में आगमन, हरियाणा इन्साइक्लोपीडिया
64. वही
65. डा. विकास गर्ग, पूर्वोक्त, पृ. 413
66. इरफान अहमद, 'फ्रीडम फ्राम बिग् आर्ट, इ टाइम्स आफ इण्डिया, 21.2.2006
67. द टाइम्स आफ इण्डिया, 23.2.2008
68. ऐ.एन. बाली, नाउ इट कैन बी टोल्ड, पृ. 23

अध्याय-छः
कांग्रेस का बदलता संवैधानिक ढ़ांचा

ए.ओ. हयूम ने 1885 ई० में कांग्रेस की स्थापना करते समय किसी 'पार्टी' की स्थापना न की थी, बल्कि एक राजनीतिक मंच बनाया था। इसका उद्देश्य हयूम के जीवन काल में अंग्रेजी राज्य की सुरक्षा तथा बाद में जो महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत में स्वराज्य (डोमिनियन स्टेट्स) बन गया था। वस्तुतः इसका पार्टी का स्वरूप 15 अगस्त 1947 के पश्चात बना, जब गांधी जी ने स्वतन्त्रता के पश्चात इसे समाप्त कर एक नया दल 'लोक सेवक संघ' बनाने को कहा, परन्तु सत्ता सुख भोगने को आतुर तत्कालीन नेताओं ने इसे अस्वीकार किया। तभी से कांग्रेस एक राजनीतिक पार्टी बन गई थी। 1885 ई० में कांग्रेस का मंच स्थापित करते समय इसका न कोई संविधान, न कोई नियमावली, न कोई निश्चित कार्यक्रम, न कोई आर्थिक व्यवस्था और न ही कोई समुचित संगठनात्मक कल्पना थी। पहले अधिवेशन का कर्ताधर्ता मि० हयूम ही था। वह इस संगठन का स्वयंभू महासचिव था। यद्यपि वह 1894 ई० में भारत से वापस इंग्लैण्ड चला गया था उसकी मृत्यु 1912 ई० में हुई थी, परन्तु वह भारत में न रहते हुए भी 1906 ई० तक कांग्रेस का महासचिव बना रहा था।[1] 1895 ई० से हयूम के साथ दूसरा महासचिव बनाने की परम्परा कांग्रेस में शुरू हुई थी।[2]

कांग्रेस का अधिवेशन प्रति वर्ष कुल मिलाकर क्रिसमस की छुट्टियों में तीन दिन का होता था। कुछ ने इसे तीन दिन का 'महा तमाशा' भी कहा है। कांग्रेस के सभी सदस्य अच्छी अंग्रेजी पढ़े-लिखे मध्यम वर्गीय थे। वे भी सामान्यतः आदर्श रूप में ब्रिटिश संविधान की भांति अलिखित संविधान में आस्था रखते थे। अतः प्रारम्भ में कांग्रेस का कोई लिखित संविधान न था। वैसे ही कांग्रेस संगठन का स्वरूप लम्बे रूप से समतल (Vertical to horizontal) की ओर था। अतः इसका निर्माण केन्द्र से नीचे की ओर बना था अर्थात् इसकी निर्मिती गांव से उठकर नगर, जिले, प्रांत तथा केन्द्र की ओर न हुई थी। वल्तुतः यह ढ़ांचा अच्च मध्यमवर्ग से जनता तक (classes to masses) था।

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में केवल इतना स्वीकृत किया गया कि अगला अधिवेशन कलकत्ता में होगा।[3] इसी भांति कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन कलकत्ता में देश के महत्त्वपूर्ण केन्द्रों

पर स्थाई समितियों की स्थापना का प्रस्ताव पारित किया गया था।[4] तीसरा अधिवेशन मद्रास में हुआ था। इसमें बंगाल तथा महाराष्ट्र के प्रतिनिधियों की संख्या अच्छी मात्रा में थी। अतः उनके तथा महादेव गोविंद रानाडे के व्यक्तिगत प्रयत्नों से विषय समितियों की स्थापना के लिए प्रस्ताव स्वीकार किया गया था।[5] कांग्रेस के चौथे अधिवेशन से जो इलाहाबाद में हुआ था, संविधान में विषय समिति के द्वारा निर्णय लिया गया कि कोई भी ऐसा विषय नहीं लिया जायेगा जिसे हिन्दू या मुसलमान प्रतिनिधि बड़ी संख्या में न चाहेंगे।[6] परन्तु यह विवाद का विषय हो सकता है कि हिन्दू तथा मुसलमानों के सन्दर्भ में पहली बार इस प्रस्ताव से हिन्दू-मुसलमान में अलगाव बढ़ा या यह मुसलमानों को खुश करने का पहला प्रयत्न था। पर यह सत्य है कि कांग्रेस में प्रतिनिधियों की संख्या निरंतर बढ़ रही थी। कांग्रेस के प्रतिनिधियों की बढ़ती संख्या को निम्न तालिका से देख सकते हैं।[7]

वर्ष	कुल प्रतिनिधि चुने गए	कुल प्रतिनिधि जो आये
1885	–	72
1886	500	434
1887	760	607
1888	1500	1248
1889	2500	1889

कांग्रेस के पांचवें अधिवेशन में प्रतिनिधियों की बढ़ती संख्या को कम करने का प्रयत्न किया गया तथा अधिवेशन में प्रतिनिधियों की संख्या 1000 निश्चित की गई।[8] उल्लेखनीय है कि 1889 ई० में प्रतिनिधियों की संख्या भी 1889 थी तथा 1914 ई० तक यही सर्वाधिक ही रही। सम्भवतः इसका मुख्य कारण यह था कि मि० हयूम इसे जनाधार नहीं देना चाहता था।[9] बल्कि वह प्रारम्भ से ही किसी सम्भावित जन विद्रोह से सशंकित था। उसका एक अन्य कारण यह भी था कि कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशनों पर नित्य खर्च बढ़ता जा रहा था। इस सन्दर्भ में नियमों के बार-बार परिवर्तन होते रहे, पर यह भी व्यवहार में नहीं आया।

संक्षेप में मि० हयूम के 1894 ई० तक भारत में रहते हुए समय-समय पर विभिन्न अधिवेशनों मं मामूली संशोधन, नियम तथा उपनियम बनते रहे। 1894 ई० के अधिवेशन में पहली बार पूना की स्थाई समिति को एक सविधान बनाने की स्वीकृति दी गई, परन्तु अगले कई

वर्षों तक कोई कार्यवाही नहीं की गई। 1898 ई० में कांग्रेस के दसवें अधिवेशन में संविधान बनाने के लए 9 व्यक्तियों की एक समिति भी गठित की गई।[10] 1899 के लखनऊ अधिवेशन में संविधान बनाने के लिए अधिकृत स्वीकृति मिली तथा 45 सदस्यों की एक समिति बनाई गई जिसने शीघ्र ही अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी (ए.आई.सी.सी.) का रूप ले लिया। यही कांग्रेस की सर्वशक्तिशाली समिति बनी जो नियमों का निर्धारण करना, प्रस्ताव को पारित करना तथा कांग्रेस अध्यक्ष को नामजद करती थी। इसी आधार पर तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नरों द्वारा बने सात प्रांतों के आधार पर प्रांतीय समितियों को बनाने को कहा गया।[11]

पर अभी तक कोई विधिवत संविधान न था। 1904 ई० में पुन: संविधान की विस्तृत योजना बनाने के लिए कहा गया[12] तथा 21 व्यक्तियों की एक समिति बनाई गई। 1907 ई० के कांग्रेस अधिवेशन में जब उदारवादियों तथा राष्ट्रवादियों में परस्पर टकराव हुआ जिसे 'सूरत की फूट' भी कहा जाता है, इसने कांग्रेस का एक संविधान बनाने के लिए बाध्य किया। अत: 28 दिसम्बर 1907 को ही संविधान बनाने के लिए एक नेशनल कन्वेशन को गठित किया गया। संविधान बनाने का तत्काल कारण राष्ट्रवादियों को कांग्रेस से निष्कासित करना था। यह सम्भावना है कि ब्रिटिश सरकार का भी इसमें अनुमोदन रहा हो, क्योंकि वे पहले से ही राष्ट्रवादियों से असन्तुष्ट थे। विचारणीय मुद्दा यह है कि गत पहले 22 वर्षों तक संविधान के निर्माण को गम्भीरता से क्यों नहीं लिया? क्या ब्रिटिश सरकार के कोप भाजन बनने का भय था? कांग्रेस के अधिकतर नेता, ब्रिटिश सरकार के विपरीत लिखित संविधान बनाने के पक्ष में क्यों नहीं थे?[13]

सूरत की फूट के पश्चात अप्रैल 1908 में इलाहाबाद में कांग्रेस का पहला संविधान बनाया गया। इसमें कुछ विशिष्ट नियम तथा उपनियम बनाये गए। इसका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत को स्वशासित राज्य बनाने को कहा गया। पहली बार कांग्रेस में 1/5 भाग मुसलमानों के लिए आरक्षित किये गये तथा अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा की गारंटी दी गई तथा इन्हें भारत की राजनीति के लिए आवश्यक बतलाया गया।[14] वस्तुत: कांग्रेस के चौथे अधिवेशन के पश्चात ही हिन्दू-मुस्लिम विभेद की तथा मुस्लिम तुष्टीकरण की शुरूआत हो गई थी। संविधान में 1910 ई०, 1911 ई० तथा 1912 ई० में मामूली परिवर्तन किये गए।

उल्लेखनीय है कि 1915 ई० में गांधी जी भारत वापिस लौटे। उन्हें कांग्रेस का संविधान देखकर आश्चर्य हुआ। इससे अच्छा तो उन्हें नेटाल इण्डियन कांग्रेस का संविधान व्यवस्थित लगा। उन्हें कांग्रेस का संविधान न देशव्यापी और न सामाजिक आधारयुक्त लगा। वे प्रतिनिधियों

के चुनाव के बारे में असन्तुष्ट थे। उन्होंने 1915, 1916, 1917 ई० क्रमश: बम्बई, लखनऊ तथा कलकत्ता अधिवेशनों में भाग लिया।

उल्लेखनीय है कि कांग्रेस के 1919 ई० के अधिवेशन में, अमृतसर में कांग्रेस के इतिहास में पहली बार वोटिंग की नौबत आई।[15] जबकि गांधी जी ने 1918 ई० के मांटेग्यू-चैम्सफोर्ड सुधार नियम के सन्दर्भ में प्रस्ताव में 'निराशाजनक' शब्द हटाने को कहा।[16] परन्तु किसी भंति समझौता हो गया।[17]

गांधी जी ने कांग्रेस की कायापलट करने का निश्चय किया। कांग्रेस के लिए एक नये संविधान की आवश्यकता महसूस की गई। कांग्रेस को नया रूप देने के लिए एक कमेटी गठित की गई। इसके सदस्य गांधी जी, एन०सी० केलकर, रंगास्वामी आयंगर, आई०बी०सेन व देशबन्धु चितरंजन दास थे। इसका मुख्य उद्देश्य कांग्रेस के संविधान तथा कांग्रेस के विभिन्न भागों में आर्थिक देन-लेन की जांच करना था।[18] कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में फिजूलखर्ची की कटु आलोचना की गई थी।[19] गांधी जी ने इस नये संविधान बनाने में बड़ी तत्परता दिखलाई। गांधी जी के अलावा प्राय: अन्य सदस्यों ने उदासीनता दिखलाई। गांधी जी ने संविधान का प्रारूप तैयार कर अन्य सदस्यों के विचारार्थ भेजा।[20] संशोधित प्रारूप कांग्रेस के सितम्बर 1920 के कलकत्ता अधिवेशन में रखा गया। आखिर दिसम्बर 1920 के नागपुर अधिवेशन में इस नवीन संविधान को स्वीकार कर लिया गया। यह संविधान बहुत कुछ गांधी जी की नेटाल इण्डियन कांग्रेस के अनुरूप था। कुछ विद्वानों ने गांधी जी की इस संविधान को उनकी महानतम देन माना है। इस संविधान में 31 अनुच्छेद तथा 2 परिशिष्ट हैं।[21] 1908 ई० के संविधान के कुछ शब्दों को हटा दिया गया।[22] अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। अब देश भर में केन्द्र से लेकर नगर, कस्बे तथा ग्रामों में कांग्रेस की कमेटियां स्थापित करने को कहा गया।[23] अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के स्वरूप को भी बदला। कांग्रेस की दृष्टि से नये प्रांतों की रचना सरकार के अनुसार न करके भाषावार प्रांतों के आधार पर की गई। 15 व्यक्तियों की एक कार्यसमिति बनाई गई जो वर्ष भर तक कार्यरत होगी जिसने बाद में कार्यकारिणी का रूप ले लिया।[24] कांग्रेस की सदस्यता के जो व्यक्ति व्यस्क मताधिकार के आधार पर 21 वर्ष की आयु का तथा लिखित रूप से कांग्रेस के कार्य में पूरी आस्था रखता हो, सदस्यता के लिए आवश्यक कर दिया गया।[25] संविधान में यह भी स्पष्ट किया गया कि यह न कोई पार्टी संगठन है और न ही उदारवादियों या राष्ट्रवादियों का संगठन है।[26] संविधान में 1924 ई० में मामूली संशोधन हुआ, अन्यथा यह 1929 ई० तक चालू रहा। 1929 ई० में पुन: अनुच्छेद एक में संशोधन किया। देश की बदलती हुई परिस्थितियों को ध्यान

में रखते हुए अनुच्छेद एक में परिवर्तन के साथ गांधी जी ने अनेक सुझाव दिये जो इतिहास में '23 आर्टिकिल्स' के नाम से प्रसिद्ध हैं।[27] नागपुर संविधान में परिवर्तन से पूर्व एक विषय समिति की उपसमिति बनाई गई जिसमें गांधी जी, भोलाभाई देसाई, के०एम० मुन्शी, पट्टाभि सीतारमैया व जयराम दौलतराम थे। समिति ने पूर्व के संशोधनों को पूर्णत: संशोधित किया। परन्तु केन्द्रीय विषय समिति के अधिकतर सदस्यों ने इसे स्वीकार न किया। अधिकतर ने उप समिति द्वारा सुझाव मार्ग के सन्दर्भ में 'शांतिपूर्ण तथा विधायक मार्ग' के स्थान पर 'सच्चाईपूर्ण तथा अहिंसा मार्ग' को स्वीकार न किया। अत: इसे सम्मिलित नहीं किया गया।

1940 ई० में रामगढ़ अधिवेशन के पश्चात अगले पांच वर्षों तक कांग्रेस का कोई अधिवेशन न हुआ। जून 1945 में गांधी जी के कारागार से मुक्त होने पर देश की बदलती हुई परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सितम्बर 1945 में संविधान पर पुन: विचार करने के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। इसके लिए पांच सदस्यों की एक समिति गठित की गई। इसके सदस्य थे डा. राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य नरेन्द्र देव, पट्टाभि सीतारमैया, आर०आर० दिवाकर व जे०बी० कृपलानी। सदस्यों ने विचार करते समय बार-बार गांधी जी की राय ली। गांधी जी ने स्वयं भी एक हिन्दी में प्रारूप तैयार किया। जनवरी 1946 में उन्होंने यह तैयार करके समिति के सदस्यों को भेजा।[28] उल्लेखनीय है कि नवम्बर तक कांग्रेस की कार्यसमिति तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने गांधी जी के सुझावों पर कोई ध्यान नहीं दिया। बदलती हुई परिस्थितियों में कांग्रेस ने एक नवीन समिति गठन की बात की।[29] बात स्पष्ट थी, गांधी जी द्वारा तैयार प्रारूप स्वीकार न था। गांधी जी सदस्यों के इस दम्भी स्वभाव से बहुत परेशान हुए।

गांधी जी चाहते थे कि बदलती हुई परिस्थितियों में अब कांग्रेस देश के सामाजिक तथा आर्थिक विकास की ओर ध्यान दे। अत: उन्होंने समिति के एक सदस्य को जनवरी 1947 में एक पत्र भी लिखा।[30] इसमें उन्होंने कांग्रेस के संविधान को संशोधित करते हुए सुझाव दिया कि अब कांग्रेस में देश की पूरी आबादी यानि 40 करोड़ कांग्रेस के सदस्य होने चाहिएं। परन्तु कांग्रेस के कार्यकर्ता वही होंगे जो कम से कम एक वर्ष से खद्दर पहनते हों, छुआछूत न मानते हों, विदेशी वस्त्रों का उपयोग न करते हों तथा नशीले पदार्थों का प्रयोग न करते हों। साथ ही वे रचनात्मक कार्यों में विश्वास रखते हों।

गांधी जी ने कांग्रेस को पूर्णत: समाप्त करने का भी प्रस्ताव किया। 30 जनवरी 1948 को हत्या से पूर्व उन्होंने कांग्रेस के महासचिव आचार्य जुगल किशोर को अपने द्वारा बनाया एक

संविधान भी दिया जो उनकी मृत्यु के पश्चात 'हिज लास्ट विल एण्ड टेस्टामेन्ट' के नाम से प्रकाशित हुआ।[31] वस्तुत: वे भारत में पंचायत राज चाहते थे तथा उनकी इच्छा थी कि अब कांग्रेस को समाप्त कर दिया जाए तथा इसका नाम लोक सेवक संघ रख दिया जाये।[32] परन्तु देश के कांग्रेसी नेता महात्मा गांधी की अंतिम इच्छा पूरा करने को तैयार न थे बल्कि उन्हें राजसत्ता दिखलाई दे रही थी। अत: अब कांग्रेस 'राष्ट्रीय संगठन' न रहकर राजनीतिक पार्टी बन गई।

अध्याय-छः

सन्दर्भ सूची

1. आर.पी. अय्यर व एल.एस. भण्डारी, पूर्वोक्त, पृ. 53
2. वही, पृ. 30
3. देखें, प्रस्ताव क्रमांक IX रिपोर्ट आफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस, कलकत्ता, 1986
4. वही, प्रस्ताव क्रमांक XII
5. रिचर्ड टयूकर, रानाडे एण्ड द रूट्स आफ इण्डियन नेशनलिज्म (बम्बई, 1977), पृ. 200
6. प्रस्ताव क्र XIII, रिपोर्ट आफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस, इलाहाबाद, 1888
7. देखें, कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशन की रिपोर्ट्स 1885-1889 तक; ऐनी बेसेन्ट, हाउ इण्डिया रोट फार फ्रीडम (दिल्ली रीप्रिंट, 1973)
8. रिपोर्ट आफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस, बाम्बे, 1889; ऐनी बेसेन्ट, पृ. 90
9. एस.सी. मित्तल, 'महात्मा गांधी एण्ड द कांग्रेस आर्गनाईजेशन', (देखें एस.एल. मल्होत्रा), गांधी एण्ड द इण्डियन नेशनल कांग्रेस (चण्डीगढ़, 1988) पृ. 44-45
10. रिपोर्ट आफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस 14वां अधिवेशन, मद्रास 1898
11. रिपोर्ट आफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस
12. रिपोर्ट आफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस 20वां अधिवेशन, बम्बई 1904
13. ऐ.सी. मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 63
14. रमण राव, द डवलपमेन्ट आफ द कांग्रेस कांस्टीट्यूशन (दिल्ली, एआईसीसी प्रकाशन, 1958), पृ. 111
15. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग XVI, पृ. 483; यंग इण्डिया, 14.1.1920
16. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग XVI, पृ. 364
17. वही, भाग XVI, पृ. 465; पी.सी. राय चौधरी, गांधी ऐंड हिज कन्टेम्पेरेरीज (जालन्धर, 1972), पृ. 61
18. वही, भाग XVI, पृ. 469
19. वही, भाग XVI, पृ. 465
20. वही, भाग XVI, पृ. 489
21. विस्तृत वर्णन के लिये देखें, एस.एल. मल्होत्रा, पूर्वोक्त, पृ. 9-12

22. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग XVIII, पृ. 239; भाग XIX, पृ. 190-198; यंग इण्डिया 3.11.1920; रिपोर्ट आई.एन.सी.सी. 35वां अधिवेशन : एम.के. गांधी ऐन आटोबायोग्रेफी ओर सम एक्सपेरीमेन्ट विद ट्रुथ (अहमदाबाद, 1963 संस्करण), पृ. 307
23. डी.ए. लो (सम्पादित), कांग्रेस एण्ड द राज (लन्दन, 1977), पृ. 14; गोपाल कृष्ण, द डवलपमेन्ट आफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस ऐज ऐ मास आर्गेनाईजेशन (1918-1923), जनरल आफ ऐशियन स्टेडीज, भाग XXV, 3 मई 1966, पृ. 913-930
24. ज्योफरी ऐशे, गांधी : ऐ स्टेडी इन रेव्यलूशन (लन्दन, 1968), पृ. 208
25. यंग इण्डिया, 30.3.1921; सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग XX, पृ. 187
26. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग XIX, पृ. 173; भाग XVII, पृ. 370
27. वही, भाग LIX, पृ. 69
28. रमणराव, पूर्वोक्त, पृ. 69
29. वही, पृ. 69
30. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग LXXXVI, पृ. 370
31. यंग इण्डिया, भाग XII, पृ. 12
32. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग XC, पृ. 526-527

अध्याय-सात

पूर्ण स्वतन्त्रता कभी कांग्रेस का लक्ष्य नहीं रहा

यह कटु सत्य है कि देश की स्वतन्त्रता कांग्रेस ने दिलाई। यह भी आंशिक रूप से अर्द्धसत्य है कि भारत विभाजन के लिए कांग्रेस पूरी तरह से दोषी है। यह भी भ्रमपूर्ण है कि देश को पूर्ण स्वतन्त्रता मिली। क्रांतिकारी अवश्य भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग करते रहे, परन्तु देश की युवा पीढ़ी आज भी इन तथ्यों से अपरिचित है। सच्चाई यह है कि कांग्रेस ने अपने 1885-1947 ई० तक इतिहास में अंग्रेजों को खदेड़कर कभी पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग ही नहीं की और न कभी ब्रिटिश शासन ने इसे स्वीकार ही किया।

कांग्रेस के इतिहास में दिये गये तथ्यों के आधार पर यह सहज रूप में ही स्पष्ट हो जाता है। कांग्रेस के बदलते हुए संविधान तथा समय-समय पर कांग्रेस के प्रमुख नेताओं के वक्तव्यों, भाषणों तथा कांग्रेस के विभिन्न समितियों द्वारा पारित प्रस्तावों से यह पूर्णतः प्रमाणित होता है। इसके अति संक्षेप सवेक्षण से इसे समझा जा सकता है।

यह सर्वविदित है कि कांग्रेस के जन्मदाता मि० हयूम का इसकी स्थापना के पीछे ब्रिटिश राज्य की सुरक्षा और निरन्तरता बनाये रखना था।[1] 1885 से 1905 ई० तक कांग्रेस की मुख्य कार्यक्रमों का स्वरूप केवल क्रिसमस की छुट्टियों में प्रतिवर्ष भारत के किसी न किसी प्रांत में कांग्रेस का तीन दिन का अधिवेशन करना रहा। इस काल में कांग्रेस का लक्ष्य सरकारी नौकरियों में भारतीयों का स्थान तथा सुविधायें प्राप्त करना था। देश की स्वतन्त्रता के लिए इस काल में एक भी वाक्य किसी भी कांग्रेसी नेता या अधिवेशनों के अध्यक्षों द्वारा नहीं कहा गया। कांग्रेस के इतिहास में 'स्वराज्य' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग लोकमान्य तिलक ने किया।[2] कांग्रेस मंच से दादाभाई नौरोजी ने 1906 ई० के अपने अध्यक्षीय भाषण में इसका प्रयोग किया।[3] परन्तु इसका अर्थ किसी भी रूप में अंग्रेजों से भारत की मुक्ति के अर्थ में न था। लोकमान्य तिलक ने 'स्वराज्य', महर्षि अरविन्द ने 'राजनीतिक स्वतन्त्रता' तथा गांधी जी ने 'हिन्द स्वराज्य' शब्दों का प्रयोग अवश्य किया, परन्तु ये सभी शब्द पूर्ण स्वतन्त्रता की कल्पना के दायरे से 'बाहर' थे।

1907 ई० की कांग्रेस की फूट के पश्चात, 1908 ई० में उदारवादियों द्वारा बनाई नेशनल कन्वेशन में पहली बार कांग्रेस का संविधान बनाया गया। इसमें स्पष्ट रूप से कांग्रेस का

लक्ष्य एक ऐसे स्वराज्य की मांग की गई जो ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासित सदस्यों के समान हो। (Similar to that enjoyed by self-governing members of the British Empire)[4]

इसके लिए कठोरतापूर्वक संवैधानिक मार्ग बतलाया तथा कांग्रेस की सदस्यता के लिए 21 वर्ष की आयु तथा लिखित रूप से आवेदन की बात कही गई, जिसमें उपरोक्त लक्ष्य तथा मार्ग अपनाने की स्वकृति हो। कांग्रेस का यही उद्देश्य बिना विवाद के अनेक वर्षों तक चलता रहा। 1915 में पुनः इसी उद्देश्य को दोहराया गया तथा इसे संवैधानिक मार्ग से ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन की प्राप्ती कहा। (The attainment of self-government within the British Empire by constitutional means)[5] इसी भांति 1916 ई० में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने मिलकर एक योजना ब्रिटिश सरकार के सम्मुख रखी जिसे भारत तथा साम्राज्य (India and the Empire) का नाम दिया गया। इस सन्दर्भ में 1917 ई० में दोनों का एक सम्मिलित प्रतिनिधि मण्डल भारत मन्त्री मि० मान्टेग्यू से मिला था, जिसमें उन्होंने भारत के लिए डोमिनियन स्टेट्स की मांग निम्न शब्दों में की थी, "किसी संकट या संघर्ष में, एक सन्तुष्ट स्वशासित भारत साम्राज्य के लिए महानतम तथा पक्की पूंजी होगी (In any crisis or struggle, a contended self-governing India is the greatest and surest asset of the Empire)[6] इसी काल में लोकमान्य तिलक व मिसेज ऐनी बेसेन्ट ने देशव्यापी (Home Rule) आन्दोलन भी चलाया था।

यह भी सत्य है कि प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918 ई०) के दौरान कांग्रेस के अनेक शीर्षस्थ नेता 'स्वराज्य' की मांग को भूलकर अंग्रेजी साम्राज्य की सुरक्षा में जुटे थे। यहां तक महात्मा गांधी जो 1915 ई० में भारत वापिस लौट आये थे, इस समय भारतीयों का कर्तव्य अंग्रेजों के प्रति पूरी वफादारी बतला रहे थे। उन्होंने 1915 ई० में वायसराय को एक पत्र में लिखा, "अगर मैं अपने देशवासियों का कदम, अपने पीछे ला सका तो समस्त कांग्रेस प्रस्तावों को ले लूंगा तथा युद्ध में गृहशासन या उत्तरदायी शासन' की मांग नहीं करूंगा।" इतना ही नहीं, उन्होंने अपने आपको 'ब्रिटिश सार्जेन्ट' कहा। 3 जून 1915 को ब्रिटिश साम्राज्य की सेवा हेतु उन्हें 'केसरी हिन्द' का पदक भी दिया गया।

इसके साथ ही गांधी जी ने कांग्रेस के क्रिया कलापों को निकट से देखा। उन्होंने कांग्रेस के नेताओं के लम्बे-लम्बे भाषणों, वक्तव्यों तथा पेटीशनों को देखा पर उन्हें यह कोई सकारात्मक कार्य नहीं लगा। उन्होंने लिखा[7], "भाषणों में स्वराज्य या स्वशासन की घोषणा नदारद थी। प्रस्तुत किये गये किसी भी पत्रों में स्वशासन का नाम भी न था।" प्रथम महायुद्ध के पश्चात जब ब्रिटिश सरकार ने 1919 ई० अधिनियमों द्वारा भारतीय भावनाओं की जरा सी भी कद्र न थी, 1919 ई० में

कांग्रेस मंच पर गांधी जी के आगमन से नई आशायें बढ़ीं। गांधी जी ने कांग्रेस को जनाधार देने के लिए कांग्रेस के संविधान में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये। कांग्रेस के लक्ष्य में भी कुछ संशोधन किये गये। गांधी जी ने उदारवादियों तथा राष्ट्रवादियों को जोड़ने तथा एक मंच पर लाने के लिए नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस का लक्ष्य शांतिपूर्ण तथा कानूनी तरीकों से भारत के जनता द्वारा स्वशासन की प्राप्ती (the attainment of self government by the people of India by all peaceful and legitimate means.)[8] बताया। इस संविधान में 31 अनुच्छेद व दो परिशिष्ट थे। लक्ष्य सम्बन्धी अनुच्छेद एक पर लम्बी बहस हुई। मदन मोहन मालवीय व एम०ए० जिन्ना चाहते थे कि स्वराज्य का लक्ष्य केवल ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रखा जाये, परन्तु यह संशोधन भारी बहुमत से स्वीकृत न हुआ।[9] जिन्ना ने उद्देश्य की पूर्ति के लिए तरीकों का विरोध किया।[10] गांधी जी ने अंग्रेजों के साथ सम्बन्धों को बनाये रखना, भारतीयों के हितों में बतलाया।[11] गांधी जी ने यह भी कहा, "मेरे लिए व्यक्तिगत रूप से, यह एक धार्मिक मामला है कि मैं स्वराज्य हिंसात्मक ढ़ंग से लूं। यदि इस ढ़ंग से नहीं लिया तो मैं मोक्ष भी नहीं चाहता जो हिंसात्मक ढ़ंग से सम्भव हो।"[12]

अहमदाबाद अधिवेशन में हसरत मोहानी ने एक प्रस्ताव रखा जिसमें उसने 'स्वराज्य' को सभी विदेशी नियन्त्रण से मुक्त पूर्ण स्वतन्त्रता के रूप में स्पष्ट करने को कहा। उसके इस प्रस्ताव का प्रतिनिधियों ने स्वागत किया, परन्तु गांधी जी ने इसका प्रतिरोध किया तथा कहा कि यह (प्रस्ताव) उस गहराई की ओर ले जायेगा जो नापी नहीं जा सकती।[13]

परस्पर टकराव की स्थिति को कम करने के लिए गांधी जी ने 'एक वर्ष में स्वराज्य' भी कहा, परन्तु कई नेताओं ने गांधी जी के इस कथन पर विश्वास नहीं किया। असन्तुष्ट नेताओं में मोतीलाल नेहरू व चितरंजन दास ने इसे व्यवहारिक न मानकर 1923 ई० के प्रारम्भ में ही कांग्रेस के अन्तर्गत 'स्वराज्य दल' का निर्माण किया।

कांग्रेस का स्पष्ट रूप से लक्ष्य अब स्वराज्य अर्थात डोमिनियन स्टेट्स हो गया। इसका अर्थ था 'ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन'। ब्रिटिश सरकार तथा उनके अधिकारियों ने तथा तत्कालीन ब्रिटिश दस्तावेजों में बार-बार इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया गया। 1926 की इम्पीरियल कौंसिल में इसकी विस्तृत व्याख्या तथा स्पष्टीकरण किया गया।[14]

"ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वायत्त समुदाय, स्थिति में समान, किसी भी ढ़ंग से एक-दूसरे के किसी भी घरेलू या विदेशी मामलों में एक-दूसरे के अधीन नहीं, परन्तु क्राउन के प्रति भक्ति में साथ जुड़े हुए हैं और स्वतन्त्रता से ब्रिटिश कामनवेल्थ के राष्ट्रों के सदस्य के रूप

में हैं।"

कामनवेल्थ के निर्माण पर डोमिनियनों का नाम 'राष्ट्रों का सदस्य' (Member Nations) या देशों का सदस्य (Member Countries) भी कहा गया। इसके साथ उन्हें 'स्वशासित देशों के डोमिनियन' नाम भी दिया गया। इसी भांति 1931 ई० के वेस्ट मिनिस्टर स्टेच्यू में और भी अधिक स्पष्ट किया गया।[15]

1928 ई० में नये भारत के संविधान की रचना के लिए बम्बई में एक सर्वदलीय कांफ्रेंस हुई। मई 1928 में इसी कांफ्रेंस के द्वारा एक नये संविधान प्रस्तुत करने के लिए व मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की गई, जिसने अपने सुझाव के साथ संविधान का एक प्रारूप तैयार किया जो 'नेहरू रिपोर्ट' कहलाती है। इसमें कहा गया कि-

"भारत ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत राष्ट्रों के देशों डोमिनियन्स आफ कैनेड़ा, कामनवेल्थ आफ आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि जैसा संवैधानिक स्टेट्स चाहेगा।"

उपरोक्त रिपोर्ट की चर्चा कांग्रेस के 1928 ई० के कलकत्ता अधिवेशन में हुई। इस रिपोर्ट को कांग्रेस के दो प्रमुख युवाओं - सुभाष चन्द बोस तथा पं० जवाहरलाल नेहरू ने तीव्र विरोध किया तथा भारत के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग रखने को कहा। तब गांधी जी ने डोमिनियन स्टेट्स का समर्थन करते हुए कहा कि यह एक महान भूल होगी, यदि हम डोमिनियन स्टेट्स के बिना स्वतन्त्रता की मांग करें।[16] अत: प्रस्ताव स्वीकार न हुआ। इसी अधिवेशन में यह भी मांग की कि भारत की डोमिनियन स्टेट्स की मांग अंतिम रूप से 31 दिसम्बर 1930 मान ली जाये। परन्तु बाद में यह तारीख 31 दिसम्बर 1929 कर दी गई थी।

आगामी 1929 ई० के कांग्रेस अधिवेशन से पूर्व 31 अक्टूबर 1929 का अर्थात दो महीने पहले भारत के वायसराय लार्ड इरविन ने भारत के लक्ष्य डोमिनियन स्टेट्स को ही बतलाया, पर साथ ही प्रथम गोलमेज कांफ्रेंस की घोषणा की तथा इसके बारे में निर्णय की बात की।[17]

वायसराय की घोषणा के पश्चात सभी दलों के नेता 3 नवम्बर 1929 को दिल्ली में एकत्रित हुए तथा एक घोषणा पत्र तैयार किया जो 'दिल्ली का घोषणा पत्र' कहलाता है। इस पर हस्ताक्षर करने वालों में लगभग डेढ़ दर्जन व्यक्तियों में से प्रमुख गांधी जी, ऐनी बेसेन्ट, तेजबहादुर सप्रू, मोतीलाल नेहरू एवं पं० जवाहरलाल नेहरू थे। इसमें कहा गया[18], "हम घोषणा के अन्दर छिपी ईमानदारी को महसूस करते हैं। हम आशा करते हैं कि भारत की आवश्यकताओं के उपयुक्त डोमिनियन स्टेट्स संविधान की योजना बनाने की चेष्टा में हम महामहिम सरकार को

सहयोग देंगे।"

उपरोक्त दिल्ली घोषणा पत्र को 1929 ई० के लाहौर अधिवेशन में स्वीकृत किया गया। इसी अधिवेशन में 'डोमिनियन स्टेट्स' शब्द को लेकर विरोध हुआ। गांधी जी ने कांग्रेस के संविधान में लक्ष्य सम्बन्धी धारा एक में 'स्वराज्य' शब्द का अर्थ 'पूर्ण स्वतन्त्रता' बतलाया। इस पर सुभाष चन्द्र बोस ने संविधान की धारा एक में यह चाहा कि स्वराज्य का मतलब 'पूर्ण स्वतन्त्रता' जोड़ दिया जाये तथा जिसका अर्थ ब्रिटिश से पूर्णत: सम्बन्ध विच्छेद। परन्तु गांधी जी इसके लिए तैयार न थे। अत: सुभाष चन्द्र बोस का सुझाव नहीं माना गया।

नेहरू रिपोर्ट द्वारा निश्चित अवधि समाप्त होने पर 31 दिसम्बर 1929 को पं० जवाहर लाल नेहरू ने घोषणा करते हुए कहा, "आज हमारे लिए सिर्फ एक ही लक्ष्य है 'स्वाधीनता का प्रश्न'।" उन्होंने कहा, "हमारे लिए स्वाधीनता के मायने अधिराज्य और ब्रिटिश सामंजस्य से पूर्ण स्वतन्त्रता।"[19]

अत: कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस संविधान का अनुच्छेद एक बार पुन: बदला गया तथा 31 दिसम्बर की रात्रि को 'पूर्ण स्वराज्य' का झण्डा लहराया गया।

कांग्रेस की कार्यसमिति ने 2 जनवरी 1930 कौंसिल के बायकाट का प्रस्ताव किया। 26 जनवरी को पूर्ण स्वतन्त्रता दिवस मनाने को कहा। शपथ पत्र में कहा गया[20], "हम शपथपूर्ण संकल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज्य की स्वतन्त्रता के लिए कांग्रेस समय-समय पर जो आदेश देगी, उसे हम पूरा करेंगे।

कांग्रेस नेताओं में 'पूर्ण स्वराज्य' के अर्थ अलग-अलग लगाये। जो अंग्रेजों से सम्बन्ध विच्छेद चाहते थे उन्होंने इसका अर्थ नेहरू व सुभाष के अर्थों में लिया। जो अंग्रेजों से सम्बन्ध नहीं तोड़ना चाहते थे उन्होंने इसका अर्थ डोमिनियन स्टेट्स लिया। गांधी जी ने दोनों के बीच का रास्ता अपनाया। जनवरी 1930 के प्रारम्भ में ही उन्होंने कहा, "कांग्रेस के लिए डोमिनियन स्टेट्स का मतलब ही पूर्ण स्वतन्त्रता है। इसमें ब्रिटेन के साथ ऐच्छिक साझेदारी है जो परस्पर आपत्ति के समय किसी भी राष्ट्र के लिए अच्छी हो सकती है।"[21]

यह विचारणीय है कि ब्रिटिश सरकार ने कभी भी डोमिनियन स्टेट्स का अर्थ किसी भी प्रकार से 'स्वतन्त्रता' के अर्थ में कभी नहीं लिया। यहां तक कि 1940 ई० में भारत के वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने भी भारत की संवैधानिक प्राप्ति के लिए 'पूर्ण स्वतन्त्रता' नहीं बल्कि 'डोमिनियन स्टेट्स' शब्द का प्रयोग किया। गांधी जी ने अपने एक पत्र में स्पष्ट किया कि उनके अनुसार

डोमिनियन स्टेट्स का अर्थ 'स्वतन्त्रता' है।

कांग्रेस मन्त्री मण्डल के त्याग पत्र के पश्चात भी लार्ड लिनलिथगो ने युद्ध के पश्चात जितना शीघ्र होगा वेस्टमिनिस्टर जैसा प्रादेशिक स्वतन्त्रता देने की बात कही। अगस्त 1940 ई० की घोषणा में भी उसने "भारत के भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय तथा वर्ग को राष्ट्र मण्डल के पूर्ण और बराबर सदस्य बनने में हम सहयोग करेंगे" की बात की। किसी भी अगले वायसराय लार्ड वेवल या लार्ड माउन्टबेटन ने भारत की मांग को डोमिनियन स्टेट्स से आगे न स्वीकार किया।

यहां तक कि 18 जुलाई 1947 को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा स्वीकृत हुआ भारत स्वतन्त्रता नियम में भी भारत राष्ट्र को दो डोमिनियन स्टेट्स में विभाजित करने की बात कही गई।[22]

शीघ्र ही डोमिनियन स्टेट का भ्रम मिट गया जब माउन्टबेटन के पश्चात भारत के गवर्नर जनरल के रूप में इंग्लैण्ड के जार्ज षष्ठ के प्रति वफादारी की शपथ से कार्य प्रारम्भ किया। जब ब्रिटेन का झण्डा गणतन्त्र के बाद भी कुछ स्थानों पर लहराता रहा। जब कोई भी व्यक्ति भारत का नागरिक होते हुए ब्रिटिश नागरिक भी बना रहा।

अत: स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि क्या यह गांधी जी का करिश्मा था या भारतीयों का भ्रमजाल। विचारणीय है कि आज भी भारत पूर्ण प्रभुता सम्पन्न गणराज्य है क्या?

अध्याय-सात

सन्दर्भ सूची

1. वेडरवर्न, पूर्वोक्त, पृ. 1
2. रणमराव, पूर्वोक्त, देखें, अध्याय तीन
3. रिपोर्ट आई.एन.सी., कलकत्ता, 1906
4. वही, 1908
5. वही, बम्बई 1915
6. फ्रेंक मोरिस, जवाहरलाल नेहरू : ए बायोग्रेफी (बम्बई, 1959)
7. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग XIII, पृ. 186; भाग XIV, पृ. 81
8. वही, भाग , पृ. 731; भाग , पृ. 190-191; यंग इण्डिया 3.11.1920; एम.के. गांधी, ऐन एक्सपेरीमेन्ट विद् ट्रुथ (अहमदाबाद, 1963),, पृ. 307; रिपोर्ट आई.एन.सी. नागपुर, 1920
9. डी.जी. तेन्दुलकर, उपरोक्त, भाग दो, पृ. 36
10. वही, पृ. 36
11. सी.डब्ल्यू.एम.जी., भाग XIX, पृ. 160
12. डी.जी. तेन्दुलकर, पूर्वोक्त, भाग दो, पृ. 166
13. एम.एम. कोठारी, क्रिटिंग आफ गांधी (जोधपुर, 1996), पृ. 139
14. रामनारायण, फ्रीडम आफ इण्डिया, ए होक्स (दिल्ली, 1970), पृ. 10
15. वही, पृ. 10-12
16. इन्दुलाल याज्ञनिक, गांधी ऐज आई नो हिम (1943), पृ. 427
17. पट्टाभि सीतारमैया, पूर्वोक्त, पृ. 593
18. वही, पृ. 694; रजनीपाम दत्त, इण्डिया टूडे, पृ. 361; इण्डियन अनुअल रजिस्टर, भाग दो, 1929
19. पट्टाभि सीतारमैया, पूर्वोक्त, पृ. 601-603
20. वही, पृ. 615-616
21. इन्दुलाल याज्ञनिक, पूर्वोक्त, पृ. 475; यंग इण्डिया, 9.1.1930
22. देखें, भारतीय स्वतन्त्रता नियम की धारायें

अध्याय-आठ

कांग्रेस का भ्रमित एवं छद्म राष्ट्रवाद

आधुनिक युग में राष्ट्रवाद एक विश्वव्यापी, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावी अवधारणा है। यह मानवता के विकास में बाधक नहीं, बल्कि पोषक तत्त्व है। राष्ट्र मानव जाति के लिए एक अनिवार्य शर्त है। यह विश्व के विभिन्न कालखण्ड़ों में प्रेरक, प्रखर तथा प्रभावी तत्त्व रहा है। यही अवधारणा पूर्बी जगत में अति प्राचीन तथा पाश्चात्य जगत में 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रही है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में राष्ट्रवाद के प्रति इसकी अवधारणा को समझने के लिए संक्षेप में इस सन्दर्भ में हिन्दू चिंतन तथा कांग्रेस के जन्म से पूर्व के पाश्चात्य चिंतन को जानना आवश्यक है।

राष्ट्रवाद तथा हिन्दू चिंतन

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि भारत विश्व के प्राचीनतम राष्ट्रों में से है। वैदिक साहित्य तथा अनेक प्राचीन ग्रन्थों में अंग्रेजी में प्रयुक्त शब्द 'नेशन' से हजारों साल पहले भारत में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग मिलता है। इसे पवित्रतम मनोभाव माना गया है। उदाहरणत: महाभारत के शांतिपर्व में युधिष्ठिर, भीष्म पितामह से अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हैं कि राष्ट्र की रक्षा तथा वृद्धि के लिए क्या उपयोगी है। महाभारत में यह भी कहा गया है कि युद्ध में प्राणों की बाजी का अवसर आने पर जिस राष्ट्र में ऐसा निश्चय आ जाता है कि इसके संरक्षण तथा देश की रक्षा करता रहूंगा, उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ती होती है। अत: राष्ट्रहित को सर्वोपरि माना है।

लोकमान्य तिलक ने राष्ट्र को धर्म से ऊंचा स्थान दिया है। महर्षि अरविन्द ने विश्व विख्यात उत्तरपाड़ा के भाषण में, "राष्ट्रीयता राजनीति नहीं बल्कि एक धर्म है, एक विश्वास है, एक निष्ठा है, सनातन धर्म है, मेरे लिये राष्ट्रीयता है।" साथ ही यह भी कहा, "यह भूमि का टुकड़ा नहीं, भाषा का अलंकार नहीं, मन की कहानी नहीं है ... यह भारत के समस्त लोगों की जीवित जागृत शक्ति है।" बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय ने राष्ट्र को सर्वोत्तम धर्म के रूप में प्रस्तुत किया है। पूर्व प्रधानमन्त्री मोरार जी देसाई का कथन है कि राष्ट्र का हित ही राष्ट्रीयता है।

भारत में प्राचीन काल से राष्ट्रवाद के दो अभिन्न तत्त्व बताए गये हैं। समान भूमि तथा

समान सांस्कृतिक जीवन। भारत भूमि के प्रति जन के अटूट सम्बन्ध की अवधारणा को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। अत: राष्ट्र के आधारभूत तत्त्व भौगोलिक तथा सांस्कृतिक एकता को माना गया है। संक्षेप में राष्ट्र कोई इकरारनामा या समझौता नहीं है, बल्कि स्वयं निर्मित है। राष्ट्र का शरीर इसकी भूमि तथा इसकी आत्मा इसकी संस्कृति है। यजुर्वेद[1] के कुछ मंत्रों में राष्ट्र तथा इसके गुणों की विवेचना की गई है। राष्ट्र उन शक्तियों से बनता है जो एकत्रित होकर एक निश्चित भूभाग में रहते हैं, साथ ही जो विवेक-बुद्धि को महत्त्व देते हों, विद्वानों का आदर करते हैं तथा बाहरी आक्रमण तथा आन्तरिक प्रकृतिक प्रकोपों से सुरक्षा करने में सामर्थ्यवान हों। अथर्ववेद[2] के पृथ्वीसूत्र मातृभूमि के प्रति 63 भावपूर्ण मन्त्र दिये हैं। भूमि को समुद्र से घिरी हुई बताया गया है तथा जहां के लोग विभिन्न भाषाओं में बोलते हैं तथा अनेक परम्पराओं का निर्वाह करते हैं। प्रसिद्ध विद्वान दामोदर सातवेलकर ने इन मंत्रों को 'वेदों का राष्ट्रीय गीत' कहा है।[3] उदाहरण के लिए कुछ मन्त्र इस प्रकार से हैं जैसे - माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:[4] अर्थात् मेरी माता भूमि है तथा मैं पृथ्वी का पुत्र हूं। सा नो भूमि विसृजनां माता पुत्राय मे पय: अर्थात् यह भूमि मेरी माता है, जो मुझे दूध पिलाती है। भूमे मातर्निधेही मा भद्रया: सुप्रतिष्ठितम् अर्थात् हे मातृभूमि मेरी रक्षा करो। वैदिक ग्रन्थों की भांति अन्य ग्रन्थों में मातृभूमि का यशोगान किया गया है। मनु ने देश की भूमि देवताओं द्वारा बनाई लिखा।[5] भूमि के प्रति अतीव प्रेम तथा समर्पण के भाव युगों से रहे।[6] विष्णुपुराण का पूरा अध्याय भूमि के सन्दर्भ में है। वाल्मीकि रामायण में मातृभूमि की तुलना स्वर्ग से करते हुए इसे महान बताया गया है तथा कहा है जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी। अत: संक्षेप में राष्ट्र निर्माण में पहला अभिन्न तत्त्व मातृभूमि के प्रति अटूट प्रेम तथा समर्पण का भाव बतलाया गया है। इसकी प्राकृतिक सीमाओं को जीवन का आधार माना है। प्राकृतिक सम्पदाओं को जैसे नदियों, पर्वतों, वृक्षों तथा वनस्पतियों को अत्यन्त श्रेष्ठ तथा पूज्य स्थान दिया गया है। भूमि के प्रति अगाध श्रद्धा तथा प्रेम व्यक्त करने के लिए भारत में तीर्थयात्रा की परम्परा को बड़ा महत्त्व दिया गया है। प्राचीन ग्रन्थों में महाभारत, गरूड़ पुराण, देवी भागवत पुराण, कालिका पुराण, शिव पुराण, स्कन्द पुराण आदि अनेक ग्रन्थों में तीर्थ यात्रा के महत्त्व को दर्शाया गया है। भारतीयों में भारत के विभिन्न तीर्थस्थानों के लिये प्राचीनकाल से ही सदैव अगाध श्रद्धा, पूजा तथा एकत्त्व का भाव रहा है।

राष्ट्रवाद का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व समाज के सांस्कृतिक जीवन मूल्यों को माना गया है। इसमें जीवन के विभिन्न महत्त्वपूर्ण पहलुओं, धर्म, आध्यात्म, अर्थ, राजनीति, भाषा व साहित्य सभी का गहराई से मंथन किया गया है। जीवन मूल्यों में धर्म को सर्वोपरि महत्त्व दिया है। धर्म सही

अर्थों में न रीलीजन है और न मजहब। धर्म का अर्थ 'कर्त्तव्य' बताया गया है। धर्म में मतान्तरण, मंदिर या हिंसा से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सदैव सकारात्मक तथा मानव के लिए कल्याणकारी है। राष्ट्र के निर्माण में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसे मानव धर्म कहा गया है। इसे सनातन धर्म[7] भी कहा जाता है। इसे शाश्वत धर्म भी कहा गया है। मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी, श्री अरविन्द ने सनातन धर्म को बड़ा महत्त्व दिया है। हमारे राष्ट्रवाद का अर्थ सनातन धर्म है।

अथर्ववेद में भारतीय राष्ट्र को संतों तथा विद्वानों का निर्मित माना है। यह राजाओं या राजनीतिज्ञों की कृति नहीं है। राज्य बदलते रहते हैं पर राष्ट्र अक्षुण्य रहता है। भारतीय जीवन में राजनीति विकेन्द्रीयकरण तथा शक्ति के विभाजन को सर्वोच्च माना है। भारतीय सांस्कृतिक जीवन मूल्यों में अर्थ को यथेष्ठ स्थान दिया है। अर्थ को जीवन के चार पुरूषार्थों में से एक माना है। यजुर्वेद तथा ईशोपनिषद् में भारत के सांस्कृतिक जीवन मूल्यों में आर्थिक विचारों का निरूपण किया है।

अत: संक्षेप में उपरोक्त सभी सांस्कृतिक जीवन मूल्यों को विभिन्नता में एकता के मार्गदर्शक तत्त्व बताये गये हैं। अत: कुल मिलाकर भारत राष्ट्र तथा राष्ट्रवाद मूलत: सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक, न कि राजनीतिक व आर्थिक, प्रकृति में यह विकासवादी न किसी विशेष परिस्थिति की उपज है।

पाश्चात्य राष्ट्रवाद की धारणा

पाश्चात्य जगत में आधुनिक राष्ट्र राज्य की अवधारणा पूर्ण पाश्चात्य तथा राजनीतिक है। यूरोप में इसकी उत्पत्ति 16वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में हुई। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा 19 शताब्दी के पूर्वाद्ध में इसका विकास हुआ तथा 20वीं शताब्दी में यह प्रचुरता से फैला। 'नेशन' की उत्पत्ति ही लैटिन शब्द 'नाश्यो' (Natio) से मानी जाती है, जिसका अर्थ है 'जन्म'। इसका अर्थ रक्त की एकता से लिया गया। इस शब्द के उपयोग की यूरोप के विभिन्न देशों में विभिन्न प्रकार से हुआ। मोटे रूप में इसका अर्थ नगर राज्यों के बृहत्तर रूप में लिया गया।

यूरोप में सामान्यत: राष्ट्र शब्द का प्रयोग मध्य युग (500-1500 शताब्दी) में हुआ जिसमें मानव स्वभाव में आधुनिक समाज को राजनैतिक संगठन के रूप में बनाने की भावना बढ़ी। इसके लिए आवश्यक तत्त्व जैसे भाषा तथा साहित्य का विकास, समान कानून, नये सौदागर वर्ग का उदय, पंथ निरपेक्ष शिक्षा, प्रतिनिधित्व वाली सरकार, विदेशी व्यापार, युद्ध व शान्ति के दिनों में समान भावना आदि माने गये।[8]

यूरोप में इंग्लैण्ड के आधुनिक राष्ट्रवाद को इसका प्रारम्भकर्ता माना जाता है। 18वीं शताब्दी तक इंग्लैण्ड एक विश्वशक्ति बनने लगा था। इसी भांति फ्रांस का नम्बर आया तथा बाद में स्पेन, पुर्तगाल तथा डेनमार्क राष्ट्र-राज्यों के केन्द्र बने।

फ्रांस की क्रांति तथा नेपोलियन के युद्धों ने इटली, जर्मनी तथा रूप में राष्ट्रीय भावना को तेजी से विकसित किया। 1815 ई० की वियना की सन्धि से इसे प्रमुखता मिली। हैस कोहन तथा सी०जे०एम० हेज जैसे विद्वानों ने 19वीं शताब्दी के आधुनिक राष्ट्रवाद को दो भागों में बांटा है। एक वह जो पश्चिम यूरोप में फैला तथा दूसरे वे जो पश्चिमी जगत के अलावा जैसे जर्मनी, रूस व भारत में विकसित हुआ।[9]

ब्रिटिश विद्वानों के अनुसार भारत में राष्ट्रवाद का उदय ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत हुआ। इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री डिसरेयली[10] ने राष्ट्र को परिभाषित करते हुए इसे 'एक कला तथा समय की देन' बताया है जो विभिन्न प्रभावों से हुआ। विभिन्न प्रभावों जैसे जलवायु, मिट्टी, धर्म, रीतिरिवाज, व्यवहार, विशेष घटनाएं या दुर्घटनाएं। यह भी कहा गया कि भारत में राष्ट्र सम्बन्धी अनेक तत्त्वों की कमी है जैसे समान भाषा, समान धर्म, समान परम्पराएं, समान ऐतिहासिक अनुभव, समान भूमि आदि। ब्रिटिश विद्वानों ने भारत में केवल एक या दो तत्त्व समान पाये अर्थात् कभी भूमि तथा कभी जाति। अत: उनके अनुसार भारत कभी एक राष्ट्र न था। अधिकतर ब्रिटिश इतिहासकारों ने भारत का वर्णन भ्रमित अथवा जानबूझकर एक देश के रूप में नहीं बल्कि एक महाद्वीप अथवा उप महाद्वीप के रूप में किया। वस्तुत: यह ही शब्द अंग्रेजों की राजनीतिक आकांक्षाओं की पूर्ति करता था। जेम्स मिल, जान मेलकाम, ग्रांट डफ तथा माउन्टस्टुअर्ट एलीफिन्स्टन जैसे इतिहासकारों तथा ब्रिटिश प्रशासकों ने इन शब्दों का भारत के सन्दर्भ में उपयोग में किया है। एलिफिन्स्टन ने भारत में एक राष्ट्र नहीं बल्कि दस राष्ट्र बतलाये हैं। जान ब्राइट नामक प्रसिद्ध ब्रिटिश सुधारक ने 1852 ई० में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में भारत में प्रचलित 20 भाषाओं के आधार पर 20 अलग-अलग राष्ट्र बतलाये हैं। जेम्स मिल ने सभ्यता का अर्थ प्राचीन ग्रीस तथा आधुनिक यूरोप को माना है। उसने अर्द्धसभ्य राष्ट्रों में फारस, मिश्र, पेरू, मैक्सको को माना। मुस्लिम को अर्द्धसभ्य तथा हिन्दुओं को निकृष्ट राष्ट्र कहा है। एक विद्वान के अनुसार भारत एक ऐसा राज्य है जो यूरोप के सामन्तवादी युग जैसे अन्धकार काल से बदतर है। उसने भारतीय समाज को असभ्य समाज का नमूना बतलाया है। जहां मिल ने भारत की सभी पुरानी संस्थाओं को नष्ट करना चाहा तथा उन्हें हीन बतलाया, वहां, मैकाले ने भारत की प्रत्येक वस्तुओं को बेहूदा बतलाया। जहां मिल की पुस्तक 'हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इण्डिया', आगामी आई०सी०एस० की

परीक्षा की पाठ्य पुस्तक बन गई वहां मैकाले की शिक्षा सम्बन्धी टिप्पणी (1835 ई०) ने भारतीयों का आगामी वर्षों में मस्तिष्क बदल दिया। अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम के रूप में मैकालेवाद का प्रभाव भारतीयों के मस्तिष्कों पर अत्याधिक पड़ा[13] तथा आज भी है।

1857 ई० के पश्चात् भारत का शासन सीधे ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश बनने पर अंग्रेजों ने भारत राष्ट्र के बारे में अपनी धारणा बदल दी। अब उन्होंने कहना शुरू किया कि भारत एक बनता हुआ राष्ट्र (a Nation in making) है। डब्ल्यू०डब्ल्यू० हण्टर इस श्रेणी में ब्रिटिश शासन का प्रथम प्रवक्ता कहा जा सकता है। उसने भारत को एक राष्ट्र मानने से इंकार कर दिया।[14] इसी भांति सर जान स्ट्रेची ने भारत जैसे देश के अस्तित्व को ही स्वीकार करने से मना कर दिया।[15] इसी भांति सर अल्फ्रेड सी लायल तथा प्रो० जे०आर० शीले ने भी भारत देश में राष्ट्रीयता का अभाव बतलाया है।[16]

कांग्रेस का छद्म राष्ट्रवाद

उपरोक्त संक्षिप्त विवरण से ज्ञात होता है कि यूरोपीय मानदण्डों के अनुसार भारत में राष्ट्रीयता केवल एक या दो तत्त्व अर्थात् कभी भूमि या कभी वंशीय एकता रही। यह उल्लेखनीय है कि कांग्रेस के सदस्य पूर्णत: अंग्रेजी भाषा में दक्ष तथा उसी रंग में रंगे हुए थे। वे भी प्राचीन भारत को, अंग्रेजों की भांति घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे। अधिकतर कांग्रेस नेताओं को संस्कृत का सामान्य ज्ञान भी न था। वे कुछ हद तक अपने अतीत से टूटे हुए ही नहीं, बल्कि उसमें भी भारत को ब्रिटिश प्राच्यवादी चश्मे से देखने लगे थे। उन्हें अंग्रेजी साम्राज्य में, भारत में एक दैवीय वरदान, ईश्वर की अनुकम्पा लगता था तथा उनकी जीवन भर उसी तन्त्र में रहने को उत्सुक इच्छा थी।

सामान्यत: कांग्रेस जन इसमें आस्था रखते थे कि राष्ट्रवाद मूलत: एक यूरोपीय विचार है। कुछ ने आगे बढ़कर यह भी भ्रम फैलाया कि यह इंग्लैण्ड की देन है तथा 19वीं शताब्दी में भारत में इसका आविर्भाव हुआ। प्रसिद्ध लेखक ए०आर० देसाई[17] ने इसे एक आधुनिक विचार माना है जिसका विकास भारत में ब्रिटिश शासन तथा विश्व के प्रभावों के फलस्वरूप हुआ। वस्तुत: यह सोचना अतार्किक व मूर्खतापूर्ण होगा कि प्रत्येक देश का ऐतिहासिक विकासक्रम यूरोप अथवा पश्चिम की देन है। सही बात तो यह है कि इसका विकास विभिन्न देशों में विभिन्न कालों में विभिन्न परिस्थितियों में हुआ। सन् 1940 में सर तेजबहादुर सप्रू ने भारत के बारे में ठीक ही कहा है कि "भारतीय राष्ट्रीयता निश्चित रूप से यूरोप की प्रादेशिक राष्ट्रीयता से भिन्न है जो 100

वर्ष पूर्व की गई तथा जो वियना सन्धि (1815 ई०) का फल है जिसमें यूरोप की व्यापारिक प्रतिबद्धता को बढ़ावा दिया।"

यह कल्पनातीत है कि जब 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, अरविन्द घोष, स्वामी रामतीर्थ, बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय प्रभावी ढ़ंग से, भारतीय राष्ट्र को एक सांस्कृतिक, सामाजिक, सामूहिक तथा वैश्विक इकाई के रूप में देख रहे थे, कांग्रेस के नेताओं ने भारत के प्राचीन राष्ट्रगत विचारों की पूर्ण उपेक्षा कर अंग्रेजी शासकों के स्वर में अपना सुर क्यों मिलाया? कांग्रेस के मंचों से बार-बार इस बात को दोहराया गया कि भारत एक बनता हुआ राष्ट्र है। कांग्रेस के अध्यक्ष हेनरी काटन ने अपने भाषण में कहा था कि "भारत एक राष्ट्र के रूप में उभर रहा है, जो ब्रिटिश शासन के प्रभावों का परिणाम है।"[18] इतना ही नहीं, कांग्रेस के प्रसिद्ध नेता सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने अपनी आत्मकथा का नाम भी 'ए नेशन इन मेकिंग' रखा।[19] कांग्रेस अध्यक्ष ए०सी० मजूमदार[20] ने भी अपनी पुस्तक का नाम 'इण्डियन नेशनल इव्ल्यूशन' रखा ताकि लगे कि भारत एक बनता हुआ राष्ट्र है, इस विचार का समर्थन किया। उपरोक्त अध्यक्षीय भाषणों तथा चिंतन से स्पष्ट होता है कि कांग्रेस भी भारत को एक राष्ट्र नहीं मानती थी, वे एक राष्ट्र बनने के ब्रिटिश विचार से पूर्णत: सहमत थे। महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि क्या यह कांग्रेस का पाश्चात्य विचारों का अन्धानुकरण था, या यह प्राचीन भारत राष्ट्र के चिंतन की पूर्ण विस्मृति या ब्रिटिश शासन का दबाव। कांग्रेस, भ्रमित ब्रिटिश राष्ट्रवाद की परिभाषा से भारत के सन्दर्भ में सन्तुष्ट थी या बेखबर। सम्भवत: वे ब्रिटिश दबाव व प्रभुत्त्व से सन्तुष्ट थे तथा वे पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित थे, कांग्रेस के सभी नेता अंग्रेजी पढ़े-लिखे थे, उन्होंने अपने को पूर्णत: नहीं बदला, परन्तु अंग्रेजी अवधारणा को अपनाया जो उन्हें ज्यादा सुविधापूर्ण तथा उपयोगी लगी।

कांग्रेस : ब्रिटिश दोगली नीति का शिकार

इतना ही नहीं अंग्रेजों ने दोगली नीति अपनाई, एक ओर नाटकीय ढ़ंग से भारत को एक राष्ट्र बनाने का राग अलापा तथा इसके लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता की बार-बार घोषणा की, दूसरी ओर अपने साम्राज्यवादी स्वार्थों के लिए, मुसलमानों से अलगाव को बढ़ाया। लार्ड डफरिन ने कहा कि भारत में पांच करोड मुसलमानों का राष्ट्र है और वह भी शक्तिशाली।

कुछ भी हो कांग्रेस ने भारत को एक राष्ट्र बनाने के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता को किसी भी कीमत पर सर्वोपरि माना। कांग्रेस ने मुसलमानों को जोड़ने के असफल प्रयास किये। बैनर्जी ने लिखा कि कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेने के लिए यद्यपि मुसलमानों को मुफ्त

डेलीगेशन फीस तथा अन्य सुविधायें दी गईं थीं।[21] गोपाल कृष्ण गोखले ने स्वीकार किया कि ज्यादातर मुसलमानों में राष्ट्रीयता की भावना का अभाव था।[22] मुसलमानों को आकर्षित करने के लिए अनेक मुस्लिम नेताओं को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया[23] जैसे बदरूद्दीन तैयब (1887 ई०), आर०एम० सयानी (1896 ई०) तथा नावाब सैयद मुहम्मद बहादुर (1913 ई०) को। इसी भांति सैयद हसन इमाम (1918 ई०), हकीम अजमल खां (1921 ई०), मौलाना अबुल कलाम आजाद (विशेष 1923 ई०, दिल्ली), खिलाफत नेता मोहम्मद अली (1923 ई०), एम०ए० अन्सारी (1927 ई०), पुन: मौलाना अबुल कलाम आजाद (1940 ई०) को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया। इनमें से बदरूद्दीन ने सर सैयद अहमद खां के प्रस्ताव से आगे आने से मना न किया बल्कि बदरूद्दीन ने हयूम को कुछ साल अधिवेशन बन्द करने की सलाह भी दी। मोहम्मद अली ने तो अधिवेशन में 'वन्देमातरम्' को बोलने से ही मना किया।

खिलाफत आन्दोलन तथा कांग्रेसी राष्ट्रवाद

कांग्रेस ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के आधार पर भारत को एक राष्ट्र मानने की अवधारणा के आधार पर अनेक भूलें तथा गलतियां कीं। उसने 1909 ई० में मुसलमानों के लिए अलग प्रतिनिधित्व की स्वीकृति दी। 1916 ई० में कांग्रेस लीग समझौता द्वारा मुसलमानों के अलग प्रतिनिधित्व की पुन: स्वीकृति की मोहर लगा दी। प्रथम महायुद्ध के दिनों में विदेशी समस्या से उभरे खिलाफत आन्दोलन में मुसलमानों को सहयोग देकर एक 'हिमालयन भूल' की। गांधी जी को खिलाफत आन्दोलन में सहभागी बनने से शीघ्र ही परस्पर एकता के लक्षण लगे।[25] अंग्रेजों के प्रति मुस्लिम रोष से उन्हें हिन्दू-मुस्लिम एकता का ईश्वर प्रदत्त सुअवसर लगा। ऐसा सुअवसर जो सौ वर्षों में भी नहीं आ सकता था।[26]

वस्तुत: यह क्षणिक तथा अवसरवादी समझौता था। अनेक राष्ट्रवादी नेताओं ने इसके प्रति उदासीनता दिखलाई थी तथा इसके विनाशकारी परिणामों से अवगत कराया था। नोबिल पुरस्कार विजेता नीरद चौधरी का मत है कि इसने मुसलमानों में बाहरी भूमि के प्रति भावना जगाई तथा उनमें चेतना लाई।[27] खिलाफत आन्दोलन से जन्मे इस्लामिक भ्रातृत्त्व भावना ने कैम्ब्रज के कुछ छात्रों में इसे राजनीतिक रूप में प्रकट करने का प्रयत्न किया, जो अभी तक सामाजिक तथा सुधारों तक सीमित था।[28] गांधी जी को लगता था कि इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिलेगा।[29] परन्तु ब्रिटिश इतिहासकारों ने भी इसे काल्पनिक स्वप्न[30] तथा पूर्णत: क्षणिक समझौता बतलाया।

अत: कांग्रेस की नीति से मुसलमानों तथा अलगाव मनोवृत्ति तथा साम्प्रदायिकता को

बढ़ावा मिला। देश की राजनीति में मौला-मौलवियों का, अन्य धार्मिक नेताओं का प्रवेश हुआ। इसी काल में मौलाना मुहम्मद उल हसन के नेतृत्त्व में उलेमा सम्प्रदाय ने राजनीति में भाग लिया तथा जमीयत-उल-उलेमा ऐ हिन्द की स्थापना की। स्थान-स्थान पर तबलीग और तंजीम की स्थापना हुई तथा कांग्रेस से सांस्कृतिक एजेण्डा खत्म हो गया।

पाकिस्तान की पृष्ठभूमि तथा कांग्रेस राष्ट्रवाद

भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एम०सी० छागला ने[31] खिलाफत आन्दोलन की कटु आलोचना की। मोहम्मद इकबाल जैसे व्यक्ति जिसने 'तराना-ए-हिन्द' में 'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' लिखा उसी ने तरंग-ए-मिल्ली' में 'चीन ओ अरब हमारा, हिन्दोस्तां हमारा, मुस्लिम हैं हम वतन हैं, सारा जहां हमारा' लिखी। शीघ्र ही वह कट्टर अलगाववादी, साम्प्रदायिक तथा पैन इस्लामवादी बना। 1929 ई० में कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वराज्य की मांग ने उसे चौकन्ना कर दिया था। 1930 ई० में मोहम्मद इकबाल इण्डिया मुस्लिम लीग के अध्यक्ष बनने तथा वह पहला व्यक्ति था जिसने एक स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य बनाने का विचार रखा। 1932 ई० में लाहौर की मुस्लिम कांफ्रेंस में उसी विचार को बढ़ाया। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के तीन-चार मुस्लिम छात्रों ने इसे राजनीतिक प्रयोग के लिए प्रेरित किया। मोहम्मद अली जिन्ना जिसे गांधी जी ने 'कायदे-आजम' जिन्ना कहा, पाकिस्तान का निर्माता हुआ। मजहब के आधार पर 96 प्रतिशत मुसलमानों के समर्थन से पाकिस्तान को 22.5 प्रतिशत भूमि के स्थान पर 30 प्रतिशत भूमि दी गई। शेष भूमि पर 'इण्डिया देट इज भारत' बना।

अन्त में विचारणीय विषय अभी भी बना हुआ है कि आखिर देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में कांग्रेसी राष्ट्रवाद का स्वरूप क्या रहा? परन्तु इतना निश्चित है कि यह न पाश्चात्य राष्ट्रवाद पर आधारित था, न ही इसका कोई सम्बन्ध प्राचीन भारतीय राष्ट्रवाद था, यह रहा भारत में धूमिल, भ्रमित तथा छद्म कांग्रेस राष्ट्रवाद।

अध्याय-आठ

सन्दर्भ सूची

1. यजुर्वेद
2. अथर्ववेद, देखें पृथ्वी सूत्र 12.1.12 प्रियव्रत वेदवाचस्पति, वेद का राष्ट्रीय गीत।
3. अथर्ववेद, 12/1/10, क्षीतीश वेदालंकार, सातवेलकर अभिनन्दन ग्रन्थ (दिल्ली) पृ. 53-54
4. वही, 12/1/63
5. मनुस्मृति उद्धरित, आर.के. मुकर्जी, नेशनलिज्म इन हिन्दू कल्चर (प्रथम 1921, दिल्ली पुनर्मुद्रित 1957), पृ. 14
6. आर.के. मुकर्जी, द फण्डामेन्टल यूनिटी आफ इण्डिया (1913 ई०); वी०एस० अग्रवाल, भारत की मौलिक एकता का निर्माण (1939 ई०)
7. विस्तार के लिये देखें, रामस्वरूप, आन हिन्दुइज्म रिव्यूज एण्ड रिफलेक्शन्स (नई दिल्ली, 2000), पृ. 93; श्री अरविन्द, अवर सनातन धर्म, धर्म पत्रिका, पाण्डिचेरी; वासुदेव शरण अग्रवाल, सनातन धर्म एवं उसके उन्नायक (चण्डीगढ़, 1999), पृ. 11
8. रायल इंस्टीट्यूट आफ इन्टरनेशनल अफेयर्स, नेशनलिज्म (लन्दन, 1939), पृ. 14-20
9. विस्तार के लिए देखें, लुईस एल सिन्डर, वेरायटीज आफ नेशनलिज्म : ए कम्पेरेटिव स्टेडी (इर्लीजोंस, 1976), पृ. 30-31; हैंस कोहन, द आईडिया आफ नेशनलिज्म (प्रथम सं० 1944, द्वितीय सं० न्यूयार्क, 1958), पृ. 329-331; सी.जे.एम. हेज, नेशनलिज्म : एक रीलीजन (न्यूयार्क, 1960), पृ. 39
10. ऐनशील अम्ब्रे, इण्डियन सर्च फार नेशनल आईडेन्टीटी (न्यूयार्क), पृ. 18
11. नार्थ कोर्ट सी, पार्किन्सन, ईस्ट एण्ड वैस्ट (ग्रेट ब्रिटेन, 1963), पृ. 191
12. राघवन अय्यर, सेन्ट एन्थेनी'ज पेपर नं. 8 साउथ ऐशिया अफेयर्स नं. 1 (लन्दन, 1980), पृ. 31
13. एम.के. गांधी, 'मैकाले'ज ड्रीम', यंग इण्डिया, भाग X, 19 मार्च 1928, पृ. 103
14. डब्ल्यू.डब्ल्यू. हण्टर, ऐ ब्रीफ हिस्ट्री आफ द इण्डियन पीपुल, पृ. 6
15. सर जान स्ट्रेची इण्डिया : ईट्स ऐडमिन्सट्रेशन एण्ड प्रोग्रेस (प्रथम संस्करण 1988, तीसरा संस्करण लन्दन, 1901), पृ. 1
16. यूरपीयन राष्ट्रवाद के सन्दर्भ में विस्तार के लिए देखें एस.सी. मित्तल, इण्डिया डिस्टोरटेड : ए स्टेडी आफ ब्रिटिश हिस्टोरियन्स आन इण्डिया, भाग दो, पृ. 160-170
17. ए.आर. देसाई, सोशल बैकग्राउंड आफ इण्डियन नेशनलिज्म

18. हेनरी काटन, न्यू इण्डिया इन ट्रांजिशन, पृ. 53
19. सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, ए नेशन इन मेकिंग 1925
20. ऐ.सी. मजूमदार, इण्डियन नेशनल इवल्यूशन, 1915
21. सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, पूर्वोक्त, पृ. 108
22. जे.एस. होयलैण्ड, गोपाल कृष्ण गोखले, पृ. 160
23. देखें, परिशिष्ट
24. एस.सी. मित्तल, खिलाफत आन्दोलन, राष्ट्रवाद तथा उसके परिणाम, पाञ्चजन्य, 13 जनवरी 2008
25. एस.सी. मित्तल, फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, पृ. 185
26. दीनानाथ वर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 440
27. नीरद सी. चौधरी, दाई हैंड ग्रेट एनार्क : इण्डिया
28. मुशरुल हक, मुस्लिम पालिटिक्स एण्ड माडर्न इण्डिया (1857-1947) (मेरठ, 1970), पृ. 184
29. मोहम्मद शकीर, खिलाफत टू पार्टिशन (नई दिल्ली, 1970), पृ. 69
30. शिरोल, इण्डिया ओल्ड एण्ड न्यू, पृ. 175
31. एस.के. छागला, द पिपुल, पृ. 229

उपसंहार

भारतीय राष्ट्रीय संघर्ष के इतिहास में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म तथा विकास समूचे राष्ट्र जीवन में एक परिवर्तनकारी तथा प्रभावशाली मोड़ रहा है। इसकी जड़ें ईस्ट इण्डिया कम्पनी की त्रासदी, 1857 ई० के महासमर से उत्पन्न अंग्रेजों में भय, ईसाईकरण तथा ईसाईयत के प्रचार की निकृष्ट ढ़ंग से अभिव्यक्ति तथा भारत के सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में देखी जा सकती है। भारत में सदैव से धर्ममय राजनीति रही है। पाश्चात्य तथा इस्लामिक देशों से भिन्न भारत में धर्म का स्वरूप अति व्यापक, उदात्त, सहिष्णु, समरस तथा विश्व संस्कृति का प्रतिपादक रहा है। इसीलिए भारत के दार्शनिकों तथा विचारकों ने धर्म को भारत राष्ट्र की 'आत्मा' कहा है। इसीलिए विभिन्नता में एकता तथा वसुधैव कुटुम्बकम का यहां सदैव भाव रहा है। समय-समय पर भारत पर अनेक राजनीतिक और आर्थिक आघात होते रहे हैं परन्तु भारत कभी भी अपने धार्मिक आधार को नहीं भूला।

ए.ओ. हयूम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का संस्थापक तथा पिता था। कांग्रेस की स्थापना के पीछे उसके कोई महान लक्ष्य न था, बल्कि इसके मूल कारण 1857 ई० के महासमर का प्रत्यक्ष का स्वयं कटु अनुभव, सामाजिक-धार्मिक आन्दोलनों से उत्पन्न जागृति तथा राष्ट्रीय चेतना तथा हजारों की संख्या में उसके द्वारा पढ़ी गुप्त रिपोर्ट्स थीं, जिसने उसकी नींद हराम कर दी थी। वह इस बात से शत-प्रतिशत सहमत था कि भारत में शीघ्र एक भयंकर 'हिंसात्मक विद्रोह' होने वाला है। इन मुख्यत: धार्मिक नेताओं की वार्ताओं से वह केवल सशंकित ही नहीं, बल्कि कुछ स्थानों पर जाकर उन व्यक्तियों की स्वयं पड़ताल की, जिनके नाम उन गुप्त रिपोर्ट्स में दिये थे तथा उसने वे सभी सही नाम पाये थे। अत: उसका मूल कारण उभरी हुई राष्ट्रभावना तथा सम्भावित व्यापक हिंसात्मक विद्रोह को कुचलना था। स्वभावत: इसका लाभ अंग्रेज सरकार को मिला जो ब्रिटिश शासन के लिये एक 'सुरक्षा वाल्व' बन गई थी।

हयूम कांग्रेस की स्थापना करके केवल एक ऐसी छोटी सी संस्था चाहता था जो अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयों की हो। इसके लिए सदस्यता प्राप्त करने के लिये अंग्रेजी में निपुणता तथा ब्रिटिश सरकार के प्रति भक्ति अनिवार्य थी। प्रारम्भ में इसमें भारत के गरीबों, दलितों, किसानों,

श्रमिकों तथा सामान्य व्यापारियों, दुकानदारों के लिए कोई स्थान न था। हयूम कांग्रेस को कोई देशव्यापी स्वरूप नहीं देना चाहता था। अत: 1894 ई० तक जब तक वह भारत में रहा, उसने प्रयत्न किया कि इसका देशव्यापी स्वरूप न बने। कांग्रेस की स्थापना में उसे ब्रिटेन के कई महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों तथा भारत के महत्वपूर्ण अधिकारियों का पूर्ण सहयोग था। यहां तक कि भारत में वायसरायों-लार्ड रिपन व लार्ड डफरिन का आशीर्वाद प्राप्त था।

कांग्रेस की स्थापना दिसम्बर 1885 में बम्बई (मुम्बई) में की गई थी। इसमें 72 प्रतिनिधि आये थे तथा इसके अलावा 28 सरकारी अधिकारी, आने वाले प्रतिनिधियों के स्वागत तथा सहायता के लिये थे। प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता कलकत्ता के एक वरिष्ठ सरकारी वकील श्री व्योमेश चन्द्र बैनर्जी ने की थी जो ईसाई थे तथा हयूम के मित्र थे। प्रथम अधिवेशन की समाप्ती महारानी विक्टोरिया के 27 बार जय जयकार से हुई थी। प्रथम अधिवेशन में कई प्रस्ताव पारित किये गये थे जिसमें प्रमुख अंग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्तियों के लिए कुछ सुविधाओं की मांग थी।

प्रारम्भ में कांग्रेस की गतिविधि वर्ष में केवल तीन दिन एक अधिवेशन के रूप में क्रिसमस की छुट्टियों में भारत के किसी महत्त्वपूर्ण नगर में होती थी। कुछ लोग इसे 'मध्यवर्गीय दरबार', 'तीन दिन का तमाशा', 'सर्कस' या 'पिकनिक' भी कहते थे। 1885-1905 ई० तक अर्थात् पहले बीस वर्षों तक इसके सदस्यों को 'उदारवादी' कह सकते हैं। कांग्रेस के प्रथम तीन अधिवेशनों में प्रतिनिधियों का स्वागत सरकार की ओर से भी किया गया परन्तु इसके चौथे अधिवेशन से सरकार का रूख इसके विरूद्ध हो गया था। अब सरकारी अधिकारी कांग्रेस की मांगों को 'मूर्खतापूर्ण' तथा हयूम को भी 'चालाक', 'सिरफिरा', 'सनकी' तथा 'नैतिकता हीन' कहने लगे थे। साथ ही कांग्रेस अधिवेशनों को 'बाबुओं की संसद', 'पागलों की सभा' तथा 'बचकाना' पुकारने लगे थे। सामान्यत: उदारवादियों की ब्रिटिश सरकार के प्रति धारणायें बड़ी उच्च तथा सम्मानजनक थी। वे अंग्रेजों को मूलत: सच्चे, ईमानदार, न्यायप्रिय तथा दयालु मानते थे। इसके साथ ही भारत में अंग्रेजी राज्य को एक वरदान, उन्नति का पथ तथा प्रभु का आशीर्वाद मानते थे। इस काल खण्ड में सभी अध्यक्षीय भाषणों में अंग्रेजी राज का यशोगान होता था। इसमें बार-बार कांग्रेस मंच से अपनी वफादारी का वायदा होता था। अपनी मांगों के लिए वे प्रस्तावों, सुझावों, प्रार्थना पत्रों, स्मृति पत्रों, याचिकाओं तथा कभी-कभी शिष्टमण्डल भेजने का मार्ग अपनाते थे। उदारवादियों के प्रमुख प्रस्तावों में सुधारों, प्रशासनिक सुधारों, ऊंचे पदों पर भारतीयों की नियुक्तियां, सैनिक खर्चों में कमी, कृषि, व्यापार, वाणिज्य में सुधार तथा करों में कमी की

मांगें होती थीं। कुछ प्रस्तावों को, प्रतिवर्ष दोहराया जाता था। इन्हीं में से एक प्रस्ताव गरीबी कम करने या उनकी अवस्था सुधारने के लिए होता था जो कांग्रेस के एजेण्डे पर प्रतिवर्ष होता था। अधिकतर मांगे दोहराई जाती थीं तथा प्राय: सरकार उन पर ध्यान न देती थी। कांग्रेस की सदस्यों की संख्या बहुत कम होने से इन्हें हिन्दू-कांग्रेस, बंगाली कांग्रेस, शिक्षित अल्प संख्यकों की कांग्रेस, सरकारी नौकरी पाने वालों, निराशों की कांग्रेस भी कहा जाता था। संक्षेप में कांग्रेस की कार्यविधि विनम्रतापूर्वक बार-बार प्रार्थना, याचना, पेटीशन की थी तथा उनके उद्देश्य सीमित थे जिसमें भारत की स्वतन्त्रता की कल्पना न थी। उदारवादी कांग्रेस केवल राजनीतिक तथा आर्थिक मांगों तक सीमित थी। यह सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रयत्नों में बिल्कुल अछूती थी। प्रारम्भ में ही उन्होंने अपने कार्यक्रमों में सांस्कृतिक एजेण्डे का बायकाट कर दिया था जो भारतीय जनमानस का प्राण रही। परन्तु वे किसी भी भांति कांग्रेस के चिन्तन का आधार न बने इसके लिए हयूम भी सावधान था, जो 1885 ई० से 1906 ई० तक कांग्रेस का स्वयंभू महामन्त्री रहा था (यद्यपि वह 1894 ई० में वापिस इंग्लैण्ड चला गया था) कांग्रेस का सरकार से तालमेल न रहने के कारण लार्ड लेंसडाऊन, लार्ड एल्गिन तथा लार्ड कर्जन ने कांग्रेस को समाप्त करने के भी प्रयत्न किये थे।

कांग्रेस का दूसरा काल राष्ट्रवादी कांग्रेस के नाम से जाना जाता है। मुख्यत: पूर्व उदारवादी कांग्रेस की उदासीनता, अकर्मण्यता, असन्तोष ने राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति के रूप में, राष्ट्रवादी कांग्रेस आगे आई। विश्व में घटित अनेक घटनाओं - अबीसीनिया की इटली पर विजय, जापान की रूस पर विजय तथा विभिन्न देशों में बढ़ते तथा फैलते जन संघर्षों ने भी राष्ट्रवादियों को बल दिया। ब्रिटिश सरकार का दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों से दुर्व्यवहार ने भी राष्ट्रवादियों को प्रोत्साहन दिया। साथ ही लार्ड कर्जन की साम्राज्यवादी तथा प्रतिक्रियावादी नीतियों, दमनकारी कानूनों तथा खासकर बंग भंग ने भारत में राष्ट्रवादी शक्तियों को बढ़ाया। राष्ट्रवादियों ने कांग्रेस को एक अंग्रेजी पढ़े-लिखे अल्पसंख्यक भारतीयों के स्वरूप से हटकर मध्यमवर्गीय स्वरूप को जनमानस की ओर विस्तृत किया। राष्ट्रवादी कांग्रेस के प्रमुख नेताओं में लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल तथा श्री अरविन्द घोष थे। लोकमान्य तिलक और श्री अरविन्द घोष ने हयूम को पत्र लिखकर अथवा वक्तव्यों द्वारा हयूम की नीतियों तथा कार्यविधि की कटु आलोचना की। भगिनी निवेदिता, मिसेज ऐनी बेसेन्ट जैसी विदुषी महिलाओं ने इसमें पूर्ण सहयोग दिया।

राष्ट्रवादियों ने अंग्रेजों के प्रति संघर्ष तथा टकराव का मार्ग अपनाया। उन्होंने कहा कि

भीख मांगने या गिड़गिड़ाने से आजादी नहीं मिलती। राष्ट्रवादियों ने अपने कार्यक्रमों में सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक पुट दिया।

इस काल में 1907 में सूरत में उदारवादियों तथा राष्ट्रवादियों में परस्पर टकराव हो गया। वस्तुत: यह राष्ट्रवादियों का कांग्रेस से बहिष्कृत करने का एक प्रयास था जिसमें वे सफल हुए। ब्रिटिश सरकार ने भी राष्ट्रवादियों के दमन में पूरी तत्परता दिखलाई। 1907-1908 में राष्ट्रवादियों के चारों नेता - लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, विपिन चन्द्र पाल तथा श्री अरविन्द घोष गिरफ्तार कर लिये गये। इनकी गिरफ्तारियों के प्रति उदारवादियों ने उदासीनता ही नहीं, बल्कि ब्रिटिश सरकार को सहयोग भी दिया।

राष्ट्रवादियों ने अपने कार्यक्रमों में स्वराज्य, स्वदेशी, स्वधर्म तथा स्वभाषा को महत्त्व दिया। राष्ट्रवादियों ने होम रूल आन्दोलन भी चलाया जबकि प्रथम महायुद्ध में उदारवादी पूरी तरह ब्रिटिश सरकार की सहायता में लगे थे। राष्ट्रवादियों के इस काल में पहली बार हिन्दी भाषा, गऊ रक्षा, गीता, रामराज्य, वन्देमातरम्, भारत माता की जय, गणेशोत्सव, शिवाजी राज्याभिषेकोत्सव, काली पूजा आदि स्वर तथा पर्व सुनाई दिये या मनाये गये।

1919 ई० में गांधी जी ने कांग्रेस का नेतृत्व संभाला। अत: कुछ विद्वान 1919-1947 ई० के काल को गांधी युग कहते हैं। परन्तु किसी भी एक व्यक्ति के आधार पर उसे युग कहना उपयुक्त नहीं होगा। इस काल में भी कांग्रेस का उद्देश्य स्वराज्य (डोमिनियन स्टेट्स) प्राप्ती था जिसे पहले राष्ट्रवादी भी कह चुके थे। परन्तु इनका मार्ग भिन्न था। सामान्यत: कांग्रेस के इतिहास में आन्दोलनों का काल भी कहा जा सकता है। सभी आन्दोलनों के स्वरूप में पहले भारत सरकार से बातचीत, इसकी असफलता पर विरोध के रूप में आन्दोलन, आन्दोलन की असफलता, कुछ देर तक राजनीतिक शिथिलता तथा पुन: वही क्रम शुरू होता था। अत: इस काल की कांग्रेस को समझौतावादी कांग्रेस कहना उपयुक्त होगा। इस लम्बे काल (1919-1947 ई०) में गांधी जी सरकार से बातचीत करने में प्राय: निश्चित थे तथा कांग्रेस के सभी क्रिया कलापों में वे निर्णायक, योजक तथा आन्दोलन के उद्घोषक होते थे। पण्डित नेहरू उन्हें कांग्रेस में 'सुपर प्रेसीडेन्ट' मानते थे।

महात्मा गांधी पहले ही दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के हितों के लिए संघर्ष तथा सफलता पाने में प्रसिद्ध हो गये थे। 1915 ई० में भारत आगमन पर उन्होंने चम्पारन, खेड़ा तथा अहमदाबाद में अपने प्रारम्भिक संघर्ष किये, 1919 ई० में पंजाब में जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड,

मार्शल लॉ, टर्की के खलीफा की दुरावस्था तथा सरकार द्वारा क्रूर रौलट ऐक्ट ने उन्हें देश का नेतृत्व का अवसर मिला। गृह शासन आन्दोलन ने समूचे देश में सर्वाधिक कांग्रेस कमेटियां स्थापित कर गांधी जी के लिए आधार भूमि पहले से ही तैयार कर दी थी। ब्रिटिश सरकार के क्रूर अत्याचारों तथा दमनकारी कानूनों ने गांधी जी को ब्रिटिश सरकार के सहयोगी से असहयोगी बना दिया था।

गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन से पूर्व कांग्रेस के दोनों गुटों उदारवादी तथा राष्ट्रवादी तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयास किये। 1907 ई० की कांग्रेस की परस्पर फूट के पश्चात् 1916 ई० में लखनऊ में दोनों को मिलाने के प्रयास हुए। इसी भांति 1919 ई० में खिलाफत आन्दोलन में कांग्रेस का सहयोग देकर हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयास किया। परन्तु खिलाफत आन्दोलन में सहयोग गांधी जी की भयंकर भूल थी। इससे हिन्दू-मुस्लिम एकता क्षणिक काल के लिए दिखाई दी परन्तु वह शीघ्र ही भयंकर साम्प्रदायिक दंगों में बदल गई। परन्तु गांधी जी का अहिंसक असहयोग आन्दोलन कांग्रेस के दोनों गुटों को भाया। अहिंसक उदारवादियों को तथा असहयोग राष्ट्रवादियों को प्रिय लगा।

असहयोग आन्दोलन की विफलता से भारत की राजनीति में कुछ शिथिलता आई। कांग्रेस में आन्तरिक टकराव से कांग्रेस का दूसरी बार विभाजन हुआ। अत: वह कुछ समय के परिवर्तनवादी तथा अपरिवर्तनवादी दलों में बंट गई। इसी काल में मोपला तथा कोहाट जैसे साम्प्रदायिक दंगों में भयंकर नरसंहार तथा अपार धन की हानि हुई।

इसी बीच देश में क्रांतिकारियों की गतिविधियां तेजी से बढ़ीं। कांग्रेस की राजनीतिक शिथिलता, साइमन कमीशन का भारत आगमन तथा लाला लाजपतराय की लाठियों के निर्मम प्रहारों से शीघ्र मृत्यु ने क्रांतिकारी घटनाओं को बढ़ा दिया। क्रांतिकारियों का एक मात्र उद्देश्य अंग्रेजों को भारत से खदेड़कर भारत को पूर्ण स्वतन्त्र कराना था। तत्कालीन दस्तावेजों से ज्ञात होता है कि उनका मार्ग न हिंसा का था और न ही 1917 ई० की रूसी क्रांति का उन पर कोई प्रभाव था। कांग्रेस की क्रांतिकारियों के प्रति नीति हयूम के काल से ही निश्चित थी। यह नीति दमन तथा सरकार के समर्थन की थी। कांग्रेस के अनेक नेताओं ने 1857 ई० के महासमर को 'विद्रोह' कहा है। मदनलाल धींगरा के महान बलिदान की कांग्रेस नेताओं ने भर्त्सना की। यहां तक कि यतीनदास के जेल में अनशन द्वारा बलिदान होने पर कोई प्रतिक्रिया नहीं की और न ही भगतसिंह जैसे क्रांतिकारी जिनकी यशकीर्ति पट्टाभि सीतारमैया के अनुसार गांधी जी से कम न थी, उनको छुटाने

अथवा बचाने के लिये जरा भी प्रयत्न न किये गये। परन्तु कांग्रेस की इस नीति का देशव्यापी कोई स्वागत न हुआ, परन्तु इससे ब्रिटिश सरकार को कुकृत्यों की स्वीकृति मिल गई। सन् 1929 में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की मांग रखी जो केवल नाममात्र थी, क्योंकि 1926 ई० की इम्पीरियल कांफ्रेंस अथवा 1931 ई० के स्टेटयूट के अनुसार इसका अर्थ डोमिनियन स्टेट्स ही था परन्तु कांग्रेस ने भ्रम फैलाकर उसे 'स्वतन्त्रता' के समान बतलाया।

इसी मांग हेतु गांधी जी ने दूसरा सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930-1934 ई०) चलाया, जिसमें सफलता न मिली तथा गांधी जी ने इसकी असफलता स्वीकार की।

1935 ई० के अधिनियम की कांग्रेस ने कठोर शब्दों में आलोचना की परन्तु इसके अन्तर्गत 1937 ई० के चुनाव में भाग लिया। कांग्रेस को 11 में से 7 प्रांतों में भारी सफलता मिली। मुस्लिम लीग को घोर निराशा हुई। लगभग दो वर्ष कांग्रेस मन्त्री मण्डल रहा। गांधी जी को आशा थी कि इनके बनने से कांग्रेस को लक्ष्य प्राप्ती में सहायता, हिन्दू-मुस्लिम एकता में लाभकारी, हिंसात्मक प्रवृत्ति को रोकने में असरकारी तथा रचनात्मक कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने में सहायक होगी। परन्तु गांधी जी को इस अल्पकाल में कांग्रेसियों के मन्त्रीपद के लिए दौड़-धूप, व्याप्त भ्रष्टाचार, हिंसात्मक गतिविधियां, अनुशासनहीनता से बड़ी निराशा हुई।

द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ में सरकार द्वारा युद्ध में भारत के भाग लेने की घोषणा से कुपित हो कांग्रेस ने अपने मन्त्री मण्डल भंग कर दिये। सरकार के विरोध में गांधी जी ने 1940 ई० में पुन: 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' चलाया तथा असफलता पर इसे 'प्रतीकात्मक विरोध' कहा। क्रिप्स मिशन की असफलता पर गांधी जी ने पुन: 'भारत छोड़ो आन्दोलन' की घोषणा की। परन्तु प्रारम्भ में कांग्रेस के प्रभावी नेता पं० जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, आसफ अली, सरोजनी नायडू, गोविन्द वल्लभ पंत, भोलाभाई देसाई आदि इसके लिये तैयार न थे। राजगोपालाचारी तो इसके कटु विरोधी थे।

गांधी जी द्वारा आन्दोलन केवल प्रारम्भ किया, परन्तु कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी से आन्दोलन का नेतृत्व कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के द्वारा किया गया। वस्तुत: यह आन्दोलन कालेजों तथा विश्वविद्यालयों के छात्रों द्वारा चलाया गया। संघर्ष का स्वरूप शीघ्र ही हिंसात्मक बन गया, जो मुख्यत: सरकार की कठोर दमन नीति के फलस्वरूप बना।

1944 ई० में अत्याधिक बीमारी के कारण गांधी जी को जेल से छोड़ दिया गया था। वस्तुत: अब गांधी जी के नेतृत्व की कांग्रेसियों द्वारा उपेक्षा होने लगी। संघर्ष की बजाये सत्ता की

दौड़ प्रारम्भ हुई। विश्व की बदलती हुई परिस्थिति ने ब्रिटिश सरकार ने भारत के विभाजन की योजना प्रारम्भ कर दी। वेवल योजना तथा कैबिनट मिशन के रूप में कई योजनायें रखीं। आखिर कांग्रेस नेताओं ने, गांधी जी की उपेक्षा कर भारत के विभाजन को दो डोमिनियन स्टेट्स के रूप में स्वीकार किया। इनमें एक पाकिस्तान तथा दूसरे 'इण्डिया दैट इज भारत' के रूप में स्वीकार किया। अत: भारत को आधी अधूरी राजनैतिक स्वतन्त्रता मिली। भारत में सत्ता का हस्तांतरण हुआ तथा अंग्रेजों ने कांग्रेस को देश की बागड़ोर सौंप दी। गांधी जी ने सत्ता के लिए लिप्त कांग्रेस को देखते हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विघटन करके लोक-सेवक संघ की स्थापना की घोषणा की, परन्तु अब उनकी आवाज कोई सुनने वाला न था।

कांग्रेस के इतिहास को जानने में इसके संविधान तथा दूसरे बार-बार दोहराये उद्देश्य को क्रमबद्ध से जानना महत्त्वपूर्ण है जो कांग्रेस की दिशा और दशा का निर्धारण करते हैं। वस्तुत: इसके पीछे प्रारम्भ से ही कांग्रेस की भ्रामक राष्ट्रवाद की भावना रही, जो न भारतीय राष्ट्रवाद अथवा पाश्चात्य राष्ट्रवाद पर टिकी थी बल्कि जो ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्देशित हिन्दू-मुस्लिम एकता अथवा मुस्लिम तुष्टीकरण पर आधारित थी, न कि अंग्रेजों को भारत से खदेड़कर भारत को पूर्ण स्वतन्त्र देश बनाने पर, अत: अंग्रेज कांग्रेस को एक डोमिनियन स्टेट्स के रूप में कांग्रेस की सत्ता हस्तान्तरण कर चले गये।

परिशिष्ट

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के वर्ष, स्थान तथा अध्यक्ष (1885-1946 ई०)

वर्ष	अधिवेशन	स्थान	अध्यक्ष का नाम
1885	पहला	मुम्बई	श्री व्योमेश चन्द्र बैनर्जी
1886	दूसरा	कोलकोता	श्री दादा भाई नौरोजी
1887	तीसरा	चेन्नई	श्री बदरूद्दीन तैयब जी
1888	चौथा	इलाहाबाद	श्री जार्ज यूल
1889	पांचवां	मुम्बई	श्री विलियम वेडरबर्न
1890	छठा	कोलकोता	श्री फिरोज शाह मेहता
1891	सातवां	नागपुर	श्री पी. आनन्द चार्लु
1892	आठवां	इलाहाबाद	श्री व्योमेश चन्द्र बैनर्जी
1893	नौवां	लाहौर	श्री दादाभाई नौरोजी
1894	दसवां	चेन्नई	श्री अल्फ्रेड वैब
1895	ग्यारहवां	पूना	श्री सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी
1896	बारहवां	कोलकोता	श्री रहमतुल्ला सयानी
1897	तेरहवां	अहमदाबाद	श्री सी. शंकरण नैयर
1898	चौदहवां	चेन्नई	श्री ए.एम. बोस
1899	पन्द्रहवां	लखनऊ	श्री रोमेश चन्द्र दत्त
1900	सोलहवां	लाहौर	श्री एन.जी. चन्द्रवारकर
1901	सत्रहवां	कोलकोता	श्री डी.ई. वाचा
1902	अठारहवां	अहमदाबाद	श्री सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी
1903	उन्नीसवां	चेन्नई	श्री लाल मोहन घोष
1904	बीसवां	मुम्बई	श्री हेनरी काटन
1905	इक्कीसवां	बनारस	श्री गोपाल कृष्ण गोखले
1906	बाईसवां	कोलकोता	श्री दादाभाई नौरोजी
1907	तेईसवां (स्थगित)	सूरत	डा. रास बिहारी घोष

वर्ष	अधिवेशन	स्थान	अध्यक्ष का नाम
1908	तेईसवां	चेन्नई	डा. रास बिहारी घोष
1909	चौबीसवां	लाहौर	श्री मदन मोहन मालवीय
1910	पच्चीसवां	इलाहाबाद	श्री विलियम वेडरबर्न
1911	छब्बीसवां	कोलकोता	श्री बिशन नारायण दत्त
1912	सत्ताईसवां	बांकीपुर	श्री आर.एन. मुधोलकर
1913	अट्ठाईसवां	कराची	श्री नवाब सैयद मोहम्मद बहादुर
1914	उनतीसवां	चेन्नई	श्री भूपेन्द्रनाथ बसु
1915	तीसवां	मुम्बई	सर सत्येन्द्र प्रसन्न सिंह
1916	इकत्तीसवां	लखनऊ	श्री अम्बिका चरण मजूमदार
1917	बत्तीसवां	कोलकोता	मिसेज ऐनी बेसेन्ट
1918	विशेष	मुम्बई	श्री हसन इमाम
1918	तेंतीसवां	दिल्ली	श्री मदनमोहन मालवीय
1919	चौंतीसवां	अमृतसर	पं० मोतीलाल नेहरू
1920	विशेष	कोलकोता	लाला लाजपतराय
1920	पैंतीसवां	नागपुर	श्री सी० विजय राघवाचारी
1921	छत्तीसवां	अहमदाबाद	हकीम अजमल खां (अध्यक्ष निर्वाचित सी.आर. दास जेल में थे।
1922	सैंतीसवां	गया	श्री सी०आर० दास
1923	विशेष	दिल्ली	मौलाना अबुल कलाम आजाद
1923	अड़तीसवां	कोकनाड़ा	मौलाना मोहम्मद अली
1924	उन्तालीसवां	बेलगांव	श्री मोहनदास कर्मचन्द गांधी
1925	चालीसवां	कानपुर	मिसेज सरोजनी नायडू
1926	इकतालीसवां	गोहाटी	श्री एस.श्रीनिवास आयंगर
1927	बयालीसवां	चेन्नई	डा० एम०ए० अन्सारी
1928	तैतालीसवां	कोलकोता	पं० मोतीलाल नेहरू
1929	चवालीसवां	लाहौर	पं० जवाहरलाल नेहरू

वर्ष	अधिवेशन	स्थान	अध्यक्ष का नाम
1931	पैंतालीसवां	कराची	सरदार वल्लभ भाई पटेल
1932	छियालीसवां (प्रतिबन्धित)	दिल्ली	सेठ रणछोड़दास अमृतलाल (मदनमोहन मालवीय निर्वाचित पर जेल में)
1933	सैंतालीसवां (प्रतिबन्धित)	कोलकोता	नलिनीसेन गुप्ता (मदनमोहन मालवीय निर्वाचित पर जेल में)
1934	अड़तालीसवां	मुम्बई	बाबू राजेन्द्र प्रसाद
1936	उनन्चासवां	लखनऊ	पं० जवाहरलाल नेहरू
1936	पचासवां	फैजपुर	पं० जवाहरलाल नेहरू
1938	इक्यावनवां	हरिपुरा	श्री सुभाषचन्द्र बोस
1939	बावनवां	त्रिपुरी	श्री सुभाषचन्द्र बोस
1940	तरेपनवां	रामगढ़	मौलाना अबुल कलाम आजाद
1946	चौवनवां	मेरठ	जे०बी० कृपलानी (मध्य बाद पं० जवाहरलाल नेहरू बनाये गये)

BIBLIOGRAPHY

Unpublished Official Records

Government of India Proceedings of the Home department from 1906-1947
(Available at National Archives of India, New Delhi)

(a) A
(b) B
(c) Deposits
(d) K.W.

Published Official Records

Parliamentary Debates
Hansard Series
(i) House of Commons
(ii) House of Lords
Imperial (Indian) Legislative Council
Punjab Legistative Council

Private Papers

A.I.C.C. Papers (NMML)
Chelmsford Papers (Microfilm)
G.S. Khaparde Papers (NAI)
G.S. Khaparde Diaries (NAI)
Hardinge Papers
K.K. Desai Papers
Montague Papers (Microfilms)
Morley Papers (Microfilm)
Arnold J. Toynabee's Oral History transcript (No. 102 Available at NMML)

Reports

Report of the Indian national Congress (1885-1946) (Published yearly)

Report and Evidence of the Punjab Sub-Committee of the Indian National Congress, Lahore, 1920.

Report Disorder Inquiry Committee (Hunter Committee) Calcutta, 1920

News Papers, Journals and Periodicals

Journal of Asiatic Studies

The Civil and Military Gazette

The Contemporaries Review

Dharam Patrika

Harijan

Hindu Outlook

The Indian Annual Register

The Indian Express

International Journal of Hindu Studies

Itihas Darpan

Gyan Ratan

The Jhang Sial

Kurukshetra University Research Journal

The People

The Punjabee

The Sandhya

Simla Past and Present

Journal of South Asian Studies

The Times of India

The Tribune

Young India

Yugantar

पाञ्चजन्य

जनसत्ता

Books

Aduvith Ashram, Life of Ramkrishan Paramhansa (Calcutta, 1964)

Aiyer, Raghven, St. Antony's Papers No. 8, South Asian Affairs, No. 1 (London, 1980.

Aiyar, R.L. & L.S. Bhandari, The Congress Carvan, The History of the Indian National Congress of Indian Freedom for Swaraj (1885-1945) (Bombay, 1945).

Ambedkar, Dr. Bhim Rao, Thoughts on Pakistan (Prd. 1940); Pakistan and Partition of India (Bombay, 1946).

Andrews, C.F. & Girija Mukherjee, The Rise and Growth of the Congress (London, 1938).

Ashey, Geoffery, Gandhi : A Study in Revolution (London, 1968).

Azad, Maulana Abul Kalam, India Wins Freedom (Calcutta, 1959).

Bali, A.N., Now it can be told.

Bannerjee, S.N., A Nation in Making (Madras, 1925)

Beaverbrooke, Lord, Politicians and the War (1914-1916) (London, Rept. 1960)

Besant, Mrs. Annie, How India Wrought for Freedom (Delhi, 1973).

Breacher, Michael, Nehru : The Political Philosophy.

Bredev, V., India's Philosophy in Modern Times (Moscow, 1984).

Bose, Subhash Chandra, The India's Struggle.

Chapakar, Damodar, Hari, Autobiography.

Chaudhary, Nirad C., Scholar Extraordinary, The Life of Professor, the Hon'ble Fredrich Maxmullar P.C. (Delhi, 1974); Thy Hand Great Anarch.

Chaudhary, S.R., The leflist Movement in India (1917-1947), (Calcutta, 1976).

Chesney, Sir John, Indian Polity, A View of the Administration in India (London, 1894).

Chirol, Valentine, The Indian Unrest (London, 1910).

....., Iindia : Old and New (London, 1921).

Colvin, Ian, The Life of General Dyer (London, 1931).

Copley, Rajgopalachari

Cotton, Henry I.E., New India in Transition (Rept. London, 1940).

Das, Durga, India from Curzon to Nehru and After.

Das, Ram Saran, The Dreemland (Unpublished, 1931).

Datta, V.N., Amritsar Post & Present (Ambala, 1967).

....., Jallianwala Bagh (Ludhiana, 1969).

....., New Light on Punjab Disturbances (New Delhi, 1972).

Desai, A.R., Social Background of Indian Nationalism (London, 1948, Rept. Bombay, 1979).

Desai, Bhullabhai, Day to Day the Mahatma (Diaries of Mahatma Gandhi (Bombay, 1968).

Devganikar, T.R., Gopal Krishna Gokhale (New Delhi, 1967).

Dharmpal, Despollation and Defaming India, the early Nineteenth century British crusade (Wardha, 1990).

Dutta, K.K., Freedom Movement in Bihar, Vol. 1 (1857-1928) (Patna, 1967).

Edwards, Michael, The Last Days of British Rule (London, 1963).

Elphinstone, Mountstuart, The History of India (The Hindus and Mahometin Periods) (London, 1905 Ninth Edn.).

Embree, Ainslie T., India's Search for National Indentity (New York, 1988).

....., Charles Grant and the British Rule in India (New York, 1969).

Fisher, Thomas, Memoir of the Late Charles Grant Esq. (London, 1833).

Furneaux, Rupert, Massacre in Amritsar (London, 1963).

Gandhi, M.K., Collected Works of Mahatma Gandhi, LXXXX Vols, (Ahmedabad, Published various years).

....., Hind Swaraj.

....., Communal Unity.

....., Mahatma Gandhi Correspondence with the Government (1944-1947) (Ahmedabad, 1959).

....., My Experments with Truth (Ahmedabad, 1961).

Ghosh, P.C., Mahatma Gandhi as I Saw Him (Delhi, 1968).

Gopal, Ram, Lokmanya Tilak (Bombay, 1956).

Gopal, S., British Policy in India (1858-1905) (London, 1965)

Goyal, Sitaram, History of Hindu's Christian Encounters (New Delhi, 1989).

Grant, Charles, Observations on the State of Society among the Asiatic Subjects of Great Britain (London, 1792).

Gupta, K.P. Sen, The Christian Missionaries in Bengal (1793-1813) (Calcutta, 1971).

Hamid, Sayyed Sifuddin (Ed.) Maulana Abul Kalam Azad Century Volume.

Haq, Mushruf, Muslim Politics and Modern India (1857-1947) (Meerut, 1970)

Haye, C.J.M., Nationalism : A Religion (New York, 1960).

Horniman, B.G., Amritsar and Our Duty to India (London, 1920).

Hayland, J.S., Gopal Krishan Gokhale, His Life and Speeches (Calcutta 1948).

Hume, A.O., Agricultural Reforms in India (London, 1879).

....., The Game Birds of India, Burma and Ceylon, 3 Vols. (London, 1871-1888).

....., Nests and Egging of India Birds (London, 1883).

Hunter, W.W., A Brief History of the Indian People (London, 1875).

Ishwardutt, K., Congress Encyclopaedia.

Ismay, Lord, Lord Mountbatten.

Joshi, V.C. (ed.), Lajpat Rai Speeches and Writings, 2 Vols. (Delhi, 1965).

....., Lala Lajpat Rai : A Biographical Essay (Delhi, 1965).

....., (Ed.), Lajpat Rai : Autobiographical Writings (Delhi, 1965).

Kaye, J.W., The Administration of East India Company (London, 1853).

....., Christianity in India : A Historical Marrative (London, 1859).

Keer, Dhanjay, Savarkar and His Times (Bombay, 1966).

Kohn, Hans, The Ideas of Nationalism (New York, 1950).

Kothari, M.M., Critique of Gandhi (Jodhpur, 1996).

Kriplani, J.B., Gandhi : His life and Thoughts (New Delhi).

Layal, Sir Alfred C, The Life of the Marquess of Duffrin and Ava, 2 Vols. (London, 1905).

Low, D.A. (Ed.), Congress and the Raj, The Facet of the Indian Struggle (London, 1977).

Macauley, T.B., Critical and Historical Essays, 2 Vols (Arranged by the A.J. Grieve, Rept. New York, 1963).

Majumdar, A.C., Indian National Evolution (New Delhi, 1975).

Majumdar, Bipan Bihari & Bhagat Prasad Majumdar, Congress and Congressmen in Pre-Gandhian Era (1885-1917) (Calcutta, 1967).

Majumdar, J.K., Indian Speeches and Documents of British Policy (Calcutta, 1937).

Majumdar, R.C., History of the Freedom Movement in India, 3 Vols. (Calcutta, 1963).

....., (Ed.), The British Paramountcy and Indian Renaissance, The History and Culture of the Indian People, Vol. X (Bombay, 1965).

Malhotra, S.L. (Ed.), Gandhi and the Indian National Congress (Chandigarh, 1988).

Martin, Gilbert, Servants of India (A Study of Imperial Rule from 1905-1910 as told through the correspondence and diaries of James Dunlop Smith P.A., the Viceroy (London, 1966).

Martison, Orist, Jawaharlal Nehru and his Politics (Moscow, 1981).

Mathur, Y.B., Quit India Movement (New Delhi, 1975).

Mahrotra, S.R., The Emergence of Indian National Congress (Delhi, 1971).

Edward E. Mouldon (Ed.), The unknown side of Hume : Selected works of Allan Outorian Hume, Vol. I (1829-1867), District administration in North India Rebellion and Reforms (Oxford, 2010).

Menon, K.P.S., C. Sankaran Nayyar (Delhi, 1967).

Menon, V.P., The Transfer of Power in India (New Delhi, 1957).

Manserh, N.E., E.W.R. Lumbey, The Transfer of Power 1942-1947; Constitutional Relations between British and India, 11 Vols, London, 1970-81.

Mittal , S.C., India Distorted, A Study of British Historians on India, 3 Volumes (New Delhi, 1995, 1996, 1998).

....., Freedom Movement in Punjab (Delhi, 1977).

Mill, James, The History of British India, 6 Vols. (With notes and contents of

H.H. Wilson, Vth ed., London, 1840).

Minto, Mary (Countess of), India : Minto and Morley (London, 1908).

Mohan, Peare, An Imaginary Rebellion : How it was suppressed (Lahore, 1920).

Mukerjee, Girija K., History of Indian National Congress (1832-1947) (Delhi, 1977).

Mukerjee, Hiren, India's Struggle for Freedom (Calcutta, 1946).

Mukerjee, R.K., Nationalism in Hindu Culture (Delhi, 1957).

....., The Fundamental Unity of India.

Mukerjee, S.P., The India Struggle (Calcutta, 1942).

Morris, Frank, Jawaharlal Nehru : A Biography (Bombay, 1967).

Munshi, K.M., Pilgrimage to Freedom (Bombay, 1967).

Nanda, J., Punjab Uprooted (Bombay, 1948).

Natson, Leaders of the Brahmo Samaj (Madras).

Nehru, Jawaharlal, An Autobiography (London, 1958).

....., The Discovery of India (Calcutta, 1946).

....., Glimpses of the World History (Bombay, 1964).

....., Selected Works of Jawaharlal Nehru, 13 Vols. (Ed.S. Gopal, New Delhi, 1975-1982).

O'Dwyer, Sir Michcal, India as I Knew it (1895-1925) (London, 1925)

Pal, Vipin Chandra, Memoirs of my life and time, 2 Vols. (Calcutta, 1951).

Punjabee, Kewal K., The Indomitable Sardar (Bombay, 1962).

Parikez, Don, The Middle East Today.

Parikinson, C. North Cote, East and West (Great Britain, 1963).

Philip, C.H., The East India Company (1784-1834) (Manchester, 1961).

....., (Ed.) The Evolution of India and Pakistan (1858-1947), Select Documents (London, 1962).

Pradhan, Bhagwat, Lokmaniya Tilak.

Ramayya, Pattabhi Sita, History of the Indian Congress, 2 Vols. (Delhi, 1969).

Ramnarayan, Freedom of India : A Hoax (Delhi, 1970).

Ramswarup, On Hinduism Reviews and Reflections (New Delhi, 2000).

Rau, M. Chalpathi, Gandhi and Nehru (Calcutta, 1967).

Rao, Raman, The Development of the Congress Constitution (AICC Publication, New Delhi, 1958).

Robert P.E., A History of British India, Oxford.

Ronaldshey, Earl of, The Life of Lord Curzon, 2 Vols. (London. 1928).

Rotenhim, R., Congress Responsibility and the Disturbances (1942-1943) (New Delhi, 1943).

Royal Institute of International Affairs, Nationalism (London, 1939).

Roychaudhary, P.C., Gandhi and his Contemporaries (Jullundur, 1973).

Sarahadi, Ajit Singh, Nationalism in India : The Problem (Chandigarh, 1975).

Sarkar, Sumit, Modern India (1858-1947) (New Delhi, 1986).

Seal, Anil, The Emergence of Indian Nationalisms, Composition and Collaborators in the Nineteenth Century (Cambridge, 1968).

Sen, S.N., Eighteen Fifty Seven,

Singh, Darbara, The Punjab Tragedy (Ambala, 1947).

Singh, Hari, Gandhi Rowalt Satyagraha and British.

Singh, Nihal, Imperialism; Ruling by Bullets and Ballets (London, 1920).

Shakir, Mohammad, Khilafat to Partition (New Delhi, 1970)

Sharma, Jagdish S., India Struggle for Freedom, Selected Documents on Sources, 4 Vols. (Delhi, 1963-1967).

Strachy, Sir John, India : Its Administration and Progress, 3 Vols. ed. London, 1903).

Swinson, Arthur, Six Minutes to Sunset (London, 1964).

Synder, Louis L., Varieties of Nationalism : A Comparative Study, (Illinois, 1976).

Tandulkar, D.J., Mahatma (Life of Mohandas Karamchand Gandhi), 8 Vols. (Delhi, published Various Years).

Tanver, Raghvinder, Reporting the Partition of Punjab, Press, Public and other Opinions (New Delhi, 2006).

Tarachand, History of the Freedom Movement in India, 4 Vols. (Delhi, 1967).

Thompson, Edward & G.T. Garrett, The Rise and Fulfilment of the British Rule in India (London, 1934).

Tucker, Richard, Ranade and the Roots of Indian Nationalism (Bombay, 1977).

Vivekananda, Swami, The Complete Works of Vivekananda, 8 Vols. (Calcutta, 1959-1967).

Ward, A.W. & Others (Ed.), The Cambridge Modern History, Vol. XII, The Last Age (Cambridge, 1910 Rept. 1969).

Wedderburn, William, A.O. Hume, Father of the Indian National Congress, Ist 1913, Rept. (New Delhi, 1970).

Yagnik Indulal, Gandhi as I Know him (1943).

Zaidi, M.A., The Encyclopaedia of Indian National Congress (New Delhi, 1977).

Zakaria, Rafiq (Ed.), A Study of Nahru (Bombay).

हिन्दी पुस्तकें

अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारत की मौलिक एकता का निर्माण, 1939; सनातन धर्म और उसके उन्नायक (चण्डीगढ़, 1998)

कालिन्स, लेरी एवं डोमींग्यू लैपायर, स्वतन्त्रता रात के बारह बजे (दिल्ली, 1975)

कोमारोव, ऐरिक, लेनिन और भारत : एक ऐतिहासिक अध्ययन (मास्को, 1978)

गर्ग, डा. विकास, राष्ट्रीय आन्दोलन में मौलाना आजाद की भूमिका (अम्बाला कैंट, 2006)

गांधी, एम.के., सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, भाग 16 व 17

गुप्त, मन्मथनाथ, राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास (आगरा, 1962)

ग्रोवर, बी.एल. व यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास (दिल्ली, 2001)

दासगुप्ता, एच.एन., देशबन्धु चितरंजनदास (नई दिल्ली, 1985)

दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय

ठाकुर, गोपाल, भगतसिंह : व्यक्तित्त्व और विचारधारा (नई दिल्ली, 1980)

नागौरी, एस.एल. व जीतेश नागौरी, मौलाना अबुल कलाम आजाद (जयपुर, 1996)

नन्दा, बी.आर. पण्डित मोतीलाल नेहरू (दिल्ली, 1969)

पण्डित, एम.पी., श्री अरविन्द (दिल्ली, 1985)

प्रसाद, डा. राजेन्द्र, आत्मकथा (बम्बई, 1957)
प्रेमचन्द, मुन्शी, चिट्ठीपत्री
मजूमदार, सत्येन्द्र, स्वामी विवेकानन्द चरित्र (कलकत्ता)
मित्तल, एस.सी., भारत का सामाजिक आर्थिक इतिहास (1757–1947) (पंचकुला, 2005)
....., 1857 का स्वातंत्र्य समर : एक पुनर्वालोकन (कुरूक्षेत्र, 2007)
....., देशरत्न लाला लाजपतराय (सहारनपुर, 1962)
रोमा, रोला, रामकृष्ण परमहंस की जीवनी (कलकत्ता, 1964)
लाल, प्रो. मुकुटबिहारी, भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन, 2 भाग (लखनऊ, 1981)
वर्मा, दीनानाथ, आधुनिक भारत (पटना, 1974)
विद्यावाचस्पति, इन्द्र, भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास (दिल्ली, 1964)
....., लोकमान्य तिलक और उनका युग (नई दिल्ली, 1963)
विद्यालंकार, सत्यदेव, जीवन संघर्ष (दिल्ली, 1964)
वेदाचार्य, प्रियव्रत, वेदों का राष्ट्रीय गीत
वेदालंकार, क्षितीश, सातवेलकर अभिनन्दन ग्रन्थ (दिल्ली)
शास्त्री, अलगूराय, लाला लाजपतराय (प्रयाग, 1957)
सिंह, अयोध्या, भारत का मुक्ति संग्राम
हरि, वियोगी, हमारी परम्परा (नई दिल्ली, 1967)
हरियाणा इन्साईक्लोपीडिया (सम्पादक कृष्णकुमार खण्डेलवाल व अन्य) (नई दिल्ली, 2010)